ी महावीर ग्रंथमाला—१४ वा पुष्प

राजस्थान के जैन संत

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

लेखक

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

एम. ए. पी-एच डी शास्त्री

भूमिका——

डॉ० सत्येन्द्र, एम. ए. डी. लिट्

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक

गेंदीलाल साह एडवोकेट

मंत्री

श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी

जयपुर

पूज्य मुनि श्री १०८ विद्यानन्दजी महाराज का

पावन सम्मति-प्रसाद

—:★:—

जैन वाङ्मय भारतीय साहित्यवापीका पद्मपुष्प है। मोक्षधर्म का विशिष्ट प्रतिनिधित्व करने से उसे 'पुष्कर पलाशनिर्लेप' कहना वस्तु-सत्य है। भारत के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों मे अकेला जैन साहित्य जितनी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है उतनी मात्रा मे इतर नहीं। लेखनकला की विशिष्ट विधाओ का समायोजन देखकर उन लिपिकारो, चित्रकारो तथा मूल-प्रणेता मनीषियों के प्रति हृदय एक अकृतक आह्लादका अनुभव करता है। लिपिरक्षित होने से ही आज हम उसका रसास्वादन करते हैं, प्रकाशित कर बहुजनहिताय बहुजनसुखाय उपयोगबद्ध कर पा रहे है, उनकी पवित्र तपश्चर्या स्वाध्याय मार्ग के लिए प्रशस्त एव स्वस्तिकारिणी है।

प्रस्तुत संग्रह राजस्थान के जैन सन्तो के कृतित्व तथा व्यक्तित्व बोधको उद्घाटित करता है। जैन भारती के जाने-माने तथा अज्ञात, अल्पज्ञात सुधीजनों का परिचय पाठ इसे कहा जाना चाहिए। हिन्दी मे साहित्य धारा के इतिहास अभी अल्प हैं और जैनवाङ्मयबोधक तो अल्पतर ही हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखको ने भी इस आर्हत्-साहित्य के गवेषणात्मक प्रयास मे प्रायः शिथिलता अथ च उपेक्षा दिखायी है। मेरे विचार से यह अनुपेक्षणीय की उपेक्षा और गणनीय की अवगणना है। साहित्यकार की कलम जब उठती है तो कृष्णमषी से कांचन कमल खिल उठते हैं। वे कमल मनुष्य मात्र के ऊषरमरु-समान मन' प्रदेशो में पद्मरेणुकिंजल्कित कासारो की अमन्द हिल्लोल उत्पन्न करते हैं। शुद्ध साहित्य का यही लक्षण है। वह पात्रो के आलम्बन मे निबद्ध रहकर भी सर्वजनीन हितेप्सुता का ही प्रतिपादन करता है। इसी हितेप्सुता का अमृतपाथेय साहित्य को चिरजीवी बनाता है। आने वाली परम्पराएं धर्म, संस्कृति, गौरवपूर्ण ऐतिह्य के रूप मे उसको सरक्षण प्रदान करती हैं, उसे साथ लेकर आगे बढती हैं। साहित्य का यह आप्यायन गुण और अधिक बढ जाता है यदि उसका निर्माता सम्यक् मनीषी होने के साथ सम्यक् चारित्रधुरीण भी हो। इस दृष्टि से प्रस्तुत सन्त साहित्य अपने कृति और कृतिकार रूप उभय पक्षो मे समादरास्पद है।

राजस्थान के इन कृतिकारों ने गेयछन्दों की अनेकरूपता को प्रश्रय देकर भावाभिव्यक्ति के माध्यम को स्फीत–प्राञ्जल किया है। रास, गीत, सवैया, ढाल, बारहमासा, राग–रागिनी एव नानाविध दोहा, चौपाई, छन्दो के भाव-कुशल प्रमाण सग्रह मे यत्र तत्र विकीर्ण देखे जा सकते हैं जो न केवल पद्यवीथि के निपुणता ख्यापक हैं अपितु लोकजीवन के साथ मैत्री के चिन्हों को भी स्पष्ट करते चलते हैं। किसी समय उनकी कृतिया लोकमुख–भारती के रूप में अवश्य समादृत रही होगी क्योंकि इन रचनाओ के मूल में धर्म प्रभावना की पदचाप सहधर्मिणी है। आराध्य चरित्रो के वर्णन तथा कृतित्व के भूयिष्ठ आयतन से यह अनुमान लगाना सहज है कि ये कृतिकार बहु–मुखी प्रतिभा के धनी ही नहीं, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी भी थे।

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल गत अनेक वर्षों से एतादृश शोधसाहित्य कार्य में सलग्न हैं। पुरातन मे प्रच्छन्न उपादेयताओ के जीर्णोद्धार का यह कार्य रोचक, ज्ञानवर्द्धक एवं सामयिक है। इसमें व्यापक रूप से मनीषियो के समाहित प्रयत्न अपेक्षणीय हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन 'अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी' की ओर से किया जा रहा है। इसमें योगदान करते हुए सत्साहित्य की ओर प्रवृत्ति–शील क्षेत्र का 'साहित्य शोध विभाग' आशीर्वादार्ह है।

मेरठ
२/१०/'६७

प्रकाशकीय

"राजस्थान के जैन सत-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" पुस्तक को पाठको के हाथ मे देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। पुस्तक मे राजस्थान मे होने वाले जैन सन्तो का [सवत् १४५० से १७५० तक] विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वैसे तो राजस्थान सैकडो जैन सन्तो की पावन भूमि रहा है लेकिन १५ वी शताब्दी मे १७ वी शताब्दी तक यहा भट्टारको का अत्यधिक जोर रहा और समाज के प्रत्येक धार्मिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक कार्यो मे उनका निर्देशन प्राप्त होता रहा। इन सन्तो ने साहित्य निर्माण एव उसकी सुरक्षा मे जो महत्वपूर्ण योग दिया था उसका अभी तक कोई क्रमवद्ध इतिहास नही मिलता था इसलिये इन सन्तो के जीवन एव साहित्य निर्माण पर किसी एक पुस्तक की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल के द्वारा लिखित इस पुस्तक से यह कमी दूर हो सकेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग का १४ वा प्रकाशन है। गत दो वर्षों मे क्षेत्र की ओर से प्रस्तुत पुस्तक सहित निम्न पाच पुस्तको का प्रकाशन किया गया है।

(१) हिन्दी पद सग्रह, (२) चम्पाशतक, (३) जिणदत्त चरित, (४) राजस्थान के जैन ग्रन्थ भडार(अ ग्रेजी मे) और (५) राजस्थान के जैन संत-व्यक्तित्व एव कृतित्व। इन पुस्तको के प्रकाशन का देश के प्रमुख पत्रो एव साहित्यकारो ने स्वागत किया है। इनके प्रकाशन से जैन साहित्य पर रिसर्च करने वाले विद्यार्थियो को विशेष लाभ होगा तथा जन साधारण को जैन साहित्य की विशालता, प्राचीनता एव उपयोगिता का पता भी लग सकेगा।

राजस्थान के जैन शस्त्र भण्डारो की ग्र थ सूचियो का जो कार्य क्षत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से प्रारम्भ किया गया था उसका भी काफी तेजी से कार्य चल रहा है। ग्रथ सूची के चार भाग पहिले ही प्रकाशित हो चुके हैं और पाचवा भाग जिसमे २० हजार हस्तलिखित ग्रथो का सामान्य परिचय रहेगा शीघ्र ही प्रेस मे दिया जाने वाला है। इसके अतिरिक्त और भी साहित्यिक कार्य चल रहे हैं जो जैन साहित्य के प्रचार एव प्रसार मे विशेप उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

इस पुस्तक पर पूज्य मुनि श्री विद्यानन्दजी महाराज ने अपने आशीर्वादात्मक सम्मति लिखने की जो महती कृपा की है इसके लिये क्षेत्र कमेटी महाराज की पूर्ण आभारी है।

पुस्तक की भूमिका डॉ० सत्येन्द्र जी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर ने लिखने की कृपा की है जिसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं। आशा है डॉ० साहब का भविष्य में इसी तरह का योग प्राप्त होता रहेगा।

गेंदीलाल साह एडवोकेट
मत्री

भूमिका

डा० कासलीवाल की यह एक और नयी देन हमारे समक्ष है। डा० कासली-
ल का प्रयत्न यही रहा है कि अज्ञात कोनो मे से प्राचीन से प्राचीन सामग्री एव
म्पराओ का अन्वेषण कर प्रकाश मे लाये। यह ग्रन्थ भी इनकी इसी प्रवृत्ति
सुफल है।

सतो की एक दीर्घ परम्परा हमे मिलती है। इस परम्परा की विकास शृङ्खला
बताते हुए डा० राम खेलावन पाडे ने यह लिखा है—

"सत-साधनधारा सिद्धो-नाथो-निरजन-पथियो से प्राण पाती हुई,
ामदेव, त्रिलोचन, पीपा और धन्ना से प्रेरणा लेती हुई कबीर, रैदास, नानक,
ादू, सुन्दर, पलटू आदि अनेक संतो मे प्रकट हुई।"

इस परम्परा मे पारिभाषिक 'सत' सम्प्रदाय का उल्लेख है। इसमे हमे
कसी जैन सत का उल्लेख नही मिलता।

पर डा० पांडे ने आगे जहा यह बताया है कि—

"कबीर मशूर मे आद्याशक्ति और निरजन पर जीत की कथा विस्तार पूर्वक
ी हुई है, अत. सिद्ध होता है कि कुछ शाक्त और निरजन पथी कबीर-पथ में
ीक्षित हुए।...... ...

निरजन पंथ का इतिहास यह सकेत देता है कि इसके विभिन्न दल क्रमशः
ोरख-पथ, कबीर-पंथ, दादू-पथ मे अन्तर्भूत होते रहे और सम्प्रदाय मे इसकी
ाखाएं भिन्न बनी रही। कबीर मशूर मे मूल निरजन पथ को कबीर पथ की बारह
ाखाओ मे गिना गया है[२] यही पाद टिप्पणी स० ३ मे पाडे ने एक सार गर्भित
सकेत किया है —

"निरजन का तिब्बती रूप (905 Pamed) नानक-निर्ग्रन्थ है। इसके
आधार पर निरजन-पथ का सम्बन्ध जैन मतवाद से जोडा जा सकता है, काल

१. मध्यकालीन सत साहित्य—पृष्ठ—१७

२. वही पृ० ५७

कृत कारणो से जिसमे कई परिवर्तन हो गये।"—इस सकेत से अनुसधान की एक उपेक्षित दिशा का पता चलता है। यह बात तो प्राय आज मानली गयी है कि जैन धर्म की परम्परा बौद्ध धर्म से प्राचीन है पर जहा बौद्ध धर्म की पृष्ठ भूमि का भारतीय साहित्य की दृष्टि से गभीर अध्ययन किया गया है वहा जैन धर्म की पृष्ठ भूमि पर उतना गहरा ध्यान नही दिया गया। यह सभव है कि 'निरजन' मे कोई जैन प्रभाव सन्निहित हो, और वह उसके तथा अन्य माध्यमो से 'सतमत' मे भी उतरा हो।

पर यथार्थ यह है कि जैन धर्म के योगदान को अध्ययन करने के साधन भी अभी कुछ समय पूर्व तक कम ही उपलब्ध थे। आज जो साहित्य प्रकाश मे आ रहा है, वह कुछ दिन पूर्व कहा उपलब्ध था। जैन भाण्डागारो मे जो अमूल्य ग्रन्थ सम्पत्ति भरी पडी है उसका किसे ज्ञान था। जैसलमेर के ग्र थागार का पता तो बहुत था पर कर्नल केमुल टाड को भी बडी कठिनाई से वह देखने को मिला था। नागौर का दूसरा प्रसिद्ध जैन ग्र थागार तो बहुत प्रयत्नो के उपरान्त भी टाड के उपयोग के लिए नही खोला जा सका था। पर आज कितने ही जैन भाण्डागारों की मुद्रित सूचिया उपलब्ध हैं। कई सस्थाए जैन साहित्य के प्रकाशन मे लगी हुई हैं। डा० कासलीवाल ने भी ऐसे ही कुछ अलभ्य और ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थो को प्रकाश मे लाने का शुभ प्रयत्न किया है। जैन भण्डारो की सूचिया, 'प्रद्युम्न चरित,' 'जिणदत्त चरित' आदि को प्रकाश मे लाकर उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास की अज्ञात कडियो को जोडने का प्रयास किया है। जैन सतों का यह परिचयात्मक ग्रथ भी कुछ ऐसे ही महत्त्व का है।

डा० कासलीवाल ने बताया है कि 'सत' शब्द के कई अर्थ होते हैं। इसमे कोई सदेह नही कि 'सत' शब्द एक ओर तो एक विशिष्ट सप्रदाय के लिया आता है, जिसके प्रवर्तक कबीर माने जाते हैं। दूसरी ओर 'सत' शब्द मात्र गुणवाचक, और एक ऐसे व्यक्ति के लिए उपयोग मे आ सकता है जो सज्जन और साधु हो। तीसरे अर्थ मे 'सत' विशिष्ट धार्मिक अर्थ मे प्रत्येक सम्प्रदाय मे ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियो के लिए आ सकता है, जो सासारिकता और इ द्रिय विषयो के राग से ऊपर उठ गये हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय एव धर्म में ऐसे सत मिल सकते हैं। ये सत सदा जनता के श्रद्धा भाजन रहे है अत ये दिव्य लोकवार्ताओ के पात्र भी बन गये है। अ ग्रेजी शब्द Saint-सेन्ट सत का पर्यायवाची माना जा सकता है।

डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ मे सवत् १४५० से १७५० तक के राजस्थान के जैन संतो पर प्रकाश डाला है। इस अभिप्राय से उन्होने यह निरूपण किया है कि—"इन ३०० वर्षों मे भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एवं सार्वसाधु के रूप मे

ना द्वारा पूजित थे ··· ये भट्टारक अपना आचरण श्रमण परम्परा के पूर्णतः
ूल रखते थे। ये अपने सघ के प्रमुख होते थे ······ सघ मे मुनि, ब्रह्मचारी,
यिकाए भी रहा करती थी। ······ इन ३०० वर्षों मे इन भट्टारको के अतिरिक्त
य किसी भी साधु का स्वतत्र अस्तित्व नही रहा······ इसलिए ये भट्टारक एव
के शिष्य ब्रह्मचारी पद वाले सभी सत थे।"

इसी व्याख्या को ध्यान मे रखकर हमें जैन सतो की परम्परा का अवगाहन
ना अपेक्षित है। इन तीन सौ वर्षों मे जैन सतो की भी एक दीर्घ परम्परा के
न हमे यहा होते हैं। जैन धर्म मे एक स्थिर श्रेणी-व्यवस्था मे इन सतो का
ना एक स्थान विशेष है और वहा इनका श्रेणी नाम भी कुछ और है—इस
य के द्वारा डा० कासलीवाल ने एक वडा उपकार यह किया है कि उन विशिष्ट
ों को हिन्दी की दृष्टि से एक विशेष वर्ग मे लाकर नये रूप मे खडा कर
या है—अब सतो का अध्ययन करते समय हमे जैन सतो पर भी दृष्टि डालनी
गी।

इसमे तो कोई सन्देह नही कि जैनदर्शन की शब्दावली अपना विशिष्ट
र रखती है, फिर भी सत शब्द के सामान्य अर्थ के द्योतक लक्षण और गुण सभी
म्प्रदायों और देशो मे समान हैं, जैन सतो के काव्य मे जो अभिव्यक्ति हुई है,
ससे इसकी पुष्टी ही होती है। अध्ययन और अनुसधान का पक्ष यह है कि 'सतत्व'
ा सामान्य रूप जैन सतो मे क्या है? और वह विशिष्ट पक्ष क्या है जिससे
भिमडित होने से वह 'सतत्व' जैन हो जाता है।

स्पष्ट है कि जैन सतो का कोई विशेष सम्प्रदाय उस रूप मे एक पृथक
थ नही है जिस प्रकार हिन्दी मे कबीर से प्रवर्तित सत पथ या सत सम्प्रदाय एक
थक अस्तित्व रखता है और फिर जितने सत सम्प्रदाय खडे हुए उन्होने सभी ने
कबीर' की परम्परा मे ही एक वैशिष्ट्य पैदा किया। फलत: जैन सतो का कृतित्व
क विशिष्ट स्वतत्र तात्विक भूमि देगा। यो जैन धर्म मे भी कुछ अलग अलग पथ
, छोटे भी बडे भी, उनके सत भी है। उनके धर्मानुकूल इन सतो की रचनाओ मे
ी आतरिक वैशिष्ट्य मिलेगा। डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ मे केवल राजस्थान
 ही जैन सतो का परिचय दिया है—यह अन्य क्षेत्रो के लिए भी प्रेरणा प्रद
ोगा। फलत: डा० कासलीवाल का यह ग्रन्थ हिन्दी मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त
रेगा, ऐसी मेरी धारणा है। मै डा० कासलीवाल के इस ग्रन्थ का हृदय से स्वागत
रता हू।

जयपुर २८-९-६७ डा० सत्येन्द्र

प्रस्तावना

-●-

भारतीय इतिहास मे राजस्थान का महत्वपूर्ण स्थान है। एक और यहा की भूमि का करण करण वीरता एव शौर्य के लिये प्रसिद्ध रहा तो दूसरी ओर भारतीय साहित्य एवं सस्कृति के गौरवस्थल भी यहा पर्याप्त सख्या मे मिलते है। यदि राजस्थान के वीर योद्धाओ ने जननी जन्म-भूमि की रक्षार्थ हसते हसते प्राणो को न्योछावर किया तो यहा होने वाले आचार्यों, भट्टारको, मुनियो एव साधुओ तथा विद्वानो ने साहित्य की महती सेवा की और अपनी कृतियो एवं काव्यो द्वारा जनता मे देशभक्ति, नैतिकता एव सास्कृतिक जागरूकता का प्रचार किया। यहा के रण-थम्भोर, कुम्भलगढ, चित्तौड, भरतपुर, माडोर जैसे दुर्ग यदि वीरता देशभक्ति, एवं त्याग के प्रतीक हैं तो जैसलमेर, नागौर, बीकानेर, अजमेर, आमेर, डूगरपुर, साग-वाडा, जयपुर आदि कितने ही नगर राजस्थानी ग्रथकारो, सन्तो एव साहित्यो-पासको के पवित्र स्थल है जिन्होने अनेक संकटो एव झझावातो के मध्य भी साहित्य की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखा। वास्तव मे राजस्थान की भूमि पावन है तथा उसका प्रत्येक करण वन्दनीय है।

राजस्थान की इस पावन भूमि पर अनेको सन्त हुए जिन्होने अपनी कृतियो के द्वारा भारतीय साहित्य की अजस्र धारा वहायी तथा अपने आध्यात्मिक प्रवचनो, गीतिकाव्यो एव मुक्तक छन्दो द्वारा देश मे जन जीवन के नैतिक धरातल को कभी गिरने नही दिया। राजस्थान मे ये सन्त विविध रूप मे हमारे सामने आये और विभिन्न धर्मों की मान्यता के अनुसार उनका स्वरूप भी एकसा नही रह सका।

'सन्त' शब्द के अब तक विभिन्न अर्थ लिये जाते रहे हैं वैसे सन्त शब्द का व्यवहार जितना गत २५, ३० वर्षो मे हुआ है उतना पहिले कभी नही हुआ। पहिले जिस साहित्य को भक्ति साहित्य एव अध्यात्म साहित्य के नाम से सम्बोधित किया जाता था उसे अब सन्त साहित्य मान लिया गया है। कबीर, मीरा, सूरदास तुलसीदास, दादूदयाल, सुन्दरदास आदि सभी भक्त कवियो का साहित्य सन्त के साहित्य की परिभाषा मे माना जाता है। स्वय कबीरदास ने सन्त शब्द की जो व्याख्या की है वह निम्न प्रकार है।

निरवैरी निहकामता सोई सेती नेह।
विषिया स्यूं न्यारा रहे, सतनि को अङ्ग एह॥

अर्थात् प्राणि मात्र जिसका मित्र है, जो निष्काम है, विषयों से दूर रहते हैं ही सन्त हैं।

तुलसीदास जी ने सन्त शब्द की स्पष्ट व्याख्या नही करते हुए निम्न शब्दो न्त और असन्त का भेद स्पष्ट किया है।

वन्दो सन्त असज्जन चरणा, दुख प्रद उभय बीच कछु वरणा।

हिन्दी के एक कवि विट्ठलदास ने सन्तो के वारे मे निम्न शब्द प्रयुक्त ये है।

सन्तनि को सिकरी किन काम।
आवत जात पहनिया टूटी विसरि गयो हरि नाम ॥

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने "उत्तर भारत की सन्त परम्परा" मे सन्त शब्द विवेचना करते हुये लिखा है—"इस प्रकार सन्त शब्द का मौलिक अर्थ" शुद्ध स्तित्व मात्र का ही बोधक है और इसका प्रयोग भी इसी कारण उस नित्य वस्तु परमतत्व के लिये अपेक्षित होगा जिसका नाश कभी नही होता, जो सदा एक स तथा अविकृत रूप मे विद्यमान रहा करता है और जिसे सन्त के नाम मे भी भिहित किया जा सकता है। इस शब्द के "सत" रूप वा ब्रह्म वा परमात्मा के ये किया गया प्रयोग बहुधा वैदिक साहित्य मे भी पाया जाता है"।[१]

जैन साहित्य मे सन्त शब्द का बहुत कम उल्लेख हुआ है। साधु एव श्रमण ाचार्य, मुनि, भट्टारक, यति आदि के प्रयोग की ही प्रधानता रही है। स्वय भगवान हावीर को महाश्रमण कहा गया है। साधुओ की यहा पाच श्रेणिया है जिन्हे च परमेष्ठि कहा जाता है ये परमेष्ठी अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव सर्व-ाधु हैं इनमे अर्हन्त एव सिद्ध सर्वोच्च परमेष्ठी हैं।

अर्हन्त सकल परमात्मा को कहते है। अर्हत्पद प्राप्त करने के लिये तीर्थकरत्व नाम कर्म का उदय होना अनिवार्य है। वे दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय एव अन्तराय इन चार कर्मो का नाश कर चुके होते हैं तथा शेष चार कर्म वेदनीय, आयु, नाम, और गोत्र के नाश होने तक ससार में जीवित रहते हैं। उनके समवशरण की रचना होती है और वही उनकी दिव्य ध्वनि [प्रवचन] खिरती है।

सिद्ध मुक्तात्मा को कहते हैं। वे पूरे आठ कर्मो का क्षय कर चुके होते हैं। मोक्ष में विराजमान जीव सिद्ध कहलाते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने सिद्ध परमेष्ठी का निम्न स्वरूप लिखा है।

---

१. देखिये 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' पृष्ठ संख्या ४

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे ।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्च ।।

सिद्ध निराकार होते हैं। उनके औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण, शरीर के इन पाच भेदो मे से उनके कोई सा भी शरीर नही होता । योगीन्द्र ने इन्हें निष्कल कहा है । अर्हन्त एव सिद्ध दोनो ही सर्वोच्च परमेष्ठी हैं इन्हे महा सन्त भी कहा जा सकता है ।

आचार्य उपाध्याय एव सर्वसाधु शेष परमेष्ठी है। सर्वसाधु वे हैं जो आचार्य समन्तभद्र की निम्न व्याख्या के अन्तर्गत आते हैं।

विषयाशावशातीतो निरारम्भो परिग्रह ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते ।।

जो चिरकाल मे जिन दीक्षा मे प्रवृत्त हो चुके हैं तथा २८ मूल गुणो[1] का पालन करने वाले हैं।

वे साधु उपाध्याय[2] कहलाते हैं जिनके पास मोक्षार्थी जाकर शास्त्राध्ययन करते हो तथा जो सघ में शिक्षक का कार्य करते हो । लेकिन वही साधु उपाध्याय बन सकता है जिसने साधु के चरित्र को पूर्ण रूप से पालन किया हो ।

तिलोपण्णत्ति में उपाध्याय का निम्न लक्षण लिखा है ।

अण्णाण घोरतिमिरे दुरततीरह्मि हिंडमाणाण ।
भवियाणुज्जोययरा उवज्झया वरमदिं देंतु ।

---

१ हिंसा अनृत तस्करी अब्रह्म परिग्रह पाप ।
मन वच तन तै त्यागवो, पच महाव्रत थाप ।।
ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपन आदान ।
प्रतिष्ठापनायुत क्रिया, पाचो समिति विधान ।।
सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रोध ।
षट आवशि मजन तजन, शयन भूमि को शोध ।।
वस्त्र त्याग कचलोच अरू, लघु भोजन इक बार ।
दांतन मुख मे ना करें, ठाडे लेहिं आहार ।।

२ चौदह पूरव को धरे, ग्यारह अङ्ग सुजान ।
उपाध्याय पच्चीस गुण पढे पढावे ज्ञान ।।

इसी तरह आचार्य नेमिचन्द्र ने द्रव्य सग्रह मे उपाध्याय मे पाये जाने वाले
न गुणों को गिनाया है।

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसरणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥

आचार्य वे साधु कहलाते हैं जो सघ के प्रमुख हैं। जो स्वयं व्रतो का आचरण
ते है और दूसरो से करवाते है वे ही आचार्य कहलाते है। वे ३६ मूलगुणो[3] के
री होते है। समन्तभद्र, भट्टाकंलक, पात्रकेशरी, प्रभाचन्द्र, वीरसेन, जिनसेन,
भद्र आदि सभी आचार्य थे।

इस प्रकार आचार्य, उपाध्याय एव सर्वसाधु ये तीनो ही मानव को सुमार्ग पर
जाने वाले है। अपने प्रवचनो से उसमे वे जागृति पैदा करते है जिससे वह अपने
वन का अच्छी तरह विकास कर सके। वे साहित्य निर्माण करते है और जनता
उसके अनुसार चलने का आग्रह करते हैं। सम्पूर्ण जैन वाड्मय आचार्यो द्वारा
मित है।

प्रस्तुत पुस्तक मे सवत् १४५० से १७५० तक होने वाले राजस्थान के जैन
न्तो का जीवन एव उनके साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। इन ३०० वर्षों मे
ट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एव सर्वसाधु के रूप मे जनता द्वारा पूजित थे। ये
ट्टारक प्रारम्भ में नग्न होते थे। भट्टारक सकलकीर्त्ति को निर्ग्रन्थराजा कहा गया
। भ० सोमकीर्त्ति अपने आपको भट्टारक के स्थान पर आचार्य लिखना अधिक
सन्द करते थे। भट्टारक शुभचन्द्र को यतियो का राजा कहा जाता था। भ०
ीरचन्द महाव्रतियो के नायक थे। उन्होने १६ वर्ष तक नीरस आहार का सेवन
किया था। आवा (राजस्थान) मे भ० शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एव प्रभाचन्द्र की जो
नषेधिकायें है वे तीनो ही नग्नावस्था की ही हैं। इस प्रकार ये भट्टारक अपना
ाचरण श्रमण परम्परा के पूर्णत. अनुकूल रखते थे। ये अपने संघ के प्रमुख होते थे।
था उसकी देख रेख का सारा भार इन पर ही रहता था। इनके सघ मे मुनि,
ह्मचारी, आर्यिका भी रहा करती थी। प्रतिष्ठा—महोत्सवो के सचालन मे इनका
मुख हाथ होता था। इन ३०० वर्षो मे इन भट्टारको के अतिरिक्त अन्य किसी भी
ाधु का स्वतन्त्र व्यक्तित्व नही रहा और न उसने कोई समाज को दिशा निर्देशन
का ही काम किया। इसलिये ये भट्टारक एव उनके शिष्य ब्रह्मचारी पद वाले सभी
सन्त थे। मंडलाचार्य गुणचन्द्र के सघ मे ६ आचार्य, १ मुनि, २ ब्रह्मचारी एवं १२
र्यिकाएं थी।

३. द्वादश तप दश धर्मजुत पालै पन्चाचार।
षट आवश्यक गुप्ति त्रय. अचारज पद सार ॥

जैन साहित्य मे सन्त शब्द का अधिक प्रयोग नही हुआ है। योगीन्दु ने सर्व प्रथम सन्त शब्द का निम्न प्रकार प्रयोग किया है।

णिच्चु णिरजणु णाणमउ परमाणद सहाउ।
जो एहउ सो सन्तु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१।६७॥

यहा सन्त शब्द साधु के लिये ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि लौकिक दृष्टि से हम एक गृहस्थ को जिसकी प्रवृत्तिया जगत से अलिप्त रहने की होती है, तथा जो अपने जीवन को लोकहित की दृष्टि से चलाता है तथा जिसकी गतिविधियो से किसी अन्य प्राणी को भी कष्ट नही होता, सन्त कहा जा सकता है लेकिन सन्त शब्द का शुद्ध स्वरूप हमे साधुओ मे ही देखने को मिलता है जिनका जीवन ही परहितमय है तथा जो जगत के प्राणियो को अपने पावन जीवन द्वारा सन्मार्ग की ओर लगाते हैं। भट्टारक भी इसीलिये सन्त कहे जाते हैं कि उनका जीवन ही राष्ट्र को आध्यात्मिक खुराक देने के लिये समर्पित हो चुका होता है तथा वे देश को साहित्यिक, सास्कृतिक एव बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न बनाते है। वे स्थान स्थान पर विहार करके जन मानस को पावन बनाते है। ये सन्त चाहे भट्टारक वेश मे हो या फिर ब्रह्मचारी के वेश मे। ब्रह्म जिनदास केवल ब्रह्मचारी थे लेकिन उनका जीवन का चिन्तन एव मनन अत्यधिक उत्कर्षमय था।

भारतीय सस्कृति, साहित्य के प्रचार एव प्रसार मे इन सन्तो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जिस प्रकार हम कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, नानक आदि को सतो के नाम से पुकारते हैं उसी दृष्टि से ये भट्टारक एव उनके शिष्य भी सन्त थे और उनसे भी अधिक उनके जीवन की यह विशेषता थी कि वे घर गृहस्थी को छोडकर आत्म विकास के साथ साथ जगत के प्राणियो को भी हित का ध्यान रखते थे। उन्हे अपने शरीर की जरा भी चिन्ता नही थी। उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। वे प्रशसा-निंदा, लाभ-अलाभ, तृण एव कचन मे समान थे। वे अपने जीवन मे सासारिक पदार्थो से न स्नेह रखते थे और न लोभ तथा आसक्ति। उनके जीवन मे विकार, पाप, भय एव आशा, लालसा भी नही होती थी।

ये भट्टारक पूर्णत सयमी होते थे। भ० विजयकीर्त्ति के सयम को डिगाने के लिये कामदेव ने भी भारी प्रयत्न किये लेकिन अन्त मे उसे ही हार माननी पडी। विजयकीर्त्ति अपने सयम की परीक्षा मे सफल हुए। इनका आहार एव विहार पूर्णतः श्रमण परम्परा के अन्तर्गत होता था। १५, १६ वी शताब्दी तो इनके उत्कर्ष की शताब्दी थी। मुगल बादशाहो तक ने उनके चरित्र एव विद्वत्ता की प्रशसा की थी। उन्हे देश के सभी स्थानो मे एव सभी धर्मावलम्बियो से अत्यधिक सम्मान मिलता

।। बाद मे, तो वे जैनो के आध्यात्मिक राजा कहलाने लगे किन्तु यही उनके तन का प्रारम्भिक कदम था।

जैन सन्तो ने भारतीय साहित्य को अमूल्य कृतिया भेंट की है। उन्होने दैव ही लोक भाषा मे साहित्य निर्माण किया। प्राकृत, अपभ्रंश एव हिन्दी ाषाओ मे रचनायें इनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का वप्न इन्होने ८ वी शताब्दी से पूर्व ही लेना प्रारम्भ कर दिया था। मुनि ामसिंह का दोहा पाहुड हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य कृति है जिसकी तुलना मे ापा साहित्य की बहुत कम कृतियाँ आ सकेंगी। महाकवि तुलसीदास जी को तो १७ वी शताब्दी मे भी हिन्दी भापा मे रामचरित मानस लिखने मे झिझक हो रही ी किन्तु इन जैन सन्तो ने उनके ८०० वर्ष पहिले ही साहस के साथ प्राचीन हिन्दी मे रचनायें लिखना प्रारम्भ कर दिया था।

जैन सन्तो ने साहित्य के विभिन्न अ गो को पल्लवित किया। वे केवल चरित ाव्यो के निर्माण मे ही नही उलझे किन्तु पुराण, काव्य, वेलि, रास, पचासिका, ातक, पच्चीसी, बावनी, विवाहलो, आख्यान आदि काव्य के पचासो रुपो को इन्होने अपना समर्थन दिया और उनमे अपनी रचनायें निर्मित करके उन्हे पल्लवित होने का सुअवसर दिया। यही कारण है कि काव्य के विभिन्न अ गो मे इन सन्तो द्वारा निर्मित रचनाये अच्छी सख्या मे मिलती है।

आध्यात्मिक एव उपदेशी रचनाये लिखना इन सन्तो को सदा ही प्रिय रहा है। अपने अनुभव के आधार पर जगत की दशा का जो सुन्दर चित्रण इन्होने अपनी कृतियो मे किया है वह प्रत्येक मानव को सत्पथ पर ले जाने वाला है। इन्होने मानव से जगत से भागने के लिये नही कहा किन्तु उसमे रहते हुए ही अपने जीवन को सुमुन्नत बनाने का उपदेश दिया। शान्त एव आध्यात्मिक रस के अतिरिक्त इन्होने वीर, शृ गार, एव अन्य रसो मे भी खूब साहित्य सृजन किया।

महाकवि वीर द्वारा रचित 'जम्बूस्वामीचरित' (१०७६) एव भ० रतनकीर्त्ति द्वारा वीरविलासफाग इसी कोटि की रचनाये हैं। रसो के अतिरिक्त छन्दो मे जितनी विविधताऐ इन सन्तो की रचनाओ मे मिलती है उतनी अन्यत्र नही। इन सन्तो की हिन्दी, राजस्थानी, एव गुजराती भापा की रचनायें विविध छन्दो से आप्लावित है।

लेखक का विश्वास है कि भारतीय साहित्य की जितनी अधिक सेवा एव सुरक्षा इन जैन सन्तो ने की है उतनी अधिक सेवा किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म के साधु वर्ग द्वारा नही हो सकी है। राजस्थान के इन सन्तो ने स्वय ने त

भाषाओ मे सैकडो हजारो कृतियो का सृजन किया ही किन्तु अपने पूर्ववर्ती आचार्यो, साधुओ, कवियो एव लेखको की रचनाओ का भी बडे प्रेम, श्रद्धा एव उत्साह से सग्रह किया । एक एक ग्रन्थ की कितनी ही प्रतिया लिखवा कर ग्रन्थ भण्डारो मे विराजमान की और जनता को उन्हे पढने एव स्वाध्याय के लिये प्रोत्साहित किया । राजस्थान के आज सैकडो हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार उनकी साहित्यिक सेवा के ज्वलत उदाहरण हैं । जैन सन्त साहित्य सग्रह की दृष्टि से कभी जातिवाद एव सम्प्रदाय के चक्कर मे नही पडे किन्तु जहा से उन्हे अच्छा एव कल्याणकारी साहित्य उपलब्ध हुआ वही से उसका सग्रह करके शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत किया गया । साहित्य सग्रह की दृष्टि से इन्होने स्थान स्थान पर ग्रंथ भण्डार स्थापित किये । इन्ही सन्तो की साहित्यिक सेवा के परिणाम स्वरूप राजस्थान के जैन ग्र थ भण्डारो में १ लाख से अधिक हस्तलिखित ग्र थ अब भी उपलब्ध होते हैं ।[1] ग्र थ सग्रह के अतिरिक्त इन्होने जैनेतर विद्वानो द्वारा लिखित काव्यो एव अन्य ग्र थो पर टीका लिख कर उनके पठन पाठन मे सहायता पहुचायी । राजस्थान के जैन ग्र थ भण्डारो मे अकेले जैसलमेर के ही ऐसे ग्र थ सग्रहालय है जिनकी तुलना भारत के किसी भी प्राचीनतम एव बडे से बडे ग्र थ सग्रहालय से की जा सकती है । उनमे सग्रहीत अधिकाँश प्रतिया ताडपत्र पर लिखी हुई है और वे सभी राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति हैं ।

श्वेताम्बर साधु श्री जिनचन्द्र सूरि ने सवत् १४९७ मे वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना करके साहित्य की सैकडो अमूल्य निधियो को नष्ट होने से बचा लिया । अकेले जैसलमेर के इन भण्डारो को देखकर कर्नल टाड, डा० बूहलर, डा० जैकोबी जैसे पाश्चात्य विद्वान एव भाण्डारकर, दलाल जैसे भारतीय विद्वान आश्चर्य चकित रह गये थे उन्होने अपनी दातो तले अगुली दबा ली । यदि ये पाश्चात्य एव भारतीय विद्वान् नागौर, अजमेर, आमेर एव जयपुर के शास्त्र भण्डारो को देख लेते तो सवभत वे इनकी साहित्यिक धरोहर को देखकर नाच उठते और फिर जैन साहित्य एव जैन सतो की सेवाओ पर न जाने कितनी श्रद्धाजलिया अर्पित करते । कितने ही ग्र थ सग्रहालय तो अब तो ऐसे हो सकते है जिनकी किसी भी विद्वान् द्वारा छानबीन नही की गई हो । लेखक को राजस्थान के ग्र थ भण्डारो पर शोध निबन्ध लिखने एव श्री महावीर क्षेत्र द्वारा राजस्थान के शास्त्र भडारो की ग्र थ सूची बनाने के अवसर पर १०० से भी अधिक भण्डारो को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है । यदि मुसलिम युग मे धर्मान्ध शासको द्वारा इन शास्त्र भडारो का विनाश नही किया जाता एव हमारी लापरवाही से सैंकडो हजारो ग्र थ चूहो, दीमक एव सीलन

---

१. ग्रथ भण्डारो का विस्तृत परिचय के लिये लेखक की "जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान" पुस्तक देखिये ।

नष्ट नही होते तो पता नही आज कितनी अधिक सख्या मे इन भडारो मे ग्रंथ पलब्ध होते। फिर भी जो कुछ अवशिष्ट है वे ही इन सन्तो की साहित्यिक निष्ठा ो प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त है।

प्रस्तुत पुस्तक मे राजस्थान की भूमि को सम्वत् १४५० से १७५० तक ावन करने वाले सन्तो का परिचय दिया गया है। लेकिन इस प्रदेश में तो प्राचीन-म काल से ही सन्त होते रहे है जिन्होने अपनी सेवाओ द्वारा इस प्रदेश की जनता ो जाग्रत किया है। डा० ज्योतिप्रसाद जी[1] के अनुसार "दिगम्बराम्नाय सम्मत ट् खडगमादि मूल आगमो की सर्व प्रसिद्ध एव सर्वाधिक महत्वपूर्ण धवल, जयधवल, हाधवल नाम की विशाल टीकाओ के रचयिता प्रातः स्मरणीय स्वामी वीरसेन को न्म देने का सौभाग्य भी राजस्थान की भूमि को ही प्राप्त है। ये आचार्य प्रवर ी वीरसेन भट्टारक की सम्मानित पदवी के धारक थे। इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार पता चलता है कि आगम सिद्धान्त के तत्वज्ञ श्री एलाचार्य चित्रकूट (चित्तौड) विराजते थे और उन्ही के चरणो के सानिध्य इन्होने सिद्धान्तादि का अध्ययन किया था।"

जम्बूद्वीपपण्णत्ति के रचयिता आ० पद्मनन्दि राजस्थानी सन्त थे। प्रज्ञप्ति २३९८ प्राकृत गाथाओ मे तीन लोको का वर्णन किया गया है। प्रज्ञप्ति की चना बारा (कोटा) नगर मे हुई थी। इसका रचनाकाल सवत् ८०५ है। उन दनो मेवाड पर राजा शक्ति या सत्ति का शासन था और बारा नगर मेवाड के धीन था। ग्रथकार ने अपने आपको वीरनन्दि का प्रशिष्य एव बलनन्दि के शिष्य लखा है। १० वी शताब्दी मे होने वाले हरिभद्र सूरि राजस्थान के दूसरे सन्त जो प्राकृत एव सस्कृत भाषा के जबरदस्त विद्वान् थे। इनका सम्बन्ध चित्तौड था। आगम ग्रथो पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होने अनुयोगद्वार सूत्र, आव-यक सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र, प्रज्ञापना सूत्र आदि आगम ग्रथो पर सस्कृत विस्तृत टीकाऐ लिखी और उनके स्वाध्याय मे वृद्धि की। न्याय शास्त्र के ये काण्ड विद्वान् थे इसीलिये इन्होने अनेकान्त जयपताका, अनेकान्तवादप्रवेश जैसे ार्शनिक ग्रथो की रचना की। समराइच्चकहा प्राकृत भाषा की सुन्दर कथाकृति जो इन्ही के द्वारा गद्य पद्य दोनो मे लिखी हुई है। इसमे ९ प्रकरण है जिनमे रस्पर विरोधी दो पुरुषो के साथ साथ चलने वाले ९ जन्मान्तरो का वर्णन किया या है। इसका प्राकृतिक वर्णन एव भाषा चित्रण दोनो ही सुन्दर है। धूर्ताख्यान भी नकी अच्छी रचना है। हरिभद्र के 'योगबिन्दु' एव 'योगदृष्टि' समुच्चय भी र्शन शास्त्र की अच्छी रचनाये मानी जाती है।

---

१. देखिये वीरवाणी का राजस्थान जैन साहित्य सेवी विशेषांक पृष्ठ स० ९

महेश्वरसूरि भी राजस्थानी श्वे. सन्त थे। इनकी प्राकृत भाषा की 'ज्ञान पचमी कहा' तथा अपभ्रंश की 'संयममजरी कहा' प्रसिद्ध रचनायें है। दोनो ही कृतियो मे कितनी ही सुन्दर कथाएँ हैं जो जैन दृष्टिकोण मे लिखी गई है।

सवत् १७५० के पश्चात् इन सन्तो का साहित्य निर्माण की ओर ध्यान कम होता गया और ये अपना अधिकाश समय प्रतिष्ठा महोत्सवो के आयोजन में, विधि विधान तथा व्रतोद्यापन सम्पन्न कराने मे लगाने लगे। इनके अतिरिक्त ये बाह्य क्रियाओ के पालन करने मे इतने अधिक जोर देने लगे कि जन साधारण का इनके प्रति भक्ति, श्रद्धा एव आदर का भाव कम होने लगा। इन सन्तों की आमेर, अजमेर, नागौर, डूगरपुर, ऋषभदेव आदि स्थानो मे गादियां अवश्य थी और एक के पश्चात् दूसरे भट्टारक भी होते रहे लेकिन जो प्रभाव भ० सकलकीर्ति, जिनचन्द्र, शुभचन्द्र आदि का कभी रहा था उसे ये सन्त रख नही सके। १८ वी एव १९ वीं शताब्दी मे श्रावक समाज मे विद्वानो की जो बाढ सी आयी थी और जिसका नेतृत्व महापडित टोडरमल जी ने किया था उससे भी इन भटारको के प्रभाव मे कमी होती गई क्योकि इन दो शताब्दी मे होने वाले प्राय सभी विद्वान् इन भट्टारको के विरुद्ध थे। दिगम्बर समाज मे "तेरहपथ" के नाम से जिस नये पथ ने जन्म लिया था वह भी इन सन्तो द्वारा समर्थित बाह्याचार के विरुद्ध था लेकिन इन सब विरोधो के होने पर भी दिगम्बर समाज मे सन्तो के रूप मे भट्टारक परम्परा चलती रही। यद्यपि इन सन्तो ने साहित्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान नही दिया लेकिन प्राचीन साहित्य की जो कुछ सुरक्षा हो सकी है उसमे इनका प्रमुख हाथ रहा। नागौर, अजमेर, आमेर एव जयपुर के भण्डारो मे जिस विशाल साहित्य का सग्रह है वह सब इन सन्तो द्वारा की गई साहित्य सुरक्षा का ही तो सुफल है इसलिये किसी भी दृष्टि से इनकी सेवाओ को भुलाया नही जा सकता।

आमेर गादी से सम्बन्धित भ० देवेन्द्रकीर्त्ति, महेन्द्रकीर्त्ति, क्षेमेन्द्रकीर्त्ति, सुरेन्द्र-कीर्त्ति एव नरेन्द्रकीर्त्ति, नागौर गादी पर होने वाले भ० रत्नकीर्त्ति (स० १७४५) एव विजयकीर्त्ति (१८०२) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भ० विजयकीर्त्ति अपने समय के अच्छे विद्वान् थे और अब तक उनकी कितनी ही कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं इनमे कर्णामृतपुराण, श्रेणिकचरित, जम्बूस्वामीचरित आदि के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं।

साहित्य सुरक्षा के अतिरिक्त इन सन्तो ने प्राचीन मन्दिरो के जीर्णोद्वार एव नवीन मन्दिरो के निर्माण मे विशेष योग दिया। १८ वी एव १९ वी शताब्दी मे सैकडो बिम्बप्रतिष्ठाये सम्पन्न हुई और इन्होने उनमे विशेष रूप से भाग लेकर उन्हें सफल बनाने का पूरा प्रयास किया। ये ही उन आयोजनो के विशेष अतिथि

। सवत् १७४६ मे चादखेडी मे भारी प्रतिष्ठा हुई थी उसका वर्णन एक पट्टावली
दिया हुआ है जिससे पता चलता है कि समाज के एक वर्ग के विरोध के उपरात
ी ऐसे समारोहो मे इन्हे ही विशेष अतिथि बनाकर आमन्त्रित किया जाता था।
ीकानेर (सवत् १७५१) बासखो (सवत् १७८३) मारोठ (स० १७६४) बून्दी
स० १७८१) सवाई माधोपुर (स० १८२६) अजमेर (स० १८५२) जयपुर
स० १८६१ एव १८६७) आदि स्थानो मे जो सास्कृतिक प्रतिष्ठा आयोजन
म्पन्न हुए थे उन सबमे इन सन्तो का विशेष हाथ था ।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में

जैन सन्तो पर एक पुस्तक तैयार करने का पर्याप्त समय से विचार चल
हा था क्योकि जब कभी सन्त साहित्य पर प्रकाशित होने वाली पुस्तक देखने मे
ाती और उसमे जैन सन्तो के बारे मे कोई भी उल्लेख नही देख कर हिन्दी विद्वानो
 इनके साहित्य की उपेक्षा से दु.ख भी होता किन्तु साथ मे यह भी सोचता कि
ब तक उनकी कोई सामग्री ही उपलब्ध नही होती तब तक यह उपेक्षा इसी प्रकार
लती रहेगी। इसलिए सर्व प्रथम राजस्थान के जैन सन्तो के जीवन एव उनकी
ाहित्य सेवा पर लिखने का निश्चय किया गया। किन्तु प्राचीनकाल से ही होने
ाले इन सन्तो का एक ही पुस्तक मे परिचय दिया जाना सम्भव नही था इसलिए
वत् १४५० से १७५० तक का समय ही अधिक उपयुक्त समझा गया क्योकि यही
मय इन सन्तो (भट्टारको) का स्वर्ण काल रहा था इन ३०० वर्षो मे जो
भावना, त्याग एव साहित्य सेवा की धुन इन सन्तो की रही वह सबको आश्चर्या-
न्वित करने वाली है।

पुस्तक मे ५४ जैन सन्तो के जीवन, व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रकाश डाला
है। इनमे कुछ सन्तो का तो पाठको को समवतः प्रथम बार परिचय प्राप्त होगा।
इन सन्तो ने अपने जीवन विकास के साथ साथ जन जागृति के लिए किस किस
प्रकार के साहित्य का निर्माण किया वह सब पुस्तक मे प्रयुक्त सामग्री से भली प्रकार
जाना जा सकता है। वास्तव मे ये सच्चे अर्थो मे सन्त थे। अपने स्वय के
जीवन को पवित्र करने के पश्चात् उन्होने जगत को उसी मार्ग पर चलने का उपदेश
दिया था। वे सच्चे अर्थ मे साहित्य एव धर्म प्रचारक थे। उन्होने भक्ति काव्यो की
ही रचना नही की किन्तु भक्ति के अतिरिक्त अध्यात्म, सदाचरण एव महापुरुषो के
जीवन के आधार पर भी कृतिया लिखने और उनके पठन पाठन का प्रचार किया।
वे कभी एक स्थान पर जम कर नही रहे किन्तु देश के विभिन्न ग्राम नगरो में विहार
करके जन जागृति का शखनाद फूका। पुस्तक के अन्त मे कुछ लघु रचनायें एव कुछ
रचनाओ के प्रमुख स्थलो को अविकल रूप से दिया गया है। जिससे विद्वान् एवं
पाठक इन रचनाओ का सहज भाव से आनन्द ले सके।

आभार

सर्व प्रथम मैं वर्त्तमान जैन सन्त पूज्य मुनि श्री विद्यानन्दि जी महाराज का अत्यधिक आभारी हू जिन्होने पुस्तक पर आशीर्वाद के रूप मे अपना अभिमत लिखने की कृपा की है।

यह कृति श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के साहित्य शोध विभाग का प्रकाशन है इसके लिये मैं क्षेत्र प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी माननीय सदस्यो तथा विशेषत: सभापति डा० राजमलजी कासलीवाल एव मत्री श्री गैंदीलालजी साह एडवोकेट का आभारी हू जिनके सद् प्रयत्नो से क्षेत्र की ओर से प्राचीन साहित्य के खोज एव उसके प्रकाशन जैसा महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित हो रहा है। वास्तव मे क्षेत्र कमेटी ने समाज को इस दिशा मे अपना नेतृत्व प्रदान किया है। पुस्तक की भूमिका आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय ने लिखने की महती कृपा की है। डाक्टर साहब का मुझे काफी समय से पर्याप्त स्नेह एव साहित्यिक कार्यों मे निर्देशन मिलता रहता है इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हू। मैं मेरे सहयोगी श्री अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का भी पूर्ण आभारी हू जिन्होंने पुस्तक को तैयार करने मे अपना पूर्ण सहयोग दिया है। मैं श्री प्रेमचन्द रावका का भी आभारी हू जिन्होंने इसकी अनुक्रमणिकाये तैयार की है।

दिनाक १-६-६७ डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

* विषय सूची *

कतिपय लघु कृतियां एवं उद्धरण

शताब्दि क्रमानुसार सन्तों की नामावलि

—:ঃ:—

१५ वीं शताब्दि

नाम	संवत्
भट्टारक सकलकीर्ति	१४४३—१४९९
ब्रह्म जिनदास	१४४५—१५१५
मुनि महनन्दि	
महोपाध्याय जयसागर	१४५०—१५१०
हीरानन्द सूरि	१४८४

१६ वीं शताब्दि

नाम	संवत्
भट्टारक भुवनकीर्ति	१५०८
भट्टारक जिनचन्द्र	१५०७
आचार्य सोमकीर्ति	१५२६—४०
भट्टारक ज्ञानभूषण	१५३१—६०
ब्रह्म बूचराज	१५३०—१६००
आचार्य जिनसेन	१५५८
भट्टारक प्रभाचन्द्र	१५७१
ब्रह्म गुणकीर्ति	—
भट्टारक विजयकीर्ति	१५५२—१५७०
संत कवि यशोधर	१५२०—९०
मुनि सुन्दरसूरि	१५०१
ब्रह्म जीवधर	—
ब्रह्म धर्म रुचि	—

विद्याभूषण	१६००
वाचक मतिशेखर	१५१४
वाचक विनयसमुद्र	१५३८
भट्टारक शुभचन्द्र (प्रथम)	१५४०—१६१३

१७ वीं शताब्दि

ब्रह्म जयसागर	१५८०—१६५५
वीरचन्द्र	—
सुमतिकीर्त्ति	१६२०
ब्रह्म रायमल्ल	१६१५—१६३६
भट्टारक रत्नकीर्त्ति	१६४३—१६५६
भट्टारक कुमुदचन्द्र	१६५६
अभयचन्द्र	१६४०
आचार्य चन्द्रकीर्त्ति	१६००—१६६०
भट्टारक अभयनन्दि	१६३०
ब्रह्म जयराज	१६३२
सुमतिसागर	१६००—१६६५
ब्रह्म गणेश	—
संयमसागर	—
त्रिभुवनकीर्त्ति	१६०६
भट्टारक रत्नचन्द्र (प्रथम)	१६७६
ब्रह्म अजित	१६४६
आचार्य नरेन्द्रकीर्त्ति	१६४६
कल्याणकीर्त्ति	१६९२
भट्टारक महीचन्द्र	—
ब्रह्म कपूरचन्द	१६९७
हर्षकीर्त्ति	—
भट्टारक सकलभूषण	१६२७

मुनि राजचन्द्र	१६८४
ज्ञानकीर्ति	१६५६
महोपाध्याय समयसुन्दर	१६२०—१७००

१८ वीं शताब्दि

भट्टारक शुभचन्द्र (द्वितीय)	१७४५
ब्रह्म धर्मसागर	—
विद्यासागर	—
भट्टारक रत्नचन्द्र (द्वितीय)	१७५७
भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति	१६९१—१७२२
भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति	१७२२
भट्टारक जगत्कीर्त्ति	१७३३

—:§·§::—

भट्टारक सकलकीर्त्ति

'भट्टारक सकलकीर्ति' १५ वी शताब्दी के प्रमुख जैन सन्त थे। राजस्थान वं गुजरात मे 'जैन साहित्य एव सस्कृति' का जो जबरदस्त प्रचार एव प्रसार हो का था—उसमे इनका प्रमुख योगदान था। इन्होने सस्कृत एव प्राकृत साहित्य को ष्ट होने से बचाया और देश मे उसके प्रति एक अद्भुत आकर्षण पैदा किया। उनके दय मे आत्म साधना के साथ साथ साहित्य-सेवा की उत्कट अभिलाषा थी इसलिए ुवावस्था के प्रारम्भ मे ही जगत के वैभव को ठुकरा कर सन्यास धारण कर लिया। पहिले इन्होने अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त किया और फिर बीसो नव निर्मित रचनाओ के द्वारा समाज एव देश को एक नया ज्ञान प्रकाश दिया। वे जब तक जीवित रहे, तब तक देश मे और विशेषत. बागड प्रदेश एवं गुजरात के कुछ भागो मे साहित्यिक एव सास्कृतिक जागरण का शखनाद फूकते रहे।

'सकलकीर्त्ति' अनोखे सन्त थे। अपने धर्म के प्रति उनमे गहरी आस्था थी। जब उन्होने लोगो मे फैले अज्ञानान्धकार को देखा तो उनसे चुप नही रहा गया और जीवन पर्यन्त देश मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करके तत्कालीन समाज मे एक नव जागरण का सूत्रपात किया। स्थान स्थान पर उन्होने ग्रथ सग्रहालय स्थापित किए जिनमे उनके शिष्य एवं प्रशिष्य साहित्य लेखन एवं प्रचार का कार्य करते रहते थे। उन्होने अपने शिष्यो को साहित्य-निर्माण की ओर प्रेरित किया। वे महान् व्यक्तित्व के धनी थे। जहा भी उनका विहार होता वही एक अनोखा दृश्य उपस्थित हो जाता था। साहित्य एव सस्कृति की रक्षा के लिए लोगो की की टोलिया बन जाती और उन के साथ रहकर इनका प्रचार किया करती।

जीवन परिचय

'सन्त सकलकीर्त्ति' का जन्म सवत् १४४३ (सन् १३८६) मे हुआ था।[१] डा० प्रेमसागर जी ने 'हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि' मे सकलकीर्त्ति का सवत् १४४४ मे ईडर गद्दी पर बैठने का जो उल्लेख किया है वह सकलकीर्त्ति रास के अनुसार सही प्रतीत नही होता। इनके पिता का नाम करमसिंह एव माता का नाम शोभा था। ये अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले थे। इनकी जाति

---

१ हरषो सुणीय सुवाणि पालइ अन्य ऊअरि सुपर।
चोऊद त्रिताल प्रमाणि पूरइ दिन पुत्र जनमीउ ॥

हूबड थी[1] । होनहार विरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार गर्भाधारण के पश्चात् इनकी माता ने एक सुन्दर स्वप्न देखा और उसका फल पूछने पर करमसिह ने इस प्रकार कहा—

"तजि वयरण सुरिणसार, सार कुमर तुम्ह होइसिइए ।
निर्मल गगानीर, चदन नदन तुम्ह तरणुए ॥६॥
जलनिधि गहिर गभीर खीरोपम सोहा मरणुए ।
ते जिहि तरण प्रकाश जग उद्योतन जस किरणि ॥१०॥

बालक का नाम 'पूनसिह' अथवा 'पूर्णसिह' रखा गया । एक पट्टावलि मे इनका नाम 'पदर्थ' भी दिया हुआ है । द्वितीया के चन्द्रमा के समान वह बालक दिन प्रति दिन बढने लगा । उसका वर्ण राजहस के समान शुभ्र था तथा शरीर बत्तीस लक्षणो से युक्त था । पाच वर्ष के होने पर पूर्णसिह को पढने बैठा दिया गया । बालक कुशाग्र बुद्धि का था इसलिए शीघ्र ही उसने सभी ग्रन्थो का अध्ययन कर लिया । विद्यार्थी अवस्था मे भी इनका अर्हद् भक्ति की ओर अधिक ध्यान रहता था तथा क्षमा, सत्य, शौच एव ब्रह्मचर्य आदि धर्मों को जीवन मे उतारने का प्रयास करते रहते थे । गार्हस्थ जीवन के प्रति विरक्ति देखकर माता-पिता ने उनका १४ वर्ष की अवस्था मे ही विवाह कर दिया लेकिन विवाह बधन मे बाधने के पश्चात् भी उनका मन ससार मे नही लगा और वे उदासीन रहने लगे । पुत्र की गति-विधिया देखकर माता-पिता ने उन्हे बहुत समझाया और कहा कि उनके पास जो अपार सम्पत्ति है, महल-मकान है, नौकर-चाकर हैं, उसके वैराग्य धारण करने के पश्चात्—वह किस काम आवेगा ? यौवनावस्था सासरिक सुखो के भोग के लिए होती है । सयम का तो पीछे भी पालन किया जा सकता है । पुत्र एव माता-पिता के मध्य बहुत दिनो तक वाद-विवाद चलता रहा ।[2] वे उन्हे साधु-जीवन की

---

१ न्याति माहि मुहुतवंत हूंबड हरषि वखाणिइए ।
करमसिंह वितपन्न उदयवत इम जाणीइए ॥ ३ ॥
शोभित तरस अरधागि, मूलि सरीस्य सुंदरीय ।
सील स्यगारित अङ्गि पेखु प्रत्यक्षे पुरंदरीय ॥ ४ ॥
—सकलकीर्त्तिरास

२ देखवि चचल चित्त मात पिता कहि वछ सुणि ।
अह्म मदिर बहु वित्त आविसिइ कारण कवण ॥ २० ॥
लहुआ लीलावत सुख भोगवि संसार तणाए ।
पछइ दिवस बहूत अछिइ संयम तप तणाए ॥ २१ ॥
—सकलकीर्त्तिरास

ठिनाइयों की ओर सकेत करते तथा कभी कभी अपनी वृद्धावस्था का भी रोना- । लेकिन पूर्णसिंह के कुछ समझ मे नही आता और वे वारवार साधु-जीवन रण करने की उनसे स्वीकृति मागते रहते ।[1]

अन्त मे पुत्र की विजय हुई और पूर्णसिंह ने २६ वें वर्ष मे अपार सम्पत्ति तिलाञ्जलि देकर साधु-जीवन अपना लिया। वे आत्मकल्याण के साथ साथ गत्कल्याण की ओर चल पडे। 'भट्टारक सकलकीर्त्ति नु रास' के अनुसार उनकी समय केवल १८ वर्ष की आयु थी। उस समय भ० पद्मनन्दि का मुख्य केन्द्र णवा (राजस्थान) था और वे आगम ग्रन्थो के पारगामी विद्वान माने जाते थे सलिए ये भी नैणवा चले गये और उनके शिष्य वन कर अध्ययन करने लगे। यह नकी साधु जीवन की प्रथम पद यात्रा थी। वहा ये आठ वर्ष रहे और प्राकृत एवं स्कृत के ग्रन्थो का गम्भीर अध्ययन किया, उनके मर्म को समझा और भविष्य मे त्-साहित्य का प्रचार-प्रसार ही अपना एक उद्देश्य बना लिया। ३४ वें वर्ष मे उन्होंने आचार्य पदवी ग्रहण की और अपना नाम सकलकीर्त्ति रख लिया।

नैणवा से पुन. वागड प्रदेश मे आने के पश्चात ये सर्व प्रथम जन-साधारण मे साहित्यिक चेतना जाग्रत करने के निमित्त स्थान स्थान पर विहार करने लगे। एक बार वे खोडण नगर आये और नगर के बाहर उद्यान मे ध्यान लगाकर बैठ गए। उधर नगर से आई हुई एक श्राविका ने जब नग्न साधु को ध्यानस्थ बैठे देखा तो घर जा कर उसने अपनी भास से जिन शब्दो मे निवेदन किया--उसका एक पट्टावलि मे निम्न प्रकार वर्णन मिलता है —

"एक श्राविका पाणी गया हुता तो पाणी भरीने ते मारग आव्या ने श्राविका स्वामी सामो जो ही रह्या नेने मन मे विचार कर्यो ते मारी सासुजी वात करता हता तो या साधु दीसे छे, ते श्राविका उतावेलि जाई ने पोनी सासुजी ने वात कही जी। सासूजी एक वात कहु ते साचलो जी। ते सासू कही नु कहे छे वहु। सासूजी एक साधु जीनो प्रसाद छे तेहा साधुजी बैठां छे जी ते कने एक काठ का वर तन छे जी। एक मोरना पीछीदार छे जी तथा साधु बैठा छा जी! तारे सासू ये मन में बीचार करिने कह्या जी। अहो वहु! रिषि मुनि आव्या हो ने।

---

1. वचणि तीज सुणोवि, पून पिता प्रति इम कहिए।
निज मन नुचिम करेवि, धीरने तरण तप गहए॥ २२॥
जोवन गिह गमार, पडइ पापइ सोग्न घणा।
ते कहु मदण विचार किम अवसर जे वरलीयिए॥ २३॥
सकलकीर्तिरास

एवों कहिने सासू उठी। ते पछे साधुजी ने पासे आव्याजी। ते त्रीण प्रदक्षीणा देने वेंठा मुंनि उलस्यां मन मे हरख्या ते पछे नमोस्तु नमोस्तु करिने श्री गुरुवन्दना भक्ति की धी। पछे श्री स्वामीजी ने मॅनव्रत लीधो हतो ते तो पोताना पुन्य थकी श्रावीका आलो श्री स्वामी जी धर्मवृधी दीधी।"

विहार 'सकलकीर्त्ति' का वास्तविक साधु जीवन सवत् १४७७ से प्रारम्भ होकर सवत् १४९९ तक रहा। इन २२ वर्षो मे इन्होंने मुख्य रूप से राजस्थान के उदयपुर, डूगरपुर, वासवाडा, प्रतापगढ आदि राज्यो एव गुजरात प्रान्त के राजस्थान के समीपस्थ प्रदेशो मे खूब विहार किया। उस समय जन साधारण के जीवन मे धर्म के प्रति काफी शिथिलता आगई थी। साधु सतो के विहार का अभाव था। जन-साधारण की न तो स्वाध्याय के प्रति रुचि रही थी और न उन्हें सरल भाषा मे साहित्य ही उपलब्ध होता था। इसलिए सर्व प्रथम सकलकीर्त्ति ने उन प्रदेशो मे विहार किया और सारी समाज को एक सूत्र मे बाधने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से उन्होने कितनी ही यात्रा-सघो का नेतृत्व किया। सर्व प्रथम 'सघ पति सीह' के साथ गिरिनार यात्रा आरम्भ की। फिर वे चपानेर की ओर यात्रा करने निकले। वहा से आने के पश्चात् हूवड जातीय रतना के साथ मागीतुगी की यात्रा को प्रस्थान किया। इसके पश्चात् उन्होने अन्य तीर्थों की वन्दना की। जिससे राजस्थान एव गुजरात मे एक चेतना की लहर दौड गयी।

प्रतिष्ठाओं का आयोजन

तीर्थयात्राओ के समाप्त होने के पश्चात् 'सकलकीर्त्ति' ने नव मन्दिर निर्माण एव प्रतिष्ठायें करवाने का कार्य हाथ मे लिया। उन्होने अपने जीवन मे १४ विम्ब प्रतिष्ठाओ का सञ्चालन किया। इस कार्य मे योग देने वालो मे सघपति नरपाल एव उनकी पत्नी वहुरानी का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। गलियाकोट मे सघपति मूलराज ने इन्ही के उपदेश से चतुर्विंशति जिन विम्व की स्थापना की थी। नागद्रह जाति के श्रावक सघपति ठाकुरसिंह ने भी कितनी ही विम्व प्रतिष्ठाओ मे योग दिया। आवू नगर मे उन्होने एक प्रतिष्ठा महोत्सव का सञ्चालन किया था जिसमे तीन चौवीसी की एक विशाल प्रतिमा परिकर सहित स्थापित की गई।[1]

सन्त सकलकीर्त्ति द्वारा सवत् १४९०, १४९२, १४९७ आदि सवतो मे प्रतिष्ठापित मूर्त्तिया उदयपुर, डूगरपुर एव सागवाडा आदि स्थानो के जैन मन्दिर मे मिलती है। प्रतिष्ठा महोत्सवो के इन आयोजनो से तत्कालीन समाज मे जन-जाग्रति की जो भावना उत्पन्न हुई थी, उसने उन प्रदेशो मे जैन धर्म एव सस्कृति को जीवित रखने मे अपना पूरा योग दिया।

---

१ पवर प्रासाद आव्बू सहिरे त स परिकरि जिनवर त्रिणी चउवीस।
त स कीधो प्रतिष्ठा तेह तणोए, गुरि मेलवि चउविध संध्य सरीस॥

व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य :

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होंने जिन २ परम्पराओ की नीव रखी, उनका बाद में खूब विकास हुआ। अध्ययन गभीर था—इसलिए कोई भी विद्वान् इनके सामने नही टिक सकता था। प्राकृत एव सस्कृत भाषाओ पर इनका समान अधिकार था। ब्रह्म जिनदास एव भ० भुवनकीर्ति जैसे विद्वानो का इनका शिष्य होना ही इनके प्रबल पाण्डित्य का सूचक है। इनकी वाणी मे जादू था इसलिए जहा भी इनका विहार हो जाता था—वही इनके सैकडो भक्त बन जाते थे। ये स्वय तो योग्यतम विद्वान थे ही, किन्तु इन्होने अपने शिष्यो को भी अपने ही समान विद्वान् बनाया। ब्रह्म जिनदास ने अपने जम्बू स्वामी चरित्र[1] मे इनको महाकवि, निर्ग्रन्थ राजा एव शुद्ध चरित्रधारी[1] तथा हरिवश पुराण[2] मे तपोनिधि एव निर्ग्रन्थ श्रेष्ठ आदि उपाधियो से सम्बोधित किया है।

भट्टारक सकलभूषण ने अपने उपदेश रत्नमाला की प्रशस्ति मे कहा है कि सकलकीर्ति जन–जन का चित्त स्वत ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। ये पुण्य मूर्तिस्वरूप थे तथा पुराण ग्रन्थो के रचयिता थे।[3]

इसी तरह भट्टारक शुभचन्द्र ने 'सकलकीर्ति' को पुराण एव काव्यो का प्रसिद्ध नेता कहा है। इनके अतिरिक्त इनके बाद होने वाले प्राय सभी भट्टारक सन्तो ने सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एव विद्वता की भारी प्रशसा की है। ये भट्टारक थे किन्तु मुनि नाम से भी अपने–आपको सम्बोधित करते थे। 'धन्यकुमार चरित्र' ग्रन्थ की पुष्पिका मे इन्होने अपने–आपका 'मुनि सकलकीर्ति' नाम से परिचय दिया है।

ये स्वय रहते भी नग्न अवस्था मे ही थे और इसीलिए ये निर्ग्रन्थकार अथवा 'निर्ग्रन्थराज' के नाम से भी अपने शिष्यो द्वारा सम्बोधित किये गए हैं। इन्होने बागड़ प्रदेश मे जहा भट्टारको का कोई प्रभाव नही था—सवत् १४९२ मे गलियाकोट

---

१. ततो भवत्तस्य जगत्प्रसिद्धे पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्त्ति।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी निर्ग्रन्थराजा जगति प्रतापी॥

जम्बूस्वामीचरित्र

२. तत्पट्टपंकेजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी।
महाकवित्वादिकलाप्रवीणः तपोनिधिः श्री सकलादिकीर्त्ति.॥

हरिवंश पुराण

३. तत्पट्टधारी जनचित्तहारी पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी।
भट्टारकश्रीसकलादिकीर्त्तिः प्रसिद्धनामा जनि पुण्यमूर्त्ति॥२१६॥

—उपदेश रत्नमाला सकलभूषण

मे एक भट्टारक गादी की स्थापना की और अपने-आपको सरस्वती गच्छ एव बलात्कारगण की परम्परा मे भट्टारक घोषित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी थे तथा अपने जीवन मे इन्होने कितने ही व्रतो का पालन किया था।

सकलकीर्त्ति ने जनता को जो कुछ चारित्र सम्बन्धी उपदेश दिया, पहिले उसे अपने जीवन मे उतारा। २२ वर्ष के एक छोटे से समय मे ३५ से अधिक ग्रन्थो की रचना, विविध ग्रामो एव नगरो मे विहार, भारत के राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश आदि प्रदेशो के तीर्थों की पद यात्रा एव विविध व्रतो का पालन केवल सकलकीर्त्ति जैसे महा विद्वान् एव प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले साधु से ही सम्पन्न हो सकते थे। इस प्रकार ये श्रद्धा ज्ञान एव चारित्र से विभूषित उत्कृष्ट एव आकर्षक व्यक्तित्व वाले साधु थे।

शिष्य-परम्परा

भट्टारक सकलकीर्त्ति के कुल कितने शिष्य थे इसका कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन एक पट्टावली के अनुसार इनके स्वर्गवास के पश्चात् इनके शिष्य धर्मकीर्त्ति ने नोतनपुर मे भट्टारक गद्दी स्थापित की। फिर विमलेन्द्र कीर्त्ति भट्टारक हुये और १२ वर्ष तक इस पद पर रहे। इनके पश्चात् आँतरी गाव मे सब श्रावको ने मिलकर सघवी सोमरास श्रावक को भट्टारक दीक्षा दी तथा उनका नाम भुवनकीर्त्ति रखा गया। लेकिन अन्य पट्टावलियो मे एव इस परम्परा होने वाले सन्तो के ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे भुवनकीर्त्ति के अतिरिक्त और किसी भट्टारक का उल्लेख नही मिलता। स्वय भ. भुवनकीर्त्ति, ब्रह्म जिनदास, ज्ञानभूषण, शुभचद आदि सभी सन्तो ने भुवनकीर्त्ति को ही इनका प्रमुख शिष्य होना माना है। यह हो सकता है कि भुवनकीर्त्ति ने अपने आपको सकलकीर्त्ति से सीधा सम्बन्ध बतलाने के लिये उक्त दोनो सन्तो के नामो के उल्लेख करने की परम्परा को नही डालना चाहा हो। भुवनकीर्त्ति के अतिरिक्त सकलकीर्त्ति के प्रमुख शिष्यो मे ब्रह्म जिनदास का नाम उल्लेखनीय है जो सघ के सभी महाव्रती एव ब्रह्मचारियो के प्रमुख थे। ये भी अपने गुरू के समान ही सस्कृत एव राजस्थानी के प्रचड विद्वान थे और साहित्य मे विशेष रुचि रखते थे। 'सकलकीर्त्तिनुरास' मे भुवनकीर्त्ति एव ब्रह्म जिनदास के अतिरिक्त ललितकीर्त्ति के नाम का और उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त उनके सघ मे आर्यिका एव क्षुल्लिकायें थी ऐसा भी लिखा है।[1]

---

१ आदि शिष्य आचारिजहि गुरि दीखीया भूतलि भुवनकीर्त्ति।
जयवन्त श्री जगतगुरु गुरि दीखीया ललितकीर्त्ति॥
महाव्रती ब्रह्मचारी घणा जिणदास गोलागार प्रमुख अपार।
अजिका क्षुल्लिका सयलसघ गुरु सोभित सहित सकल परिवार॥

मृत्यु

एक पट्टावलि के अनुसार भ. सकलकीर्त्ति ५६ वर्ष तक जीवित रहे। संवत् १४९९ मे महसाना नगर मे उनका स्वर्गवास हुआ। प० परमानन्दजी शास्त्री ने भी 'प्रशस्ति सग्रह' मे इनकी मृत्यु सवत् १४९९ मे महसाना (गुजरात) मे होना लिखा है। डा० ज्योतिप्रसाद जैन एव डा० प्रेमसागर भी इसी सवत् को सही मानते है। लेकिन डा० ज्योतिप्रसाद इनका पूरा जीवन ८१ वर्ष का स्वीकार करते है जो अब लेखक को प्राप्त विभिन्न पट्टावलियो के अनुसार वह सही नही जान पडता। 'सकल-कीर्त्तिरास' मे उनकी विस्तृत जीवन गाथा है। उसमे स्पष्ट रूप से सवत १४४३ को जन्म सवत् माना गया है।

सवत् १४७१ से प्रारम्भ एक पट्टावलि मे भ. सकलकीर्त्ति को भ. पद्मनन्दिका चतुर्थ शिष्य माना गया है और उनके जीवन के सम्बन्ध मे निम्न प्रकाश डाला गया है—

१. ४ चोथो चेलो आचार्य श्री सकलकीर्त्ति वर्ष २६ छवीसमी ताहा श्री पदर्थ पाटणनाहता तीणी दीक्षा लीधी गाव श्री नीणवा मध्ये। पछे गुरु कने वर्ष ३४ चोतीस थया।

× × × ×

२. पछे वर्ष ५६ छपनीसाणे स्वर्ग पोतासाहो ते वारे पुठी स्वामी सकलकीर्ति ने पाटे धर्मकीर्त्ति स्वामी नोतनपुर सवे थाप्पा।

३ एहवा धर्म करणी करावता वागडराय ने देस कुंभलगढ नव सहस्त्र मध्य सघली देसी प्रदेसी व्याहार कर्म करता धर्मपदेस देता नवा ग्रन्थ सुध करता वर्प २२ व्याहार कर्म करिने धर्म सघली प्रर्वत्या।

उक्त तथ्यो के आधार पर यह निर्णय सही है कि भ. सकलकीर्त्ति का जन्म सवत १४४३ में हुआ था।

श्री विद्याधर जोहरापुरकर ने 'भट्टारक सम्प्रदाय' मे सकलकीर्त्ति का समय सवत् १४५० से सवत् १५१० तक का दिया है। उन्होने यह समय किस आधार पर दिया है इसका कोई उल्लेख नही किया। इसलिये सकलकीर्त्ति का समय सवत् १४४३ से १४९९ तक का ही सही जान पडता है।

तत्कालीन सामाजिक अवस्था

भ० सकलकीर्त्ति के समय देश की सामाजिक स्थिति अच्छी नही थी। समाज मे सामाजिक एवं धार्मिक चेतना का अभाव था। शिक्षा की वहुत कमी थी।

साधुओ का अभाव था। भट्टारको के नग्न रहने की प्रथा थी। स्वय भट्टारक सकलकीर्त्ति भी नग्न रहते थे। लोगो मे धार्मिक श्रद्धा बहुत थी। तीर्थयात्रा बडे २ सघो मे होती थी। उनका नेतृत्व करने वाले साधु होते थे। तीर्थ यात्राए बहुत लम्बी होती थी तथा वहा से सकुशल लौटने पर बडे २ उत्सव एव समारोह किये जाते थे। भट्टारको ने पचकल्याणक प्रतिष्ठाओ एव अन्य धार्मिक समारोह करने की अच्छी प्रथा डाल दी थी। इनके सघ मे मुनि, आर्यिका, श्रावक आदि सभी होते थे' साधुओ मे ज्ञान प्राप्ति की काफी अभिलाषा होती थी तथा सघ के सभी साधुओ को पढाया जाता था। ग्रन्थ रचना करने का भी खूब प्रचार हो गया था। भट्टारक गरण भी खूब ग्रन्थ रचना करते थे। वे प्राय: अपने ग्रन्थ श्रावको के आग्रह से निबद्ध करते रहते थे। व्रत उपवास की समाप्ति पर श्रावको द्वारा इन ग्रन्थो की प्रतिया विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो को भेंट स्वरूप दे दी जाती थी। भट्टारको के साथ हस्त-लिखित ग्रन्थो के बस्ते के बस्ते होते थे। समाज मे स्त्रियो की स्थिति अच्छी नही थी और न उनके पढने लिखने का साधन था। व्रतोद्यापन पर उनके आग्रह से ग्रन्थो की स्वाध्यायार्थ प्रतिलिपि कराई जाती थी और उन्हे साधु सन्तो को पढने के लिए दे दिया जाता था।

साहित्य सेवा

साहित्य सेवा मे सकलकीर्त्ति का जबरदस्त योग रहा। कभी २ तो ऐसा मालूम होने लगता है जैसे उन्होने अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग किया हो। सस्कृत, प्राकृत एव राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। वे सहज रूप मे ही काव्य रचना करते थे इसलिये उनके मुख से जो भी वाक्य निकलता था वही काव्य रूप मे परिवर्तित हो जाता था। साहित्य रचना की परम्परा सकलकीर्त्ति ने ऐसी डाली कि राजस्थान के बागड एव गुजरात प्रदेश मे होने वाले अनेक साधु सन्तो ने साहित्य की खूब सेवा की तथा स्वाध्याय के प्रति जन साधारण की भावना को जाग्रत किया। इन्होने अपने अन्तिम २२ वर्ष के जीवन मे २७ से अधिक सस्कृत रचनायें एव ८ राजस्थानी रचनायें निबद्ध की थी। 'सकलकीर्त्तिनु रास' मे इनकी मुख्य २ रचनाओ के जो नाम गिनाये हैं वे निम्नप्रकार हैं—

चारि नियोग रचना करीय, गुरु कवित तणु हवि सुणहु विचार।
१. यती-आचार २ श्रावकाचार ३ पुराण ४ आगमसार कवित अपार॥
५. आदिपुराण ६. उत्तरपुराण ७. शाति ८. पास ९. वर्द्धमान
१०. मलि चरित्र।
आदि ११. यशोधर १२. धन्यकुमार १३. सुकुमाल १४ सुदर्शन चरित्र
पवित्र॥

१५. पचपरमेष्ठी गध कुटीय १६. अष्टानिका १७. गणधर भेय ।
१८. सोलहकारण पूजा विधि गुरिए सवि प्रगट प्रकासिया तेय ।।
१९ सुक्तिमुक्तावलि २०. कमविपाक गुरि रचीय डाईण परि
विविध परिग्र थ ।
भरह सगीत पिंगल निपुण गुरु गुरउ श्री सकलर्कात्ति निग्रंथ ।।

लेकिन राजस्थान मे ग्र थ भडारो की जो अभी खोज हुई है उनमे हमे अभी-
क निम्न रचनायें उपलब्ध हो सकी हैं ।

संस्कृत की रचनायें

१ मूलाचारप्रदीप
२. प्रश्नोत्तरोपासकाचार
३ आदिपुराण
४ उत्तरपुराण
५. शातिनाथ चरित्र
६. वर्द्धमान चरित्र
६. मल्लिनाथ चरित्र
८. यशोधर चरित्र
९. धन्यकुमार चरित्र
१०. सुकुमाल चरित्र
११. सुदर्शन चरित्र
१२. सद्भाषितावलि
१३. पार्श्वनाथ चरित्र
१४. सिद्धान्तसार दीपक
१५. व्रतकथाकोश
१६. नेमिजिन चरित्र
१७. कर्मविपाक
१८. तत्वार्थसार दीपक
१९. आगमसार
२०. परमात्मराज स्तोत्र
२१. पुराण सग्रह
२२. सारचतुर्विंशतिका
२३. श्रीपाल चरित्र
२४. जम्बूस्वामी चरित्र
२५. द्वादशानुप्रेक्षा

पूजा ग्रंथ

२६. अष्टाह्निकापूजा
२७. सोलहकारणपूजा
२८. गणधरवलयपूजा

राजस्थानी कृतियां

१. आराधना प्रतिवोधसार
२. नेमीश्वर गीत
३. मुक्तावलि गीत
४. णमोकारफल गीत
५. सोलह कारण रास
६. सारसीखामणिरास
७ शान्तिनाथ फागु

उक्त कृतियो के अतिरिक्त अभी और भी रचनाए हो सकती हैं जिनका अभी खोज होना वाकी है। भ० सकलकीर्त्ति की सस्कृत भाषा के समान राजस्थानी भाषा मे भी कोई बडी रचना मिलनी चाहिए, क्योकि इनके प्रमुख शिष्य ब्र० जिनदास ने इन्ही की प्रेरणा एव उपदेश से राजस्थानी भाषा मे ५० से भी अधिक रचनाएँ निवद्ध की थी। अकेले इन्ही के साहित्य पर एक शोध प्रवन्ध लिखा जा सकता है। अव यहा भ० सकलकीर्त्ति द्वारा विरचित कुछ ग्रन्थो का परिचय दिया जा रहा है।

१ आदिपुराण—इस पुराण मे भगवान आदिनाथ, भरत, वाहुवलि, सुलोचना, जयकीर्त्ति आदि महापुरुषो के जीवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुराण सर्गों मे विभक्त है और इसमे २० सर्ग हैं। पुराण की श्लोक स० ४६२८ श्लोक प्रमाण है। वर्णन शैली सुन्दर एव सरस है। रचना का दूसरा नाम 'वृषभ नाथ चरित्र भी है।

२. उत्तरपुराण—इसमे २३ तीर्थंकरो के जीवन का वर्णन है एव साथ मे चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि शलाका—महापुरुषो के जीवन का भी वर्णन है। इसमे १५ अधिकार हैं। उत्तर पुराण, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

३. कर्मविपाक—यह कृति सस्कृत गद्य मे है। इसमे आठ कर्मो के तथा उनके १४८ भेदो का वर्णन है। प्रकृतिवध, प्रदेशवध, स्थितिवध एव अनुभाग वध

की अपेक्षा से कर्मों के बधका वर्णन है। वर्णन सुन्दर एव बोधगम्य है। यह ग्रन्थ ५४७ श्लोक सख्या प्रमाण है रचना अभीतक अप्रकाशित है।

४. तत्वार्थसार दीपक—सकलकीर्त्ति ने अपनी इस कृति को अध्यात्म महाग्रन्थ कहा है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध सवर, निर्जरा तथा मोक्ष इन सात तत्वो का वर्णन १२ अध्यायो मे निम्न प्रकार विभक्त है।

प्रथम सात अध्याय तक जीव एवं उसकी विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन है शेष ८ से १२ वें अध्याय मे अजीव, आस्रव, बन्ध सवर, निर्जरा, मोक्ष का क्रमशः वर्णन है। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है।

५. धन्यकुमार चरित्र—यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमे सेठ धन्यकुमार के पावन जीवन का यशोगान किया गया है। पूरी कथा सात अधिकारो मे समाप्त होती है। धन्यकुमार का सम्पूर्ण जीवन अनेक कुतुहलो एव विशेषताओ से ओतप्रोत है। एक बार कथा प्रारम्भ करने के पश्चात् पूरी पढे बिना उसे छोडने को मन नही कहता। भाषा सरल एव सुन्दर है।

६. नेमिजिन चरित्र—नेमिजिन चरित्र का दूसरा नाम हरिवंशपुराण भी है। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे जिन्होने कृष्ण युग मे अवतार लिया था। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे। अहिंसा मे दृढ विश्वास होने के कारण तोरण द्वार पर पहुँचकर एक स्थान पर एकत्रित जीवो को वध के लिये लाया हुआ जानकर विवाह के स्थान पर दीक्षा ग्रहण करली थी तथा राजुल जैसी अनुपम सुन्दर राजकुमारी को त्यागने मे जरा भी विचार नही किया। इस प्रकार इसमे भगवान नेमिनाथ एव श्री कृष्ण के जीवन एव उनके पूर्व भवो मे वर्णन हैं। कृति की भाषा काव्यमय एव प्रवाहयुक्त है। इसकी सवत् १५७१ मे लिखित एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सग्रहीत है।

७. मल्लिनाथ चरित्र—२० वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के जीवन पर यह एक छोटा सा प्रबन्ध काव्य है जिसमे ७ सर्ग हैं

८. पार्श्वनाथ चरित्र—इसमे २३ वे तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। यह एक २३ सर्ग वाला सुन्दर काव्य है। मगलाचरण, के पश्चात् कुन्दकुन्द, अकलक, समतभद्र, जिनसेन आदि आचार्यो को स्मरण किया गया है।

वायुभूति एव मरुभूति ये दोनो सगे भाई थे लेकिन शुभ एव अशुभ कर्मों के चक्कर से प्रत्येक भव मे एक का किस तरह उत्थान होता रहता है और दूसरे का घोर पतन—इस कथा को इस काव्य मे अति सुन्दर रीति से वर्णन किया गया है। वायुभूति अन्त में पार्श्वनाथ बनकर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं तथा जगद्पूज्य बन जाते हैं। भाषा सीधी, सरल एव अलंकारमयी है।

९. सुदर्शन चरित्र—इस प्रवन्ध काव्य में सेठ सुदर्शन के जीवन का वर्णन किया गया है जो आठ परिच्छेदो मे पूर्ण होता है। काव्य की भाषा सुन्दर एव प्रभावयुक्त है।

१० सुकुमाल चरित्र—यह एक छोटा सा प्रवन्ध काव्य है जिसमे मुनि सकुमाल के जीवन का पूर्व भव सहित वर्णन किया गया है। पूर्व भव मे हुआ वैर भाव किस प्रकार अगले जीवन मे भी चलता रहता है इसका वर्णन इस काव्य मे सुन्दर रीति से हुआ है। इसमे सुकुमाल के वैभवपूर्ण जीवन एव मुनि अवस्था की घोर तपस्या का अति सुन्दर एव रोमान्चकारी वर्णन मिलता है। पूरे काव्य में ९ सर्ग हैं।

११. मूलाचार प्रदीप—यह आचारशास्त्र का ग्रन्थ है जिसमे जैन साधु के जीवन मे कौन २ सी क्रियाओ की साधना आवश्यक है–इन क्रियाओ का स्वरूप एव इनके भेद प्रभेदो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसमे १२ अधिकार है जिनमे २८ मूलगुण,[1] पचाचार,[2] दशलक्षणधर्म,[3] बारह अनुप्रेक्षा[4] एव बारह तप[5] आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

१२. सिद्धान्तसार दीपक—यह करणानुयोग का ग्रन्थ है–इसमे उर्द्ध लोक, मध्यलोक एव पाताल लोक एव उनमे रहने वाले देवो मनुष्यो और तिर्यंचो और नारकियो का विस्तृत वर्णन है। इसमे जैन सिद्धान्तानुसार सारे विश्व का भूगौलिक एव खगौलिक वर्णन आ जाता है। इसका रचना काल स० १४८१ है रचना स्थान है—बडाली नगर। प्रेरक थे इसके ब्र० जिनदास।

---

२८ मूलगुण--पच महाव्रत, पचसमिति, तीन गुप्ति, पंचेन्द्रिय निरोध, षटावश्यक, केशलोच, अचेलक, अस्नान, दतअधोवन।

पचाचार—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप एवं वीर्य।

दशलक्षण धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिचन्य एव ब्रह्मचर्य।

बारह अनुप्रेक्षा—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधदुर्लभ एवं धर्म।

बारह तप—अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान।

जैन सिद्धान्त की जानकारी के लिए यह बड़ा उपयोगी है। ग्रन्थ १६ सर्गों मे है।

१३. वर्द्धमान चरित्र—इस काव्य मे अन्तिम तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान के पावन जीवन का वर्णन किया गया है। प्रथम ६ सर्गों मे महावीर के पूर्व भवो का एव शेष १३ अधिकारो मे गर्भ कल्याणक से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक विभिन्न लोकोत्तर घटनाओ का विस्तृत वर्णन मिलता है। भाषा सरल किन्तु काव्य मय है। वर्णन शैली अच्छी है। कवि जिस किसी वर्णन को जब प्रारम्भ करता है तो वह फिर उसी मे मस्त हो जाता है। रचना सभवत. अभी तक अप्रकाशित है।

१४. यशोधर चरित्र—राजा यशोधर का जीवन जैन समाज मे बहुत प्रिय रहा है। इसलिये इस पर विभिन्न भाषाओ मे कितनी ही कृतिया मिलती है। सकलकीर्त्ति की यह कृति सस्कृत भाषा की सुन्दर रचना है। इसमे आठ सर्ग है। इसे हम एक प्रबन्ध काव्य कह सकते है।

१५. सद्भाषितावलि—यह एक छोटासा सुभाषित ग्रन्थ है जिसमे धर्म, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, इन्द्रियजय, स्त्री सहवास, कामसेवन, निर्ग्रन्थ सेवा, तप, त्याग, राग, द्वेष, लोभ, आदि विभिन्न विषयो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। भाषा सरल एवं मधुर है। पद्यो की सख्या ३८९ है। यहा उदाहरणार्थ तीन पद दिये जा रहे हैं—

सर्वेषु जीवेषु दया कुरुत्वं, सत्य वचो ब्रूहि धन परेषा।
चाब्रह्मसेवा त्यज सर्वकाल, परिग्रह मु च कुयोनिबीज ॥

× × × ×

यमदमशमजात .सर्वकल्याणबीज।
सुगति-गमन-हेतुं तीर्थनाथै प्रणीत।

भवजलनिधिपोत सारपाथेयमुच्चै--
स्त्यज सकलविकार धर्म आराधयत्व ॥

(३) मायां करोति यो मूढ इन्द्रयादिकसेंवन।
गुप्तपाप स्वयं तस्य व्यक्त भवति कुष्ठवत ॥

१६. श्रीपाल चरित्र—यह सकलकीर्त्ति का एक काव्य ग्रन्थ है जिसमे ७ परिच्छेद है। कोटीभट श्रीपाल का जीवन अनेक विशेषताओ से भरा पडा है। राजा से कुष्टी होना, समुद्र मे गिरना, सूली पर चढना आदि कितनी ही घटनाए उसके जीवन मे एक के बाद दूसरी आती हैं जिससे उनका सारा जीवन नाटकीय

बन जाता है। सकलकीर्त्ति ने इसे बड़े सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया है। इस चरित्र की रचना कर्मफल सिद्धान्त को पुरुषार्थ मे अधिक विश्वसनीय सिद्ध करने के लिये की गई है। मानव का ही क्या विश्व के सभी जीवधारियो का सारा व्यवहार उसके द्वारा उपार्जित पाप-पुण्य पर आधारित है। उसके सामने पुरुषार्थ कुछ भी नही कर सकता। काव्य पठनीय है।

१७. शान्तिनाथ चरित्र—शान्तिनाथ १६ वें तीर्थंकर थे। तीर्थंकर के साथ २ वे कामदेव एव चक्रवर्ती भी थे। उनके जीवन की विशेषताए बतलाने के लिये इस काव्य की रचना की गयी है। काव्य मे १६ अधिकार हैं तथा ३४७५ श्लोक सख्या प्रमाण है। इस काव्य को महाकाव्य की सज्ञा मिल सकती है। भाषा अलकारिक एव वर्णन प्रभावमय है। प्रारम्भ मे कवि ने शृगार-रस से ओत प्रोत काव्य की रचना क्यो नही करनी चाहिए—इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। काव्य सुन्दर एव पठनीय है।

१८. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार—इस कृति मे श्रावको के आचार-धर्म का वर्णन है। श्रावकाचार २४ परिच्छेदो मे विभक्त है, जिसमे आचार शास्त्र पर विस्तृत विवेचन किया गया है। भट्टारक सकलकीर्त्ति स्वय मुनि भी थे—इसलिए उनसे श्रद्धालु भक्त आचार-धर्म के विषय मे विभिन्न प्रश्न प्रस्तुत करते होगे—इसलिए उम सबके समाधान के लिए कवि ने इस ग्रन्थ निर्माण ही किया गया। भाषा एव शैली की दृष्टि से रचना सुन्दर एव सुरक्षित है। कृति मे रचनाकाल एव रचनास्थान नही दिया गया है।

१९. पुराणसार संग्रहः—प्रस्तुत पुराण सग्रह मे ६ तीर्थंकरो के चरित्रों का सग्रह है और ये तीर्थंकर हैं—आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एव महावीर-वर्द्धमान। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से 'पुराणसार सग्रह' प्रकाशित हो चुका है। प्रत्येक तीर्थंकर का चरित अलग २ सर्गों मे विभक्त हैं जो निम्न प्रकार हैं

आदिनाथ चरित	५ सर्ग
चन्द्रप्रभ चरित	१ सर्ग
शान्तिनाथ चरित	६ सर्ग
नेमिनाथ चरित	५ सर्ग
पार्श्वनाथ चरित	५ सर्ग
महावीर चरित	५ सर्ग

२०. व्रतकथाकोषः—'व्रतकथाकोष' की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इसमे विभिन्न व्रतो पर आधारित

कथाओ का सग्रह है । ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध नही होने से अभी तक यह निश्चित नही हो सका कि भट्टारक सकलकीर्ति ने कितनी व्रत कथाए लिखी थी ।

२१. परमात्मराज स्तोत्र—यह एक लघु स्तोत्र है, जिसमें १६ पद्य है। स्तोत्र सुन्दर एव भावपूर्ण है । इसकी एक प्रति जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत हैं ।

उक्त सस्कृत कृतियो के अतिरिक्त पञ्चपरमेष्ठिपूजा, अष्टाह्लिका पूजा, सोलहकारणपूजा, गणधरवलय पूजा, द्वादशानुप्रेक्षा एव सारचतुर्विंशतिका आदि और कृतिया हैं जो राजस्थान के शास्त्र-भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। ये सभी कृतिया जैन समाज मे लोकप्रिय रही है तथा उनका पठन-पाठन भी खूब रहा हैं ।

भ० सकलकीर्त्ति की उक्त सस्कृत रचनाओ मे कवि का पाण्डित्य स्पष्ट रूप से झलकता हैं । उनके काव्यो मे उसी तरह की शैली, अलकार, रस एव छन्दों की परियोजना उपलब्ध होती हैं जो अन्य भारतीय सस्कृत काव्यो मे मिलती है । उनके चरित काव्यो के पढने से अच्छा रसास्वादन मिलता है । चरित काव्यो के नायक त्रेसठशलाका के लोकोत्तर महापुरुष है जो अतिशय पुण्यवान् है, जिनका सम्पूर्ण जीवन अत्यधिक पावन है । सभी काव्य शान्त रसपर्यवसानी हैं ।

काव्य ज्ञान के समान भ० सकलकीर्त्ति जैन सिद्धान्त के महान् वेत्ता थे । उनका मूलाचार प्रदीप, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, सिद्धान्तसार दीपक एव तत्वार्थसार दीपक तथा कर्मविपाक जैसी रचनाए उनके अगाध ज्ञान के परिचायक हैं । इनमे जैन सिद्धान्त, आचार शास्त्र एव तत्वचर्चा के उन गूढ रहस्यो का निचोड़ है जो एक महान् विद्वान् अपनी रचनाओ मे भर सकता है ।

इसी तरह 'सद्भाषितावलि' उनके सर्वांग ज्ञान का प्रतीक है-जिसमे सकल कीर्ति ने जगत के प्राणियो को सुन्दर शिक्षाये भी प्रदान की है, जिससे वे अपना आत्म-कल्याण भी करने की ओर अग्रसर हो सकें । वास्तव मे वे सभी विषयों के पारगामी विद्वान् थे-ऐसे सन्त विद्वान् को पाकर कौन देश गौरवान्वित नही होगा ।

राजस्थानी रचनाएं

सकलकीर्त्ति ने हिन्दी मे बहुत ही कम रचना निबद्ध की है । इसका प्रमुख कारण सभवत इनका सस्कृत भाषा की ओर अत्यधिक प्रेम था । इसके अतिरिक्त जो भी इनकी हिन्दी रचनाए मिली है वे सभी लघु रचनाए है जो केवल भाषा अध्ययन की दृष्टि से ही उल्लेखनीय कही जा सकती है । सकलकीर्त्ति का अधिकांश

जीवन राजस्थान मे व्यतीत हुआ था इसलिए इनकी रचनाओ मे राजस्थानी भाषा की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है।

१ णमोकार फल गीत—यह इनकी प्रथम हिन्दी रचना है। इसमे णमोकार मत्र का महात्म्य एव उसके फल का वर्णन है। रचना कोई विशेष वडी नही है केवल १५ पद्यो मे ही वरिणत विषय पूरा हो जाता है। कवि ने उदाहरणो द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि णमोकार मत्र का स्मरण करने से अनेक विघ्नो को टाला जा सकता है। जिन पुरुषो के इस मत्र का स्मरण करने से विघ्न दूर हुये है उनके नाम भी गिनाये है। तथा उनमे धरणेंद्र, पद्मावती, अजन-चोर, सेठ सुदर्शन एव चारूदत्त उल्लेखनीय हैं। कवि कहता है—

सर्व जुगल तापसि हण्यो पार्श्वनाथ जिनेन्द्र।
णमोकार फल लहीहुउ पथियडारे पद्मावती धरणेंद्र ॥
चोर अजन सूली धर्यो, श्रेष्ठि दियो णमोकार।
देवलोक जाइ करी, पथियडारे सुख भोगवे अपार।
चारूदत्त श्रेष्ठि दियो घाला ने णमोकार।
देव भवनि देवज हुहो, सुखन विलासई पार ॥
ग्रह डाकिनी शाकिणी फणी, व्याधि वह्नि जलराशि।
सकल बधन तूटए पथिय डारे विघन सवे जावे नाशि ॥

कवि अन्त मे इस रचना को इस प्रकार समाप्त करता है.—

चउवीसी अमत्र हुई, महापथ अनादि
सकलकीरति गुरू इम कहे,
पथियंडारे कोइ न जाणइ
आदि जीवड लारे भव सागरि एह नाव।

२ आराधना प्रतिबोध सार यह इनकी दूसरी हिन्दी रचना है। प्राकृत भाषा मे निवद्ध आराधना सार का कवि ने भाव मात्र लिखने का प्रयत्न किया है। इसमे सब मिलाकर ५५ पद्य हैं। प्रारम्भ मे कवि ने णमोकार मत्र की प्रशसा की है तत्पश्चात सयम को जीवन मे उतारने के लिए आग्रह किया है। ससार को क्षण भगुर वताते हुए सम्राट भरत, वाहुबलि, पाडव, रामचन्द्र, सुग्रीव, सुकुमाल, श्रीपाल आदि महापुरुषो के जीवन से शिक्षा लेने का उपदेश दिया है। इस प्रकार आगे तीर्थ क्षेत्रो का उल्लेख करते हुए मनुष्य को अणुव्रत आदि पालने के लिए कहा गया है। इन

सबका सक्षिप्त वर्णन है। रचना सुन्दर एव सुपाठ्य है। रचना के कुछ सुन्दर पद्यो का रसास्वादन करने के लिए यहा दिया जाता है—

तप प्रायश्चित व्रत करि शोध, मन वचन काग्रा निरोधि।
तु क्रोध माया मद छाडि, आपणपु सयलइ माडि॥
गया जिणवर जगि चउवीस, नहि रहि आवार चकीस।
गया वलिभद्र, न वर वीर, नव नारायण गया धीर॥
गया भरतेस देइ दान, जिन शासन थापिय मान।
गयो बाहुवलि जगमाल, जिणे हइ न राख्यु साल॥
गया रामचन्द्र रणि रगि, जिण साचु जस अभग।
गयो कुभकरण जगिसार, जिणें लियो तु महाव्रत भार॥

× × × ×

जे जाग्रा करि जग माहि, सभारं ते मन माहि।
गिरनारी गयु तु धीर, सभारिह वडावीर॥
पात्रा गिरि पुन्य भडार, सभारंहवडा सार।
तारण तीरथ होइ, सभारह वडा जोइ॥
हवेइ पाचमो व्रत प्रतिपालि, तू परिग्रह दूरिय टालि।
हो धन कचन माह मोल्हि, सतोवीइं माह समेल्हि॥
हवई चहुंगति फेरो टालि, मन जाति चहु दिशि बार।
हो नरगि दु.खन विसार, तेह केता कहू अविचार॥

× × × ×

अन्त मे कवि ने रचना को इस प्रकार समाप्त किया है—

जे भणई सुणइ नर नारि, ते जाइ भवनेइ पारि।
श्री सकलकीर्ति कह्य विचार, आराधना प्रतिबोधसार॥

३. सारसीखामणिरास—सारसीखामणिरास राजस्थानी भाषा की लघु किन्तु सुन्दर कृति है। इसमे प्राणी मात्र के लिये शिक्षाप्रद सदेश दिये गये हैं। रास मे ४ ढालें तथा तीन वस्तुबध छन्द हैं। इसकी एक प्रति नैणवा (राजस्थान) के दिगम्बर मंदिर बघेरवालो के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत एक गुटके मे लिपिबद्ध है। गुटका की प्रतिलिपि सवत् १६४४ वैशाख सुदी १५ को समाप्त हुईथी। इसी गुटके मे सोमकीर्त्ति,

ब्रह्म यशोधर आदि कितने ही प्राचीन सन्तो के पाठो का सग्रह है। लिपि स्थान रणथम्भोर है जो उस समय भारत के प्रसिद्ध दुर्गों मे से एक माना जाता था। रास पाच पत्रो मे पूर्ण होता है। सर्व प्रथम कवि ने कहा कि "यह सु दर देह विना बुद्धि के वेकार है इसलिये सदैव सत्साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। जीवन को सयमित बनाना चाहिए तथा अन्ध विश्वासो मे कभी नही पडना चाहिए।" जीव दया की महत्ता को कवि ने निम्न शब्दो मे वर्णन की है।

जीव दया दृढ पालीइए, मन कोमल कीजि।
आप सरीखा जीव सवै, मन माहि धरीजइ ॥

असत्य वचन कभी नही बोलना चाहिए और न कर्कश तथा मर्मभेदी शब्द जिनसे दूसरो के हृदय मे ठेस पहुचे। किसी को पुण्य कार्य करते हुए नही रोकना चाहिए तथा दूसरो के अवगुणो को ढक कर गुणो को प्रकट करना चाहिए।

भूठा वचन न वोलीइए, ए करकस परिहए।
मरम म वोलु किहि तथा, ए चाडी मन करू ॥
धर्म करता न वारीइए, नवि परनदीजि।
परगुण ढाकी आप तणा, गुण नवि वोलीजइ ॥

सदैव त्याग को जीवन मे अपनाना चाहिए। आहारदान, औषधदान, साहित्यदान, एव अभयदान आदि के रूप मे कुछ न कुछ देते रहना चाहिए। जीवन इसी से निखरता है एव उसमे परोपकार करते रहने की भावना उत्पन्न होती है।

चौथी ढाल मे कवि ने अपनी सभी शिक्षाओ का सार दिया है जो निम्न प्रकार है—

योवन रे कुटु व हरिधि, लक्ष्मी चचल जाणीइए।
जीव हरे सरण न कोइ, धर्म विना सोई आजीइए ॥
ससार रे काल अनादि, जीव आगि घणु फिरयुए।
एकलू रे आवि जाइ, करम आगे गलि थरयुए ॥
काय थी रे जु जु होइ कुटु व, परिवारि वेगलु ए।
खिमा रे खडग धरेवि, क्रोध विरी सघारीइए ॥
मार्द्द व रे पालीइ सार, मान पापी परू टालीइए।
सरलू रे चित्त करेवि, माया सवि दूरि करुए ॥
सतोष रे आयुध लेवि, लोभ विरी सिघारीइए
वेराग रे पालीइ सार, राग टालू सकलकीर्त्ति कहिए।
जे भणि ए रासज सार,सीखामणि पढते लहिए ॥

रचना काल—सकलकीर्त्ति ने इस रास की रचना कब की थी इसका कोई उल्लेख नही किया है लेकिन कवि का साहित्यिक जीवन मुख्यत जैसा कि ऊपर लिखा गया है बीस वर्ष तक (स० १४७९ से स १४९९) रहा था इसलिये उसी के मध्य इस रचना का निर्माण हुआ होगा। अतः इसे १५वी शताब्दी के अन्तिम चरण की कृति मानना चाहिए।

भाषा—रचना की भाषा जैसा कि पहिले कहा जा चुका है राजस्थानी है लेकिन कही २ गुजराती शब्दो का प्रयोग हुआ है। कवि ने अपनी इस रचना मे मूल-क्रिया के अन्त मे 'जि' एव जइ शब्दो को जोडकर उनका प्रयोग किया है जैसे पामजि, प्रणमीज, तरीजि, हारीजि, छूटीजि, कीजि, धरीजई, बोलीजइ, करीजइ कीजइ, लहीजइ आदि। चौथी ढाल मे और इससे पहिले के छन्दो मे भी क्रियाओ के आगे 'ए' लगाकर उनका प्रयोग किया है।

४ मुक्तावलि गीत

यह एक लघु गीत है जिसमे मुक्तावलि व्रत की कथा एव उसके महात्म्य का वर्णन है। रचना की भाषा राजस्थानी है जिसमे गुजराती भाषा के शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। रचना साधारण है तथा वह केवल १५ पद्यो मे पूर्ण होती है। एक उदाहरण देखिए—

नाभिपुत्र जिनवर प्रणमीने, मुक्तावलि गाइये
मुगति पगनि जिनवर भासि, व्रत उपवास करीजे
सखी सुण मुक्तावली व्रत कीजे।
तप पणि अति निर्मल जानि कर्म मल धोईजे
सखी सुण मुक्तावलि व्रत कीजे।

× × × × ×

नर नारी मुगतावली करसे तेहने सुख्य आधार
श्री सकलकीरति भावे मुगति लहिये भाव भोगने सुविशाल ॥
सखी सुण मुगतावली व्रत कीजे ॥१२॥

५ सोलहकारण रास—यह कवि की एक कथात्मक कृति है जिसमे सोलहकारण व्रत के महात्म्य पर प्रकाश डाला गया है। भाषा की दृष्टि से यह रास अच्छी रचना है। कृति के अन्त मे सकलकीर्त्ति ने अपने आपको मुनि विशेषण से सम्बोधित किया है इनसे ज्ञात होता है कि यह उनकी प्रारम्भिक कृति होगी। रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

एक चित्ति जे व्रत करइ, नर अहवा नारी।
तीर्थंकर पद सो लहइ, जो समकित धारी।

सकलकीर्त्ति मुनि रासु कियउए सोलहकारण ।
पढहि गुणहि जो साभलहि तिन्ह सिव सुह कारण ॥

६. शान्तिनाथ फागु–इस कृति को खोज निकालने का श्रेय श्री कुन्दनलाल जैन को है । इस फागु काव्य मे शान्तिनाथ तीर्थंकर का सक्षिप्त जीवन वर्णित है । हिन्दी के साथ कही २ प्राकृत गाथा एव सस्कृत श्लोक भी प्रयुक्त हुए हैं । फागु की भापा सरस एवं मनोहारी है । एक उदाहरण देखिये

रासु—नृप सुत रमणि गजगति रमणी तरूणी सम क्रीडतरे ।
वहु गुण सागर अवधि दिवाकर सुभकर निसि दिन पुण्य रे ।
छडिय मय सुख पालिय जिन दिख सनमुख आतम ध्यान रे ।
अणसणविधना मूकीअ असुना आज्ञा जिनवर लेवि रे ।

मूल्यांकन

'भट्टारक सकलकीर्ति' सस्कृत के आचार्य थे । उन्होने जो इस भापा मे विविध विषयक कृतिया लिखी, उनसे उनके अगाध ज्ञान का सहज ही पता चलता है । यद्यपि सकलकीर्त्ति ने लिखने के लिए ही कोई कृति लिखी हो—ऐसी बात नही है, किन्तु उनको अपने मौलिक विचारों से भी आप्लावित किया है । यदि उन्होंने पुराण विषयक कृतियो मे आचार्य परम्परा द्वारा प्रवाहित विचारो को ही स्थान दिया है तो चरित काव्यो मे अपने पौष्टिक ज्ञान का भी परिचय दिया है । वास्तव मे इन काव्यो मे भारतीय सस्कृति के विभिन्न अ गो का अच्छी तरह दर्शन किया जा सकता है । जैन दर्शन की दार्शनिक, सामाजिक एव धार्मिक प्रवृत्तियो के अतिरिक्त आचार एव चरित निर्माण, व्यापार, न्यायव्यवस्था, औद्योगिक प्रवृत्तिया, भोजन पान व्यवस्था, वस्त्र–परिधान प्रकृतिचर्चा, मनोरजन आदि सामान्य विषयो की भी जहा कही चर्चा हुई है और कवि ने अपने विचारो के अनुसार उनके वर्णन का भी ध्यान रखा है । भगवान के स्तवन के रूप मे जब कुछ अधिक नही लिखा जा सका तो उन्होंने पूजा के रूप मे उनका यशोगान गाया—जो कवि की भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्त होने का सकेत करता है । यही नही, उन्होंने इन पूजाओ के माध्यम से तत्कालीन समाज मे 'अर्हंत–भक्ति, के प्रति गहरी आस्था बनाये रखी और आगे आने वाली सन्तति के लिए 'अर्हंत–भक्ति' का मार्ग खोल दिया ।

सिद्धान्त, तत्वचर्चा एव दर्शन के क्षेत्र मे—सिद्धान्त सारदीपक, तत्वार्थसार, आगमसार, कर्मविपाक जैसी कृतियो के माध्यम से उन्होने जनता को प्रभूत साहित्य

१ देखिये अनेकान्त वर्ष १९ किरण ४ पृष्ठ सख्या २८२

दिया। इन कृतियो में जैन धर्म के प्रसिद्ध सिद्धान्तो जैसे सात तत्व, नव पदार्थ, अष्टकर्म, पच ज्ञान, गुणस्थान, मार्गणा आदि का अच्छा विवेचन हुआ है। उन्होने साधुओ के लिए 'मूलाचार-प्रदीप' लिखा, तो गृहस्थो के लिए प्रश्नोत्तर के रूप में प्रश्नोत्तरोपासकाचार लिखकर जीवन को मर्यादित एव अनुशासित करने का प्रयास किया। वास्तव में उन्होने जिन २ मर्यादाओ का परिपालन जीवन मे आवश्यक बताया वे उनके शिष्यो के जीवन मे अच्छी तरह उतरी। क्योकि वे स्वय पहिले मुनि अवस्था मे रहे थे। उसी रूप मे उन्होने अध्ययन किया और उसी रूप मे कुछ वर्षों तक जन-जागरण के लिए स्थान-स्थान पर विहार भी किया।

'व्रत कथा कोप' के माध्यम से इन्होने श्रावको के जीवन को नियमित एव सयमित बनाने का प्रयास किया और उन्हे व्रत-पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी तरह स्वाध्याय के प्रति जन-जागृति पैदा करने के लिए उन्होने पहिले तो आदिपुराण एव उत्तरपुराण लिखा और फिर इन्ही दो कृतियो को सक्षिप्त कर पुराणसारसग्रह निबद्ध किया। किसी भी विषय को सक्षिप्त अथवा विस्तृत करने की कला उनको अच्छी तरह आती थी।

'भट्टारक सकलकीर्त्ति' ने यद्यपि हिन्दी मे अधिक एव बडी रचनाएँ नही लिखी, लेकिन जो भी ७ कृतिया उनकी अब तक उपलब्ध हुई है, उनसे उनका साहित्यिक एव भाषा शास्त्रीय ज्ञान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। उनका 'सारसीखामणिरास' एव 'शान्तिनाथ फागु' हिन्दी की अच्छी कृतिया है। जिनमे विषय का अच्छा प्रतिपादन हुआ है। नेमीश्वर गीत एव मुक्तावलि गीत उनकी सगीत प्रधान रचना है। जिनका सगीत के माध्यम से जन साधारण को जाग्रत रखने का प्रमुख उद्देश्य था।

: ब्रह्म जिनदास :

'ब्रह्म जिनदास' १५ वी शताब्दी के समर्थ विद्वान् थे। सरस्वती की इन पर विशेष कृपा थी इसलिए इनका प्रत्येक वाक्य ही काव्य-रूप मे निकलता था। ये 'भट्टारक सकलकीर्ति' के शिष्य एव लघु भ्राता थे। ये योग्य गुरु के योग्य शिष्य थे।[1] साहित्य-सेवा ही इनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। यद्यपि सस्कृत एव राजस्थानी दोनो भाषाओं पर इनका समान अधिकार था, लेकिन राजस्थानी से इन्हे विशेष अनुराग था। इसलिए इन्होंने ५० से भी अधिक रचनाएँ इसी भाषा मे लिखी। राजस्थानी को इन्होंने अपने साहित्यिक प्रचार का माध्यम बनाया। जनता को उसे पढने, समझने एव उसका प्रचार करने के लिए प्रोत्साहित किया। अपनी रचनाओं की प्रतिलिपियाँ करवा कर इन्होंने राजस्थान एव गुजरात के सैकडो ग्रन्थ-सग्रहालयो मे विराजमान किया। यही कारण है कि आज भी इनकी रचनाओं की प्रतिलिपियाँ राजस्थान के प्राय. सभी भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। 'ब्रह्म-जिनदास' सदा अपने साहित्यिक धुन मे मस्त रहने तथा अधिक से अधिक लिखकर अपने जीवन का पूर्ण सदुपयोग करते रहते थे।

'ब्रह्म जिनदास' की निश्चित जन्म-तिथि के सम्बन्ध मे इनकी रचनाओं के आधार पर कोई जानकारी नही मिलती। ये कब तक गृहस्थ रहे और कब साधु-जीवन धारण किया—इसकी सूचना भी अब तक खोज का विषय बनी हुई है। लेकिन ये 'भट्टारक सकलकीर्ति' के छोटे भाई थे, जिसका उल्लेख इन्होंने जम्बूस्वामी-चरित्र' की प्रशस्ति मे निम्न प्रकार किया है,—

भ्रातास्ति तस्य प्रथित पृथिव्या, सद् ब्रह्मचारी जिनदास नामा।
तनोति तेन चरित्र पवित्र, जम्बूदिनामा मुनि सप्तमस्य ॥ २८ ॥

'हरिवश पुराण' की प्रशस्ति मे भी इन्होने इसी तरह का उल्लेख किया है, जो निम्न प्रकार है —

सद् ब्रह्मचारी गुरू पूर्वकोस्य, भ्राता गुणज्ञोस्ति विशुद्धचित्त।
जिनसभक्तो जिनदासनामा, कामारिजेता विदितो धरित्र्या ॥ २९ ॥[2]

---

१. महाव्रती ब्रह्मचारी घणा जिणदास गोलागर प्रमुख अपार।
अजिका क्षुल्लिका सयल सघ गुरु सोभित सहित सकल परिवार ॥

२ देखिये —प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ सं० ७१ (लेखक द्वारा सम्पादित)

'प० परमानन्दजी शास्त्री' ने भी इन्हे भट्टारक सकलकीर्ति का कनिष्ठ भ्राता स्वीकार किया है। उनके अनुसार इनका जन्म स० १४४३ के बाद होना चाहिए; क्योंकि इसी सवत् मे भ० सकलकीर्ति का जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम 'शोभा' एव पिता का नाम 'कर्णसिंह' था। ये पाटण के रहने वाले तथा हूंवड जाति के श्रावक थे। घर के काफी समृद्ध थे। लेकिन भोग-विलास एव धन-सम्पदा इन्हे साधु-जीवन धारण करने से न रोक सकी। और इन्होने भी अपने भाई के मार्ग का अनुसरण किया। 'भ० सकलकीर्त्ति' ने इन्ही के आग्रह से ही सवत् १४८१ मे वडली नगर में 'मूलाचार प्रदीप' की रचना की थी।[1]

समय —'ब्रह्म जिनदास' ने अपनी दो रचनाओ को छोडकर शेप किसी भी रचना मे समय नही दिया है। ये दो रचनाएँ 'रामराज्य रास' एव 'हरिवश पुराण' है। जिनमे सवत् क्रमश १५०८ तथा १५२० दिया हुआ है। 'भट्टारक सकलकीर्त्ति' के कनिष्ट भ्राता होने के कारण इनका जन्म सवत् १४४५ से पूर्व तो सम्भव नही है। इसी तरह यदि हरिवश पुराण को इनकी अन्तिम कृति मान ली जावे तो इनका समय सवत् १४४५ से सवत् १५२५ का माना जा सकता है।

शिष्य-परिवार —ब्रह्मचारीजी की अगाध विद्वत्ता से सभी प्रभावित थे। वे स्वयं विद्यार्थियो को पढाते थे और उन्हे सस्कृत एव हिन्दी भाषा मे पारंगत किया करते थे। 'हरिवश-पुराण' की एक प्रशस्ति[2] मे उन्होने मनोहर, मल्लिदास, गुणदास इन तीन शिष्यो के नामो का उल्लेख किया है। ये शिष्य स्वय इनसे पढते भी थे और दूसरो को भी पढाते थे।[3] परमहस रास मे एक नेमिदास[4] का और उल्लेख किया है। उक्त शिष्यो के अतिरिक्त और भी अनेको ने इनसे ज्ञान-दान लेकर अपने जीवन को उपकृत किया होगा।

---

१. संवत् चौदह सै इक्यासी भला, श्रावण मास वसन्त रे।
   पूर्णिमा दिवसे पूरण कर्ण, मूलाचार महत रे॥

२. ब्रह्म जिणदास भणे रुवड़ो, पढ़ता पुण्य अपार।
   सिस्य मनोहर रुवडो मल्लिदास गुणदास॥

३. तिउ मुनिवर पाय प्रणमीनें कीयो दो प रास सार।
   ब्रह्म जिणदास भणे रुवडा, पढता पुण्य अपार॥
   शिष्य मनोहर रुयड़ा ब्रह्म मल्लिदास गुणदास।
   पढो पढावो बहु भाव सो जिन होई सौख्य विकास॥

४. ब्रह्म जिनदास शिष्य निरमला नेमिदास सुविचार।
   पढई-पढायो विस्तरो परमहंस भवतार॥ ८॥

साहित्य-सेवा

'ब्रह्म जिनदास' का आत्म-साधना के अतिरिक्त अधिकांश समय साहित्य-सर्जन मे व्यतीत होता था। सरस्वती का वरदहस्त इन पर था तथा अध्ययन इनका गहरा था। काव्य, चरित, पुराण, कथा, एव रासो साहित्य से इन्हे बहुत रुचि थी और उसी के अनुसार वे काव्य रचना किया करते थे। इनके समय मे 'रास-साहित्य' की सम्भवत अच्छी प्रतिष्ठा थी। इसलिए जितनी अधिक सख्या मे इन्होने 'रासक-काव्य' लिखे हैं, उतनी सख्या मे हिन्दी मे शायद ही किसी ने लिखा हो। वास्तव मे एक विद्वान् द्वारा इतने अधिक काव्य ग्रथ लिखना साहित्यिक इतिहास की अनोखी घटना है। अपने ८० वर्ष के जीवन काल मे ६० से अधिक कृतिया—'माँ भारती' को भेंट करना 'ब्र० जिनदास' की अपनी विशेषता है। आत्म-साधना के साथ ही इन्हे पठन-पाठन एव साहित्य-प्रचार का कार्य भी करना पडता था। यही नही अपने गुरु 'सकलकीर्त्ति' एव भुवनकीर्त्ति के साथ ये बिहार भी करते थे। इतने पर भी इन्होने जो साहित्य-सर्जना की—वह इनकी लगन एव निष्ठा का परिचायक है। कवि की अब तक जितनी कृतियाँ उपलब्ध हो सकी हैं उनके नाम इस प्रकार है—

संस्कृत रचनाएं

(i) काव्य, पुराण एव कथा-साहित्य :

१. जम्बूस्वामी चरित्र,
२. राम चरित्र (पद्म पुराण),
३ हरिवंश पुराण,
४. पुष्पांजलि व्रत कथा,

(ii) पूजा एव विविध साहित्य ·

१. जम्बूद्वीपपूजा,
२ सार्द्धद्वयद्वीपपूजा,
३. सप्तर्षि पूजा,
४. ज्येष्ठजिनवर पूजा,
५ सोलहकारण पूजा,
६. गुरु-पूजा,
७. अनन्तव्रत पूजा,
८ जलयात्रा विधि

राजस्थानी रचनाएं

इनकी अब तक ५० से भी अधिक इस भाषा की रचनाए उपलब्ध हो चुकी है। इन रचनाओ को निम्न भागो मे बाटा जा सकता है:—

१. पुराण साहित्य,
२. रासक साहित्य,
४. पूजा साहित्य,
५ स्फुट साहित्य,

३. गीत एव स्तवन,

१. पुराण साहित्य :

१. आदिनाथ पुराण,
२. हरिवंश पुराण,

२. रासक साहित्य :

१. राम सीता राम,
२. यशोधर रास,
३. हनुमत रास,
४. नागकुमार रास,
५ परमहंस रास,
६ अजितनाथ रास,
७. होली रास,
८. धर्मपरीक्षा रास,
९. ज्येष्ठजिनवर रास,
१०. श्रेणिक राम,
११. समकित मिथ्यात्व रास,
१२. सुदर्शन रान,
१३. अम्बिका राम,
१४. नागश्री रास,
१५. श्रीपाल रास,
१६ जम्बूस्वामी रास,
१७. भद्रबाहु रास,
१८ कर्मविपाक रास,[1]
१९. सुकौशलस्वामी रास,[2]
२० रोहिणी रास,[3]
२१ सोलहकारण रास,[4]
२२. दशलक्षण रास,
२३. अनन्तव्रत रास,
२४. वंकचूल रास,
२५ धन्यकुमार रास,[5]
२६. चारुदत्त प्रबन्ध रास,[6]
२७. पुष्पांजलि रास,
२८ धनपाल रास (दानकथा रास),
२९ भविष्यदत्त रास,
३०. जीवन्धर रास,[7]
३१ नेमीश्वर रास,
३२. करकण्डु रास,
३३. सुभौमचक्रवर्ती रास,[8]
३४ अठावीस मूलगुण रास,[9]

---

१. इस कृति की एक प्रति उदयपुर (राज०) के अग्रवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

२. इसकी एक प्रति डूंगरपुर के दि० जैन मन्दिर में संग्रहीत है।

३. इसकी एक प्रति डूंगरपुर के दि० जैन मन्दिर के संग्रह में है।

४. अग्रवाल दि० जैन मन्दिर उदयपुर के संग्रह मे है।

५. इस रास की एक प्रति संभवनाथ दि० जैन मन्दिर उदयपुर के संग्रह मे है।

६. वही।

७ वही।

८. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ—पृष्ठ संख्या ३६७।

९. वही पृष्ठ संख्या ६०७।

३. गीत एवं स्तवन :

१. मिथ्यादुक्कड विनती,
२. बारहव्रत गीत,
३. जीवडा गीत,
४. जिणन्द गीत,
५ आदिनाथ स्तवन,
६. आलोचना जयमाल,
७ स्फुट–विनती, गीत, चूनरी, धवल, गिरिनार धवल, आरती, निजामार्ग आदि।

४. पूजा साहित्य :

१. गुरु जयमाल,
२. शास्त्र पूजा,
३. सरस्वती पूजा,
४, गुरु पूजा,
५. जम्बूद्वीप पूजा,
६. निर्दोषसप्तमीव्रत पूजा,

५. स्फुट साहित्य :

१. रविव्रत कथा,
२ चौरासी जाति जयमाल,
३ भट्टारक विद्याधर कथा,
४. अष्टाग सम्यक्त्व कथा,
५. व्रत कथा कोश,
६. पञ्चपरमेष्ठि गुण वर्णन,

अब यहा कवि की कुछ रचनाओ का परिचय दिया जा रहा है—

१ जम्बूस्वामी चरित्र

यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमे अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित्र निवद्ध है। सम्पूर्ण काव्य ग्यारह सर्गो मे विभक्त है। काव्य मे वीर एव शृ गार रस का अद्भु त सम्मिश्रण है जिससे काव्य भाषा एव शैली की दृष्टि से एक मोहक काव्य वन गया है। भाषा सरल एव अर्थ मय है। काव्य मे सुभाषितो का वाहुल्य है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जारहे है—

यत् किञ्चित् दुर्लभ वस्तु, जगत् यस्मिन् निरीक्षते।
तत्सर्व धर्मतो नून, प्राप्यते क्षणमात्रत ॥८॥

× × ×

एकाकी जायते प्राणी, तथैकाकी विलीयते।
सुखदु खमयैकाकी, भु क्ते वर्मवशात् ध्रु व ॥७२॥

× × ×

निंदा स्तुति समो धीमान्, जीविते मरणे तथा।
शृणोति शब्द वधिर, द्रव पश्यति ... ॥१७८॥

× × ×

मातर्जात सुपुत्रो हि, स्व भूषयति यत् कुल।
शुभाचारादिना नून, वर मन्ये घनै किमु ॥७४॥

२ हरिवंश पुराण

यह कवि की सस्कृत भाषा मे निबद्ध दूसरी बडी रचना है जिसमे ४० सर्ग हैं। श्रीकृष्ण एव २२ वें तीर्थ कर नेमिनाथ हरिवश मे ही उत्पन्न हुये थे इसलिये उनका एव प्रद्युम्न, पाडव, कौरवो का इस पुराण मे वर्णन किया गया है। इसे जैन महाभारत कह सकते है। इसकी वर्णन शैली भी महाभारत के समान है किन्तु स्थान२ पर इसमे काव्यत्व के भी दर्शन होते हैं। महापुरुष श्री कृष्ण एव भगवान नेमिनाथ का इसमे सम्पूर्ण जीवन वर्णित है और इन्ही के जीवन प्रसग मे कौरव-पाण्डवो का अच्छा वर्णन मिलता है। राम कथा एव श्री कृष्ण कथा को जैन आचार्यो ने जिस सुन्दरता एव मानवीय आधार पर प्रस्तुत किया है उसे जैन पुराण एव काव्यो मे अच्छी तरह देखा जा सकता है। ब्रह्म जिनदास के हरिवश पुराण का स्थान आचार्य जिनसेन द्वारा निबद्ध हरिवश पुराण से बाद का है।

३ राम चरित्र

८३ सर्गो मे विभक्त यह रचना जिनदास की सबसे बडी रचना है। इसकी श्लोक सख्या १५००० है। रविषेणाचार्य के पद्मपुराण के आधार पर की गई इस रचना का नाम पद्मपुराण (जैन रामायण) भी प्रसिद्ध है। इस काव्य मे भगवान राम के पावन चरित्र का जिस सुन्दर ढग से वर्णन किया गया है उससे कवि की विद्वत्ता एव वर्णन चातुर्य्य का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। काव्य की भाषा सरल है एव वह सुन्दर शैली मे लिखा हुआ है।

हिन्दी रचनाएं

१. आदिनाथ पुराण

यह कवि की बडी रचनाओ मे है। इसमे प्रथम तीर्थ कर ऋषभदेव एव बाहुबलि आदि महापुरुषो के जीवन का वर्णन है। साथ ही आदिनाथ के पूर्व भवो का, भोगभूमियो की सुख समृद्धि, कुलकरो की उत्पत्ति एव उनके द्वारा विभिन्न समयो मे आवश्यक निर्देशन, कर्मभूमियो का प्रारम्भ आदि का भी अच्छा वर्णन मिलता है। पुराण मे गुजराती भाषा के शब्दो की बहुलता है। कवि ने ग्र थ के प्रारम्भ मे रचना सस्कृत के स्थान पर देश भाषा मे क्यो की गई इसका सुन्दर उत्तर दिया है। उन्होने कहा है कि जिस प्रकार नारियल कठिन होने से बालक उसका स्वाद (बिना छीले) नही जान सकता तथा दाख केला आदि का बिना छीले ही अच्छी तरह से स्वाद लिया जा सकता है वही दशा देशी भाषा मे निबद्ध काव्य की भी है—

> भवियण भावें सुणो आज, रास कहो मनोहार ।
> आदिपुराण जोई करी, कवित करू ं मनोहार ॥१॥

वाल गोपाल जिम पढे गुणे, जाणे वहु भेद ।
जिन सासण गुण नीरमला, मिथ्यामत छेद ॥२॥
कठिन नारेल दीजे वालक हाथ, ते स्वाद न जांणे ।
छोल्या केला द्राख दीजे, ते गुण वहु माने ॥३॥
तिम ए ग्रादपुराण सार, देस भाषा वखाणू ।
ग्रगुण गुण जिम विस्तरे, जिन सामन वखाणू ॥४॥

ब्रह्म जिनदास ने रचना मे ग्रपने गुरु सकलकीर्त्ति एव मुनि भुवनकीर्त्ति का सादर उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीने, मुनी भवनकीरती अवतार ।
ब्रह्म जिनदास कहे नीर्मलो रास कीयो मे सार ॥

२ हरिवंश पुराण

इसका दूसरा नाम नेमिनाथ रास भी है। कवि ने पहिले जो सस्कृत मे हरिवश पुराण निवद्ध किया था उसी पुराण के कथानक को फिरसे उन्होने राजस्थानी भाषा मे और काव्य रूप मे निवद्ध कर दिया। कवि के समय मे जन साधारण की जो प्रान्तीय भाषाग्रो मे रुचि वढ रही थी उसी के परिणाम-स्वरूप यह रचना हमारे सामने आयी। यह कवि की बडी रचनाओं मे से है। इसकी एक प्रति सवत् १६५३ मे लिखी हुई उदयपुर के खण्डेलवाल मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इस प्रति मे ११$\frac{1}{2}$″ × ७$\frac{1}{2}$″ आकार वाले २३० पत्र है। हरिवश पुराण की रचना सवत् १५२० मे समाप्त हुई थी ग्रौर सभवत यह उनकी ग्रन्तिम रचना मालूम देती है।

सवत १५ (पन्द्रह) वीसोत्तरा विशाखा नक्षत्र विशाल ।
शुक्ल पक्ष चौदसि दिना रास कियो गुणमाल ॥

रचना सुन्दर है ग्रौर इसकी भापा को हम राजस्थानी भापा कह सकते है। इसमे कवि ने परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है ग्रौर इसमे निखरे हुये काव्य के दर्शन होते है। यद्यपि रचना का नाम पुराण दिया हुआ है लेकिन इसे महा काव्य की सज्ञा दी जा सकती है।

३ राम सीता रास

राम के जीवन पर राजस्थानी भापा को सभवत यह सवसे वडी रचना है जिसे दूसरे रूप मे रामायण कहा जा सकता है। कवि ने जो राम चरित्र सस्कृत मे लिखा था उमी का कथानक इस काव्य मे है। लेकिन यह कवि की स्वतत्र रचना है सस्कृत कृति का अनुवाद मात्र नही है। सवत् १७२८ मे देउल ग्राम मे

लिखी हुई इस काव्य की एक प्रति डूंगरपुर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इस प्रति मे १२"x६" आकार वाले ४०५ पत्र है। इसका रचना काल सवत् १५०८ मगसिर सुदी १४ (सन् १४५१) है।

सवत् पन्नर अठोतरा मागसिर मास विशाल।
शुक्ल पक्ष चउदिसि दिनी रास कियो गुणमाल।।६।।

४ यशोधर रास

इसमे राजा यशोधर के जीवन का वर्णन है। यह सभवतः कवि की प्रारम्भिक रचनाओ में से है क्योकि अन्य रचनाओ की तरह इसमे भुवनकीर्त्ति के नाम का कोई उल्लेख नही किया गया है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। रचना की भाषा एव शैली दोनो ही अच्छी है।

५. हनुमत रास

हनुमान का जीवन जैन समाज मे बहुत ही प्रिय रहा है। इनकी गणना १६३ पुण्य पुरुषो मे की जाती है। हनुमत रास एक लघु काव्य है जिसमे उसके जीवन की मुख्य २ घटनाओ का वर्णन दिया हुआ है। यह एक प्रकार से सतसई है जिसमे ७२७ दोहा चौपई वस्तुबध आदि है। रचना सुदर है। एक उदाहरण देखिये—

अमितिगति मुनिवर तणु नाम, जाणे उग्यु बीजु भान।
तेजवत रुधिवत गुणमाल, जीता इद्री मयण मोह जाल।।
क्रोध मान मायानि लोभ, जीता रागद्वेष नहिं क्षोभ।
सोममूरति स्वामी जिणचद, दीठिउ ऊपजि परमानन्द।।
अजना सुदरी मनु ऊपनु भाव, मुनिवर वर त्रिभुवनराय।
नमोस्त करी मुनि लागी पाय, धन सफल जन्म हवु काय।।

आपकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के खण्डेवाल दि जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है।

६ नागकुमार रास

इस रास मे पञ्चमी कथा का वर्णन है। इस रास की एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल मदिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। प्रति मे १०॥"x४॥" आकार वाले ३६ पत्र हैं। यह सवत् १८२६ की प्रतिलिपि की हुई है। रास सीधी सादी भाषा मे लिखा हुआ है। एक उदाहरण देखिये—

जबू द्वीप मझारि सार, भरत क्षेत्र सुजाणो।
मगध देश अति रूवडो, कनकपुर वखाणो।।१।।
जयधर तिणे नयर राउ, राज करे उतग।
धरम करे जिणवर तणो, पालै समकित अग।।२।।

विशाल नेत्रा तस राणी जाणि, रूप तणो निधान ।
मद करे ते अति घणो, वाघ वहुमान ॥३॥

७ परमहस रास

यह एक आध्यात्मिक रूपक रास है जिसमे परमहस राजा नायक है तथा चेतना नाम राणी नायिका है। माया रानी के वश होकर वह अपने शुद्ध स्वरूप को भूल जाता है और काया नगरी मे रहने लगता है। मन उसका मत्री है जिसके प्रवृत्ति एव निवृत्ति यह दो स्त्रिया है। मोह प्रतिनायक है। रचना वडी सुन्दर है। इसकी एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल मदिर के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है। इसके भाव एव भाषा का एक उदाहरण देखिये—

पापाण माहि सोनो जिम होई, गोरस माहि जिमि घृत होई ।
तिल सारे तैल वसे जिमि भग, तिम शरीर आत्मा अभग ॥

काष्ठ माहि आगिनि जिमि होई, कुसुम परिमल माहि नेह ।
नीर जलद सीत जिमि नीर, तेम आत्मा वसै जगत सरीर ॥

८. अजितनाथ रास

इस रास मे दूसरे तीर्थ कर अजित नाथ का जीवन वर्णित है। रचना लघु है किन्तु सुन्दर एव मधुर है। इसकी कितनी ही प्रतियाँ उदयपुर, ऋषभदेव डूगरपुर आदि स्थानो के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत है। रास की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

श्री सकलकीर्त्ति गुरु प्रमणमीने, मुनि भुवनकीरति अवतार ।
रास किधो मे निरमलो, अजित जिणेसर सार ।
पढइ गुणइ जे साभले, मनि धरि अविचल भाव ।
तेह घर रिधि घर तणो, पाये शिवपुर ठाम ।
जिण सासण अति निरमलो, भवि भवि देउ मझु सार ॥
ब्रह्म जिणदास इम वीनवे, श्री जिणवर सुगति दातार ॥

९. आरती छद

कवि ने छोटी वडी रचनाओ के अतिरिक्त कुछ सुन्दर पद्य भी लिखे है। इस छद मे इन्होने भगवान के आगे सब देव एवं देवियाँ नृत्य करती हुई स्तवन करती है उसका सुन्दर दृश्य अपने शब्दो मे चित्रित किया है। एक उदाहरण देखिये—

ना मति कलिमल मन निरमल, इ द्र आरती उतारए ।
जिणवरह स्वामी मुकतिगामी, सुग मयन निवारए ॥८॥

वाजत ढोल निसाण दरवडि, झल्लरि नाद ते रण झण ।
कसाल मु गल भेरी मद्धल, ताल तवलि ते अति घण ।।
इणी परिहि नादइ गहिर सादिइ , इंद्र आरती उतारए।।
गावत धवल गीत मगल, राग सुरस मनोहर ।
नाचति कामिणि गजह गामिणि, हाव भाव सोहे वर ।
सुगध परिमल भाव निरमल, इंद्र आरती उतारए ।।

१०. होली रास

इस रास मे जैन मान्यतानुसार होली की कथा दी गई है कथा रोचक है। रास मे १४८ पद्य हैं जो दूहा चौपाई एव वस्तुबंध छद मे विभक्त है।

इणि परि तिहा थी काठीआ, नयर माहि था तेह जगया ।
पापी जीवनि नही किहा सुख, अहिलोक परलोक पामि दु ख ।
वन माहि गया ते पाप, पाम्या अति दुख सताप ।
धर्म पाखि रलि सहू कोइ, सीयल सयम विण मूलौ भमि लोइ

इस ग्र थ की एक प्रति जयपुर के वडे तेरहपथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है। रास की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

प्रजापति तेणी नयरीय राय, प्रजावती तस राणी।
गज तुरगम रथ अपार, दीइ लषमी बहू माणि ।।७।।
वसंत नाम परधान जाणि, वसुमती तस राणी ।
विष्णु भट्ट परोहित जाणि, सोमश्री तस नारी।।८।।

× × × × ×

एक भगत करि रुपडाए, अज्ञात कष्ट बखाणतु ।
एकादशी उपवास करिए, दीतवार सोमवारि जाणी तु ।।८८।।
दान दीइ लोक अतिघणाए, गो आदि दश वखाणि तु ।
मूढ माहि हवु जाणतु, मान पाम्या अति घणुए ।।८९।।
इणी परि ते नयरी रहिए, लखि नही तेहनि कोइ तु ।
पुराण शास्त्र पढि अति घणा ए, लोकसु भाक्षत जोयतु ।।९०।।

११. धर्मपरीक्षा रास—

इस रास मे मनोवेग और पवनवेग के आधार से कितनी ही कथायें दी हुई हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मानव को गलत मार्ग से हटाकर उत्तम मार्ग पर लाना है। मनोवेग शुद्धाचरण वाला है जबकि पवनवेग सन्मार्ग से भूला हुआ है। रास सुन्दर है और इसके पढने से कितनी ही अच्छी बातें उपलब्ध होती हैं।

रास मे दूहा, चौपाई, भासा तथा वस्तुवन्ध छद का प्रयोग हुआ है। भाषा एव शैली दोनो ही अच्छी हैं। एक उदाहरण देखिये—

दूहा—

अज्ञान मिथ्यात दूर धरो, तप्ला आगलि विचार ।
अवर मिथ्या तणा, पचम काल अपार ॥१॥
इम जाणि निश्चो करी, छोडु मिथ्यात अणर।
समकिन पालो निरमलो, जिम पामो भव पार ॥२॥
परीक्षा कीजि रुवडी, देव धरम गुरु चग ।
निर्दोष सासण तणो, त्रिभुवन माहि अभग ॥३॥
ते आराधु निरमलो, पवनवेग गुणवत ।
तिमि सुख पायो अति घणो, मुगति तणो जयवत ॥४॥
जीव आगि घूण भम्यो, सत्य मारग विण थोट ।
ते मारग तह्य आचरो, जिम दुख जाइ घन घोर ॥५॥

रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीनि, मुनि भूवनकीरति अवतार ।
व्रह्म जिनदास भणि रुवडो, रास कियो सविचार ॥
धर्म परीक्षा रास निरमलो, धर्मंमतणो निधान।
पढि गुणि जे समलि तेह उपजि मतिज्ञान ॥२॥

१२ ज्येष्ठजिनवर रास

यह एक लघु कथा कृति है जिसमे 'सोमा' ने प्रतिदिन एक घडा पानी जिन मदिर मे लेजाकर रखने की अपनी प्रतिज्ञा किन २ परिस्थितियो मे भी सफलतापूर्वक निभायी—इसका वर्णन दिया हुआ है। भाषा सरल है तथा पद्यो की सख्या १२० है।

सोमा मनि उपनु तव भाव, एक नीम देउ तमे करी पसाइ ।
एक कु भ जिनवर भवन उतग, दिन प्रति मू कि सइ मन रग ॥
एहवु नीम लीधु मन माह, एक कु भ मेहलि मन माह।
निर्मल नीर भरी करी चग, दिन प्रति जिनवर भुवन उतग ॥

१३. श्रेणिक रास

इसमे राजा श्रेणिक के जीवन का वर्णन किया गया है राजा श्रेणिक मगध के सम्राट थे तथा भगवान महावीर के मुख्य उपासक थे। इसमे दोहा, चौपाई छद का अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा भी सरल एव सुन्दर है। एक उदाहरण देखिये—

जे जे बात निमित्ती कही, राजा आगले सार ।
ते ते सब सिद्धे गई, श्रेणिक पुन्य अपार ॥
तब राजा आमन्त्रि मनहि करि विचार ।
माहरो बोल विरथा हवु, धिग धिग एह मझार ॥
तब रासि बोलावीयु, सुमती नाम परधान ।
अवर मन्त्री बहु आवी आ, राजा दीधु बहु मान ॥

इस रास की एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सग्रहीत है। पाण्डु-लिपि मे ५२ पत्र हैं जो ९½" × ४½" आकार वाले हैं।

१४. समकित-मिथ्यात रास

यह एक लघु रास है जिसमे शुद्धाचरण पर अधिक बल दिया गया है तथा जिन्होने अपने जीवन मे सम्यक् चारित्र को उतारा है उनका नामोल्लेख किया गया है। पद्यो की सख्या ७० है। वड, पीपल, सागर, नदी एव हाथी, घोडा, खेजडा आदि को न पूजने के लिये उपदेश दिया गया है। रास की राजस्थानी भाषा है तथा वह सरल एव सुबोध है। एक उदाहरण देखिये—

गोरता देवि पुत्र देइ, तो को इवाडी यो न होइ ।
पुत्र धरम फल पामीइ, एह विचार तु जोइ ॥३॥
धरमइ पुत्र सोहावणाए, धरमद लाछि भडार ॥
धरमइ घरि वधावणा, धरमइ रुप अपार ॥४॥
इम जाणी तह्ये धरम करो, जीव दया जगि सार ।
जीभ एह्वा फल पामीइ, बलि तणीए ससारि ॥५॥

रास का अन्तिम पाठ निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणामीनए, श्री भुवनकीरति अवतारतो ।
ब्रह्मजिणदास भणे ध्याइए, गाइए सरस अपारतो ॥
इति समिकितरास मिथ्यातमोरास समाप्त ।

१५. सुदर्शन रास

इस रास में सेठ सुदर्शन की कथा दी हुई है जो अपने उत्तम एव निर्मल चरित्र के कारण प्रसिद्ध था। रास के छन्दो की सख्या ३३७ है। अन्तिम छद इस प्रकार है—

साह सुदर्शन साह सुदर्शन सीयल भन्डार ।
समकित गुणे आगुण पाप, मिथ्यात रहित अतिवल ॥

क्रोध मोहवि खडगु गुरण, तगु भगई कहीइ ।
ते मुनिवर तगु निर्मभु रास कह्यु मि सार ॥
व्रह्म जिरणदास एणी परिभणि, गाइ पुन्य अपार ॥३३७॥

१६ अ विका रास

इसमे अ विका देवी का चरित्र चित्रित किया गया है। छन्दो की सख्या १५८ है। कवि ने मगलाचरण मे नेमिनाथ स्वामी को नमस्कार किया है। इस रास मे किसी गुरु का स्मरण नही किया गया है।

वीनती छद—सोरठ देस मभार जूनागढ जोगि जाणीइए।
गिरिनारि पर्वत वनि सिद्ध क्षेत्र वखाणिइए ॥

१७ नागश्री रास

इस रास मे रात्रि भोजन को लेकर नागश्री की कथा का वर्णन किया गया है। रास की एक प्रति उदयपुर के शास्त्र भण्डार के बडे गुटके मे सग्रहीत है। कवि ने अपने अन्य रासक काव्यो के समान इसकी भी रचना की है। इसमे २५३ पद्य है। रास का अन्तिम भाग देखिए—

काल घणु सुख भोगव्या, पछि ऊपनु वैरागतु।
ज्ञानसागर गुरु पामिया ए, सर्ग मुक्ति तणा भावतु।

दोहा—तेह गुरु प्रणमी करी, लीधु सयम भार ।
राजा सहित सोहामणु, पच महाव्रत सार ॥२४६॥
नागश्री श्राविका कही, राणी सहित सुजाण ।
अर्जिका हवी अति निर्मली, धर्मनी मनी खाणि ॥२५०॥
तप जप सयम निर्मलु, पाल्यु अति गुणवत ।
सर्ग पुहता रुअडा, ध्यान वसि जयवत ॥२५१॥
नारी लिंग छेदी करी, नागश्री गुणमाल ।
सर्ग भुवनदेव हवु, रुधिवत विसाल ॥२५२॥
कीरति गुरु पाए प्रणमीनि, मुनि भुवनकीरति ग्रवतार ।
व्रह्म जिनदास इस वीनवि, मन वछीत फल पामि ॥२५३॥

इति नागश्री रास। स १६१६ पोष सुदि ३ रवौ।
व्रह्म श्री घना केन लिखितं ॥

१८ रविव्रत कथा

प्रस्तुत लघुकथा कृति मे जिनदास ने रविवार व्रत के महात्म्य का वर्णन किया है। इसकी भाषा अन्य कृतियो की अपेक्षा सरल एवं सुवोव है। इसकी एक प्रति डूगरपुर के शास्त्र भडार के एक गुटका मे सग्रहीत है। इसमे ४६ पद्य हैं।

कृति का आदि एव अन्तिम भाग देखिए—

प्रथम नमु जिनवर ना पाय, जेहनि सुख सपति वहु थाय ।
सरस्वति देवि ना पद नमु, पाप ताप सहु दूरे गमु ॥१॥
कथा कहु रुडि रविवार, जेह थी लहिए सुख भडार ।
काशी देश मनोहर ठाम, नगर वसे वारानसी नाम ॥२॥
राजा राज करे महीपाल, सूरवीर गुणवत दयाल ।
नगर सेठ धनवतह वसे, पूजा दान करी अघ नसे ॥३॥
पुत्र सात तेह ने गुणवत, सज्जन रुडाने वलिसत ।
गुणधर लोहडो बालकुमार, तेह भणियो सवि शास्त्र विचार ॥४॥

अन्तिम—

मूल सघ मंडन मनोहार, सकलकीर्त्ति जग मा विस्तार ।
गया धर्म नो करे उधार, कलि काले गौतम अवतार ॥४५॥
तेहनो सीस्य ब्रह्म जिनदास, रविवार व्रत कीयो प्रकाश ।
भावधरी व्रत करे से जेह, मन वाछित सुख पामे तेह ॥४६॥

इति रविव्रत कथा सम्पूर्णम् ।

१९. श्रीपाल रास

यह कोटिभट श्रीपाल के जीवन पर आधारित रासक काव्य है जिसमे पुरुषार्थ पर भाग्य की विजय बतलाई गयी है । रास की एक प्रति खण्डेलवाल दि. जैन मदिर उदयपुर के ग्र थ भण्डार मे सग्रहीत है । कवि ने ४४८ पद्यो मे श्रीपाल, मैना सुन्दरी, रैनमजूषा धवलसेठ आदि पात्रो के चरित्र सुन्दर रीति से लिखे गये हैं । रास की भाषा भी बोलचाल की भाषा है । रैनमजूषा का विलाप देखिये—

रयणमजूषा अवला बाल, करि विलाप तिहा गुणमाल ।
हा हा स्वामी मझ तु कत, समुद्र माहि किम पडीउ मत ॥१८४॥
पर भवि जीव हिंसा मिं करी, सत्य वचन वल न विधकरी ।
नर नारी निंदी घाग्राल, तेणि पापि मझ पठीउ जाल ॥१८५॥
कि मुनिवर निंदा करी, जिनवर पूजा कि अपहरी ।
कि धर्म तदयु करयु विणास, तेणि श्राव्यु मझ दुख निवास ॥१८६॥

कृति का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

सिद्ध पूजा सिद्ध पूजा सार भवतार ।
तेहनि रोग गयु राज्य पाम्यु, वलीसार मनोहर ।
श्रीपाल राणु निरमलु सयम, लीधु सार मुगतिवर ।
मयण स्त्रीलिंग छेद करी, स्वर्ग देव उपनु निरमर ।

ध्यान धरी मनं ध्याय धरी, श्रीपाल मद अवतार ।
श्री सकलकीर्ति पाए प्रणमीनि, ब्रह्म जिणदास भणिसार ॥४४८॥

इति श्रीपाल मुनिश्वररास सम्पूर्ण ।

२०. जम्बूस्वामी रास

इसमें २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के जीवन का वर्णन किया गया है। यह रास भी उदयपुर (राज) के खण्डेलवाल दि. जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इसमें १००५ पद्य हैं। जो विभिन्न छन्दों में विभक्त हैं। इनमें से दो उदाहरण देखिए—

ढाल रासनी—

गजकथनी कहि निरमलीए, वत न जाणि भेद तु ।
अधिक गुणनि शालिगए, सिद्धा तणु करि देद तु ॥६७९॥
उपगु मेघ देणो करीए, कोति गदा गमार तु ।
परलोक सुख कारणि, फल छोडइ संसार तु ॥६८०॥
चोपट अ नरोगा करीए, घरि घरि मागि दीन तु ।
सरग कमल छोडी करीए, कोरडी चारि अगली होन तु ॥६८१॥

अन्तिम छन्द—

गम कीपुमि प्रतिहि विनाल
जबुकुमर मुनि निर्मुगु, अन्तिम केवली सार मनोहार ।
अनेक कथामि वरणवी, भवीयण तणी गुणवत जिनवर ।
पढि गुणि साभलि, तेरा घरि रिधि अनत ।
ब्रह्म जिनदास एणी परभणि, मुकति रमणी होइ कत ॥१००५॥

२१ भद्रबाहु रास

भगवान महावीर के पश्चात होने वाले भद्रबाहु स्वामी अन्तिम श्रुत केवली थे। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (ई. पू. ३ री शताब्दि) उनके शिष्य थे। भद्रबाहु का प्रस्तुत रास मे सक्षिप्त वर्णन है। इस रास की प्रति अग्रवाल दि. जैन मन्दिर उदयपुर के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है। रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

चन्द्रप्रभजिन चन्द्रप्रभजिन नमु ते सार ।
तीर्थंकर जो आठमो वाछीत फल वहु दान दातार ।
सारद स्वामिनी वलि तवु, जीम बुद्धि सार हउं वेगि मागउ ।
गणधर स्वामी नमसकरु श्री सकल कीरति गुणसार ।
तास चरण हु प्रणमीनि, रास करु सविचार ॥

अन्तिम भाग —

> भद्रबाहु मुनी भद्रबाहु मुनी सघ धुरि सार ।
> पचम श्रुत केवली गुरू, धरम नाव स सार तारण ।
> दिगम्बर निग्रन्थ मुनि, जिन सकल उद्योत कारण ।
> ए मुनि आह्य धाइस्यु, कहीयु निरमल रास ।
> ब्रह्म जिणदास इणी परिभणो, गाइं सिवपुर वास ।

भाषा

कवि का मुख्य क्षेत्र डूगरपुर, सागवाडा, गलियाकोट, ईडर, सूरत आदि स्थान थे। ये स्थान बागड प्रदेश एव गुजरात के अन्तर्गत थे जहा जन साधारण की गुजराती एव राजस्थानी बोली थी। इसलिए इनकी रचनाओ पर भी गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। कही कही तो ऐसा लगता है मानो कोई गुजराती रचना ही हो। इनकी भाषा को राजस्थानी की सज्ञा दी जा सकती है। यह समय हिन्दी का एक परीक्षण काल था और वह उसमे खरी सिद्ध होकर आगे बढ रही थी। ब्रह्म जिनदास के इस काल को रासो काल की सज्ञा दी जा सकती है। गुजराती शब्दो को हिन्दीवालो ने अपना लिया था और उनका प्रयोग अपनी अपनी रचनाओ मे करने लगे थे। जिसका स्पष्ट उदाहरण ब्रह्म जिनदास एव बागड प्रदेश मे होने वाले अन्य जैन कवियो की रचनाओ मे मिलता है। अजितनाथ रास के प्रारम्भ का इनका एक मगलाचरण देखिए—

> श्री सकलकीर्त्ति गुरू प्रणमीने, मुनि भुवनकीरति अवतार ।
> रास कियो मे निरमलो, अजित जिणेसर सार ॥
> पढेइ गुणेइ जे साभले, मनि धर निर्मल भाव ।
> तेह करि रिधि घर तणो, पाये शिवपुर ठाम ॥
> जिण सासण अति निरमलो, भवि भवि देउ मुहसार ।
> ब्रह्म जिनदास इम वीनवे, श्री जिणवर मुगति दातार ॥

उक्त उद्धरण मे प्रणमीने, मे, तणो शब्द गुजराती भाषा के कहे जा प्रकते है। इसी तरह जम्बूस्वामी रास का एक और उद्धरण देखिए—

> भवियण भावि सुणु आज हूं कहिय वर वाणी ।
> जम्बू कुमार चरित्र गायसू मधूरीय वाणी ॥ २ ॥
> अन्तिम केवली हवु चग जम्बूस्वामी गुणवत ।
> रूप सोभा अपार सार सुललित जयवत ॥ ३ ॥
> जम्बू द्वीप मझार सार भरत क्षेत्र जाणु ।
> भरत क्षेत्र माहि देव सार मगध वखाणु ॥ ४ ॥

उक्त पद मे हवु, चग गुजराती भापा के कहे जा सकते हैं। इस तरह कवि अपनी रचनाओ मे गुजराती भापा के कहीं कम और कही अधिक शब्दो का प्रयोग करते है लेकिन इससे कवि की कृतियो की भाषा को राजस्थानी मानने मे कोई आपत्ति नही हो सकती।

इस प्रकार कवि जिनदास अपने युग का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि कहे जा सकते है। इन्होने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी के कवियो का वातावरण तयार करने मे अत्यधिक सहयोग दिया और इनका अनुसरण इनके बाद होने वाले कवियो ने किया। इतना ही नही इन्होने जिन छन्दो एव शैली मे कृतियो का सृजन किया उन्ही छन्दो का इनके परवर्ती कवियो ने उपयोग किया। वस्तुबध छन्द इन्ही का लाडला छन्द था और ये इस छन्द का उपयोग अपनी रचनाओ मे मुख्यत करते रहे हैं। दूहा, चउपई एव भास जिसके कितने ही रूप हैं, इनकी रचनाओ मे काफी उपयोग हुआ है। वास्तव मे इनकी कृतिया छन्द शास्त्र का अध्ययन करने के लिये उत्तम साधन है।

मूल्याकन :

'ब्रह्म जिनदास' की कृतियो का मूल्याकन करना सहज कार्य नही है, क्योकि उनकी सख्या ६० से भी ऊपर है। वे महाकवि थे, जिनमे विविध विपयक साहित्य को निबद्ध करने का अद्भुत सामर्थ्य था। भ० सकलकीर्त्ति एव भुवनकीर्त्ति के सघ मे रहना, दोनो के समय समय पर दिये जाने वाले आदेशो को भी मानना, समारोह एव अन्य आयोजनो मे तथा तीर्थयात्रा सघ में भी उनके साथ रहना और अपने पद के अनुसार आत्मसाधना करना आदि के अतिरिक्त ६० से अधिक कृतियो को निवद्ध करना उनकी अलौकिक प्रतिभा का सूचक है। कवि की सस्कृत भाषा मे निवद्ध रामचरित एव हरिवश पुराण तथा हिन्दी भाषा में निवद्ध रामसीता रास, हरिवश पुराण, आदिनाथ पुराण आदि कृतिया महाकाव्य के समकक्ष की रचनाये हैं-जिनके लेखन मे कवि को काफी समय लगा होगा। 'ब्रह्म जिनदास' ने हिन्दी भाषा मे इतनी अधिक कृतियो की उस समय रचना की थी-जव 'हिन्दी' लोकप्रिय भापा भी नही बन सकी थी और सस्कृत भाषा मे काव्य रचना को पाण्डित्य की निशानी समझी जाती थी। कवि के समय मे तो सभवतः 'महाकवि कवीरदास' को भी वर्तमान शताब्दि के समान प्रसिद्धि प्राप्त नही हुई थी। इसलिये कवि का हिन्दी प्रेम सर्वथा स्तुत्य है।

कवि की कृतियो में काव्य के विविध लक्षणो का समावेश है। यद्यपि प्राय सभी काव्य शान्त रस पर्यवसानी है, लेकिन वीर, शृगार, हास्य आदि रसो का यत्र तत्र अच्छा प्रयोग हुआ है। कवि मे काव्य के आकर्षक रीति से कहने की क्षमता है। उसने अपने काव्यो को न तो इतना अधिक जटिल ही वनाया कि पाठको का पढना

ही कठिन हो जावे और न वे इतने सरल है कि उनमे कोई आकर्षण ही बाकी न बचे। उन्होने काव्य रचना मे अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया--यही कारण है कि कवि के काव्य सदैव लोकप्रिय रहे और राजस्थान के सैकडो जैन ग्रथ भडार इनक काव्यो की प्रतिलिपियो से समालकृत है।

आचार्य सोमकीर्त्ति

आचार्य सोमकीर्त्ति १५ वीं शताब्दी के उद्भट विद्वान, प्रमुख साहित्य सेवी एव उत्कृष्ट जैन सत थे। उन्होने अपने जीवन के जो लक्ष्य निर्धारित किये उनमे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली। वे योगी थे। आत्म साधना मे तत्पर रहते और अपने शिष्यो, साथियो तथा अनुयायियो को उस पर चलने का उपदेश देते। वे स्वाध्याय करते, साहित्य सृजन करते एव लोगो को उसकी महत्ता बतलाते। यद्यपि अभी तक उनका अधिक साहित्य नहीं मिल सका है लेकिन जितना भी उपलब्ध हुआ है उस पर उनकी विद्वत्ता की गहरी छाप है। वे सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, राजस्थानी एव गुजराती आदि कितनी ही भाषाओ के ज्ञाता थे। पहिले उन्होने जन साधारण के लिये हिन्दी राजस्थानी मे लिखा और फिर अपनी विद्वता बतलाने के लिये कुछ रचनाये सस्कृत मे भी निवद्ध की। उनका प्रमुख क्षेत्र राजस्थान एव गुजरात रहा और इन प्रदेशो मे जीवन भर विहार करके जन साधारण के जीवन को ज्ञान, एव आत्म साधना की दृष्टि से ऊचा उठाने का प्रयास करते रहे। उन्होने कितने ही मन्दिरो की प्रतिष्ठाये करवायी, सास्कृतिक समारोहो का आयोजन करवाया और इन सबके द्वारा सभी को सत्य मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया। वास्तव मे वे अपने समय के भारतीय सस्कृति, साहित्य एव शिक्षा के महान प्रचारक थे।

आचार्य सोमकीर्त्ति काष्ठा सघ के नन्दीतट शाखा के सन्त थे तथा १० वी शताब्दि के प्रसिद्ध भट्टारक रामसेन की परम्परा मे होने वाले भट्टारक थे। उनके दादा गुरू लक्ष्मीसेन एव गुरू भीमसेन थे। सवत १५१८ (सन् १४६१) मे रचित एक ऐतिहासिक पट्टावली मे अपने आपको काष्ठासघ का ८७ वा भट्टारक लिखा है। इनके गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध मे हमे अब तक कोई प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध नही हो सकी है। वे कहा के थे, कौन उनके माता पिता थे, वे कब तक गृहस्थ रहे और कितने समय पश्चात उन्होने साधु जीवन को अपनाया इसकी जानकारी अभी खोज का विषय है। लेकिन इतना अवश्य है कि ये सवत १५१८ मे भट्टारक बन चुके थे

और इसी वर्ष इन्होने अपने पूर्वजो का इतिहास लिपिवद्ध किया था [1]। श्री विद्याधर जोहरापुरकर ने अपने भट्टारक सम्प्रदाय मे इनका समय सवत १५२६ से १५४० तक का भट्टारक काल दिया है। वह इस पट्टावली से मेल नही खाता। सभवत. उन्होने यह समय इनकी सस्कृत रचना सप्तव्यसनकथा के आधार पर दे दिया मालूम देता है क्योकि कवि ने इस रचना को स० १५२६ मे समाप्त किया था। इनकी तीन सस्कृत रचनाओ मे से यह प्रथम रचना है।

सोमकीर्त्ति यद्यपि भट्टारक थे लेकिन ये अपने नाम के पूर्व आचार्य लिखना अधिक पसन्द करते थे। ये प्रतिष्ठाचार्य का कार्य भी करते थे और उनके द्वारा सम्पन्न प्रतिष्ठाओ का उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है—

१. सवत १५२७ वैशाख सुदि ५ की इन्होने वीरसेन के साथ नरसिंह एव उसकी भार्या सापडिया के द्वारा आदिनाथ स्वामी की मूर्ति की स्थापना करवायी थी [2]।

२. सवत् १५३२ मे वीरसेन सूरि के साथ शीतलनाथ की मूर्ति स्थापित की गयी थी।[3]

---

१. श्री भीमसेन पट्टाधरण गछ सरोमणि कुल तिलौ।
जाणति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्ति मुनिवर भलौ ॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु।
अक्कवार पंचमी बहुल पख्यह बखाणु ॥
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोझोत्रि पुरवरि।
सन्यासो वर पाठ तसु प्रबन्ध जिणि परि ॥
जिनवर सुपास भवनि कीउ, श्री सोमकीर्त्ति बहु भाव धरि।
जयवत उरवि तलि विस्तरू श्री शातिनाथ सुपसाउ करि ॥

× × × ×

२. सवत १५२७ वर्ष वैशाख दुदी ५ गुरौ श्री काष्ठासघे नदतट गच्छे विद्यागणे भट्टारक श्री सोमकीर्त्ति आचार्य श्री वीरसेन युगवै प्रतिष्ठिता। नरसिंह राज्ञा भार्या सांपडिया गोत्रे ..... लाखा भार्या माकू देल्हा भार्या मानू पुत्र बना सा. कान्हा देल्हा केन श्री आदिनाथ बिम्ब कारापिता।

सिरमौरियो का मन्दिर जयपुर।

३. भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या—२९३

३. संवत् १५३६ मे अपने शिष्य वीरसेन सूरि के साथ हूंबड जातीय श्रावक भूपा भार्या राज के अनुरोध से चौबीसी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी।[1]

४. सवत् १५४० मे भी इन्होने एक मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवायी।[2]

ये मत्र शास्त्र के भी ज्ञाता एव अच्छे साधक थे। कहा जाता है कि एक बार इन्होने सुल्तान फिरोजशाह के राज्यकाल मे पावागढ मे पद्मावती की कृपा से आकाश गमन का चमत्कार दिखलाया था।[3] अपने समय के मुगल सम्राट से भी इनका अच्छा सवध था। ब्र० श्री कृष्णदास ने अपने मुनिसुव्रत पुराण (र. का. स. १६८१) मे सोमकीर्त्ति के स्तवन मे इनके आगे "यवनपतिकराभोजसपूजिताह्नि" विशेषण जोडा है।[4]

शिष्यगण

सोमकीर्ति के वैसे तो कितने ही शिष्य थे जो इनके सघ मे रहकर धर्म-साधन किया करते थे। लेकिन इन शिष्यो मे, यश कीर्ति, वीरसेन, यशोधर आदि का नाम मुख्यत. गिनाया जा सकता है। इनकी मृत्यु के पश्चात् यशःकीर्ति ही भट्टारक बने। ये स्वय भी विद्वान थे। इसी तरह आचार्य सोमकीर्त्ति के दूसरे शिष्य यशोधर की भी हिन्दी की कितनी ही रचनाऐं मिलती हैं। इनकी वाणी मे जादू था इसलिये ये जहा भी जाते वही प्रशसको की पक्ति खडी हो जाती थी। सघ मे मुनि-आर्यिका, ब्रह्मचारी एव पडितगण थे जिन्हे धर्म प्रचार एव आत्म-साधना की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

विहार

इन्होने अपने विहार से किन २ नगरो, गावो एव देशो को पवित्र किया इसक कही स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन इनकी कुछ रचनाओ मे जो रचना

---

१ संवत् १५३६ वर्षे वैशाख सुदी १० बुधे श्री काष्टासघे वागडगच्छे नंदी तट गच्छे विद्यागणे भ० श्री भीमसेन तत्पट्टे भट्टारक श्री सोमकीर्त्ति शिष्य आचार्य श्रीवीरसेनयुक्तं प्रतिष्ठितं हुंवड जातीय वध गोत्रे गाधी भूपा भार्या राज सुत गाधी मना भार्या काऊ सुत रूडा भार्या लाडिकि सघवी मना केन श्री आदिनाथ चतुर्विंशतिका प्रतिष्ठापिता।

मदिर लूणकरणजी पांड्या जयपुर

२ भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या—२९३

३. ,, ,, ,, २९३

४ प्रशस्ति संग्रह ,, ४७

स्थान दिया हुआ है उसी के आधार पर इनके विहार का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। सवत् १५१८ मे सोजत नगर मे थे और वहा इन्होने सभवतः अपनी प्रथम ऐतिहासिक रचना 'गुर्वावलि' को समाप्त किया था। संवत् १५३६ में गोढिलीनगर मे विराज रहे थे यही इन्होंने यशोधर चरित्र (सस्कृत) को समाप्त किया था तथा फिर यशोधर चरित (हिन्दी) को भी इसी नगर मे निबद्ध किया था।

साहित्य–सेवा

सोमकीर्ति अपने समय के प्रमुख साहित्य सेवी थे। सस्कृत एव हिन्दी दोनो मे ही इनकी रचनायें उपलब्ध होती हैं। राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे इनकी अब तक निम्न रचनाये प्राप्त हो चुकी हैं—

सस्कृत रचनायें

(१) सप्तव्यसनकथा

(२) प्रद्युम्नचरित्र

(३) यशोधरचरित्र

राजस्थानी रचनाये

(१) गुर्वावलि

(२) यशोधर रास

(३) रिषभनाथ की धूलि

(४) मल्लिगीत

(५) आदिनाथ विनती

(६) त्रेपनक्रिया गीत

इन रचनाओ का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

(१) सप्तव्यसनकथा

यह कथा साहित्य का अच्छा ग्रन्थ है जिसमे सात व्यसनो[1] के आधार पर सात कथायें दी हुई है। ग्रन्थ के भी सात ही सर्ग हैं। आचार्य सोमकीर्ति ने इसे सवत् १५२६ मे माघ सुदी प्रतिपदा को समाप्त किया था।

---

१. जैनाचार्यो ने—जुआ खेलना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या सेवन, पर[illegible] सेवन, तथा मद्य एव मास सेवन करने को सप्त व्यसनो मे गिनाया है।

रस नयन समेते बाण युक्तेन चन्द्रे (१५२६)
गतवति सति नून विक्रमस्यैव काले
प्रतिपदि धवलाया माघमासस्य सोमे
हरिभदिनमनोज्ञे निर्मितो ग्रन्थ एष ॥७१॥

(२) प्रद्युम्नचरित्र

यह इनका दूसरा प्रबन्ध काव्य है जिसमे श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन-चरित अङ्कित है। प्रद्युम्न का जीवन जैनाचार्यो को अत्यधिक आकर्षित करता रहा है। अब तक विभिन्न भाषाओ मे लिखी हुई प्रद्युम्न के जीवन पर २५ से भी अधिक रचनाये मिलती हैं। प्रद्युम्न चरित सुन्दर काव्य है जो १६ सर्गों मे विभक्त है। इसका रचना काल स० १५३१ पौष सुदी १३ बुधवार है।

सवत्सरे सत्तिथिसञ्ज्ञके वै वर्षेऽत्र त्रिशैकयुते (१५३१) पवित्रे
विनिर्मित पौषसुदेश्च तस्या त्रयोदशीव बुधवारयुक्ता ॥१६९

(३) यशोधर चरित्र

कवि 'यशोधर' के जीवन से सभवत बहुत प्रभावित थे इसलिए इन्होने सस्कृत एव हिन्दी दोनो मे ही यशोधर के जीवन का यशोगान गाया है। यशोधर चरित्र आठ सर्गो का काव्य है। कवि ने इसे संवत् १५३६ मे गोढिली (मारवाड) नगर मे निबद्ध किया था।

नदीतटाख्यगच्छे वशे श्रीरामसेनदेवस्य
जातो गुणार्णवैकश्च श्रीमान् श्रीभीमसेनेति ॥६०॥
निर्मित तस्य शिष्येण श्री यशोधरसंज्ञकं।
श्रीसोमकीर्त्तिमुनिना विशोध्यऽधीयता बुधा: ॥६१॥
वर्षे षटत्रिंशसख्ये तिथि पर गणना युक्त सवत्सरे (१५३६) वै।
पचम्या पौषकृष्णे दिनकरदिवसे चोत्तरास्य हि चद्रे।
गोढिल्या मेदपाटे जिनवरभवने शीतलेन्द्ररम्ये।
सोमादिकीर्त्तिनेदं नृपवरचरित निर्मित शुद्धभक्त्या ॥

राजस्थानी रचनायें

(१) गुर्वावलि

यह एक ऐतिहासिक रचना है जिसमे कवि ने अपने सघ के पूर्वाचार्यों का सक्षिप्त वर्णन दिया है। यह गुर्वावलि सस्कृत एव हिन्दी दोनो भाषाओ मे लिखी हुई

है। हिन्दी मे गद्य पद्य दोनो का ही उपयोग किया गया है। भाषा वैचित्र्य की दृष्टि से रचना का अत्यधिक महत्व है। सोमकीर्त्ति ने इसे सवत् १५१८ मे समाप्त किया था इसलिए उस समय की प्रचलित हिन्दी गद्य की इस रचना से स्पष्ट झलक मिलती है। यह कृति हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास की विलुप्त कडी को जोडने वाली है।

इस पट्टावली मे काष्टासघ का अच्छा इतिहास है। कृति का प्रारम्भ काष्टा सघ के ४ गच्छो से होता है जो नन्दीतटगच्छ, माथुरगच्छ, वागडगच्छ, एव लाडवागड गच्छ के नाम से प्रसिद्ध थे। पट्टावली मे आचार्य अर्हद्वलि को नन्दीतट गच्छ का प्रथम आचार्य लिखा है। इसके पश्चात अन्य आचार्यों का सक्षिप्त इतिहास देते हुए ८७ आचार्यों का नामोल्लेख किया है। ८७ वे भट्टारक आचार्य सोमकीर्त्ति थे। इस गच्छ के आचार्य रामसेन ने नरसिंहपुरा जाति की तथा नेमिसेन ने भट्टपुरा जाति की स्थापना की थी। नेमिसेन पर पद्मावती एव सरस्वती दोनो की कृपा थी और उन्हे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध थी।

रचना का प्रथम एव अन्तिम भाग निम्न प्रकार है —

नमस्कृत्य जिनाधीशान्, सुरासुरनमस्कृतान्।
वृषभादिवीरपर्यंतान् वक्षे श्रीगुरुपद्धितं ॥१॥
नमामि शारदा देवी विबुधानन्ददायिनीम्।
जिनेन्द्रवदनाभोज, हसनी परमेश्वरीम् ॥२॥
चारित्रार्णवगभीरान् नत्वा श्रीमुनिपुगवान्।
गुरुनामावली वक्षे समासेन स्वशक्तित ॥३॥
दूहा–जिण चुवीसह पायनमी, समरवि शारदा माय।
कट्ठ सघ गुण वर्णवु, पणमवि गणहर पाइ ॥४॥

× × × × ×

काम कोह मद मोह, लोह आवतुटालि।
कट्ठ सघ मुनिराउ, गछ इणी परि अजूयालि ॥
श्रीलक्ष्मसेन पट्टोधरण पावपक छिप्पि नही।
जो नरह नरिंदे वदीइ, श्री भीमसेन मुनिवरसही ॥
सुर गिरि सिरि को चडै, पाउ करि अति बलवन्तौ।
कवि रणायर नीर तीर पुहु तउय तरतौ ॥
को आयास पमाण हत्थ करि गहि कमतौ।
कट्ठसघ सघ गुण परिलहिविह कोइ लहतौ ॥
श्री भीमसेन पट्टह धरण गछ सरोमणि कुलतिलौ।
जाणति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्त्ति मुनिवर भलौ ॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु,
अक्कवार पचमी, वहुल पख्यह बखाणु ।
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोझीत्रि पुरवरि,
सत्तासी वर-पाट तणु भवध जिणि परि ।।
जिनवर सुपास भवनि कीउ, श्री सोमकीर्त्ति वहुभावधरि ।
जयवतउ रवि तलि विस्तरु, श्री शान्तिनाथ सुपसाउ करि ।।

२ यशोधर रास .—

यह कवि की दूसरी बडी रचना है जो एक प्रकार से प्रवन्ध काव्य है । इस रचना के सम्बन्ध मे अभी तक किसी विद्वान् ने उल्लेख नही किया है। इसलिए यशोधर रास कवि की अलभ्य कृतियो में से दूसरी रचना है । सोमकीर्त्ति ने सस्कृत मे भी यशोधर चरित्र की रचना की थी जिसे उन्होंने सवत् १५३६ मे पूर्ण किया था । 'यशोधररास' सभवत इसके बाद की रचना है जो इन्होने अपने हिन्दी, राजस्थानी गुजराती भापा भाषा पाठको के लिए निवद्ध की थी ।

"आचार्य सोमकीर्ति" ने 'यशोधर रास' को गुढलीनगर के शीतलनाथ स्वामी के मन्दिर मे कार्तिक सुदी प्रतिपदा को समाप्त किया था ।

सोधीय एहज रास करीय सावुवली थापिचुए ।
कातीए उजलि पाखि पडिवा बुधचारि कीउए ।।
सीतलु ए नाथि प्रासादि गुढली नयर सोहामणु ए ।
रिधि वृद्धि ए श्रीपास पासाउ हो जो निंति श्रीसघह घरिए ।
श्री गुरुए चरण पसाउ श्री सोमकीरति सूरि भणुए ।।

'यशोधर रास' एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमे राजा यशोधर के जीवन का मुख्यत वर्णन है । सारा काव्य दश ढालो मे विभक्त है । ये ढालें एक प्रकार से सर्ग का काम देती है । कवि ने यशोधर की जीवन कथा सीधी प्रारम्भ न करके साधु युगल से कहलायी है, जिसे सुनकर राजा मारिदत्त स्वय भी हिंसक जीवन को छोड़कर जैन साधु की दीक्षा धारण कर लेता है एव चडमारि देवी का प्रमुख उपासक भी हिंसावृत्ति को छोडकर अहिंसक जीवन व्यतीत करता है । 'रास' की समूची कथा अहिंसा को प्रतिपादित करने के लिये कही गई है, किन्तु इसके अतिरिक्त रास मे अन्य वर्णन भी अच्छे मिलते हैं। 'रास' मे एक वर्णन देखिए—जिसमे बसन्त ऋतु आने पर वन मे कोयल कूज उठती है एवं भोरो की झकार सुनाई देती है—

कोइल करइ टहुकडाए, मधुकर झकार फूली ।
जातज वृक्ष तणीये वनह मझार वन देखी मुनिराउ मणि ।
इहा नही मुझ काज ब्रह्मचार यतिवर रहितु आवि लाज ॥

राजा यशोधर ने बाल्यावस्था मे कौन-कौन से ग्र थो का अध्ययन किय ।— इसका एक वर्णन पढिये—

राउ प्रति तव मइ कहवु , सुणउ नरेसर आज ।
पडित जेहु भणावीउ, कीधो लु जे मुझ काज ॥
वृत्तनि काव्य अलकार, तक्कं सिद्धान्त पमाण ।
भरहनइ छदसु पिंगल, नाटक ग्र थ पुराण ॥
आगम योतिप वैदक हय नर पसुयनु जेह ।
चैत्य चत्याला गेहनी गढ मढ करवानी तेह ॥
माहो माहि विरोधीइ, रूठा मनावीइ जेम ।
कागल पत्र समाचरी, रसोयनी पाई केम ॥
इन्द्रजल रस भेद जे जूय नइ भूझनु कर्म ।
पाप निवारण वादन नत्तन नाछि जे मर्म ॥

कवि के समय मे एक विद्वान के लिए किन २ ग्र थो का अध्ययन आवश्यक था, वह इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है ।

'यशोधर रास' की भाषा राजस्थानी है, जिसमे कही कही गुजराती के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है । वर्णन शैली की दृष्टि से रचना यद्यपि साधारण है लेकिन यह उस समय की रचना है, जब कि सूरदास, मीरा एव तुलसीदास जैसे कवि साहित्याकाश मे मडराये भी नही थे । ऐसी अवस्था मे हिन्दी भाषा के अध्ययन की दृष्टि से रचना उत्तम है एव साहित्य के इतिहास मे उल्लेखनीय है । १६ वी शताब्दि की इतनी प्राचीन रचना इतने अच्छे ढग से लिखी हुई बहुत कम मिलेगी ।

३. आदिनाथ विनती

यह एक लघु स्तवन है [1] जिसमे 'आदिनाथ' का यशोगान गाया गया है । यह स्तवन नैणवा के शास्त्र भन्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है ।

५. त्रेपनक्रियागीत

श्रावको के पालने योग्य त्रेपन क्रियाओ की इस गीत मे विशेषता वर्णित की गई है । अन्तिम पद्य देखिए—

सोमकीर्त्ति गुरू केरा वाणी, भवीक जनि मनि आणी
त्रिपन क्रिया जे नर गाई, ते स्वर्ग मुगति पथ बाइ ।।
सहीए त्रिपन किरिया पालु, पाप मिथ्यातज टालु ।।

५ ऋषभनाथ की धूल—इसमे ४ ढाल है, जिनमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के संक्षिप्त जीवन कथा पर प्रकाश डाला गया है। भाषा पूरे रूप मे जन भाषा है। प्रथम ढाल को पढिये—

प्रणमवि जिणवर पाउ, तु गड त्रिहु भवन नुए ।
समरवि सरसति देव तु सेवा सुरनर करिए ।।
गाइसु आदि जिणद आणद अति उपजिए ।।
कौशल देश मझार तु सुसार गुण आगलुए ।
नाभि नरिंद सुरिंद जिसु,सुरपुर वराए ।
मुरा देवी नाम अरवंगि सुरगि रंभा जिसी ए ।
राउ राणी सुख सेजि सुहेजाइ नितु रमिए ।
इ द्र आदेश सुवेस आवीस सुर किन्यकाए ।
केवि सिर छत्र धरति करति केवि धूपणाए ।
केवि उगट केइ अंगि सुचगि पूजा घणीए ।
केवि अमर बहू भगि आभगीय आणवहिए ।
केवि सयन अनि आसन भोजन विधि करिए ।
केवि खडग धरी हाथि सो सावइ नितु फरिए ।।
मुरा देवि भगति चिकाजि सुलाज न मनि धरिए ।
जू जूया करि सवि वेषु तु, मामन परिहरिए ।
गरभ सोवकरि भाव तु गाइ सुव जिन तणाए ।
वरसि अहूठए कोडि कर जोडि सो व्रण तणीए ।
दिव दिन नाभि निवार सो वारि वा दु ख घणीए ।
एक दिवस मुरा देवी सो स्वीइ जक्षणीए ।
पुढीय सेजि समाधि सु अखिकोड आसणीए ।

तिणि कारणि तुझ पय कमलो सरण पयवउ हेव,
राखि क्रिया करे महरीय राव कि केव ।
नव विधि जिस धरि सपजिए अहनिशि जपतां नाम ।
आदि तीर्थंकर आदिगुरू आदिनाथ आदिदेव ।
श्री सोमकीर्त्ति मुनिवर भणिए भवि-भवि तुझ पाय सेव ।।

—आदिनाथ वीनति

उक्ति कृति नैणवा (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में से सग्रहीत है। गुटका ब्र. यशोधर द्वारा लिखित है। ब्र. यशोधर भ. सोमकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे।

मूल्याकन—

'सोमकीर्त्ति' ने सस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के माध्यम से जगत् को अहिंसा का सन्देश दिया। यही कारण है कि इन्होंने यशोधर के जीवन को दोनो भाषाओ मे निबद्ध किया। भक्तिकाव्य के लेखन में इनकी विशेष रुचि थी। इसीलिए इन्होंने 'ऋषभनाथ की धूल' एव 'ग्रादिनाथ-विनती' की रचना की थी। इनके अभी और भी पद मिलने चाहिए। सोमकीर्त्ति की इतिहास-कृतियो मे भी रुचि थी। गुर्वावलि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह रचना जैनाचार्यों एव भट्टारको की विलुप्त कडी को जोडने वाली है।

कवि ने अपनी कृतियो मे 'राजस्थानी भाषा' का प्रयोग किया है। ब्रह्म जिनदास के समान उसकी रचनाओ मे गुजराती भाषा के शब्दो का इतना अधिक प्रयोग नही हो सका है। यही नहीं इनकी भाषा मे सरसता एवं लचकीलापन है। छन्दो के दृष्टि से भी वह राजस्थानी के अधिक निकट है।

कवि की दृष्टि से वही राज्य एव उसके ग्राम, नगर श्रेष्ठ माने जाने चाहिए, जिनमे जीव वध नही होता है, सत्याचरण किया जाता हो तथा नारी समाज का जहा अत्यधिक सम्मान हो। यही नही, जहा के लोग अपने परिग्रह-सचय को सीमा भी प्रतिदिन निर्धारित करते हो और जहा रात्रि को भोजन करना भी वर्जित हो?

वास्तव मे इन सभी सिद्धान्तो को कवि ने अपने जीवन मे उतार कर फिर उनका व्यवहार जनता द्वारा सम्पादित कराया जाना चाहा था।

'सोमकीर्त्ति' ने अपने दोनो काव्यो मे 'जैनदर्शन' के प्रमुख सिद्धान्त 'अहिंसा' एव 'अनेकान्तवाद' का भी अच्छा प्रतिपादन किया है।

नारी समाज के प्रति कवि के अच्छे विचार नहीं थे। 'यशोधर रास' मे स्वय महारानी ने जिस प्रकार का आचरण किया और अपने रूपवान पति को धोखा देकर एक कोढी के पास जाना उचित समझा तो इस घटना से कवि को नारी-समाज को कलकित करने का अवसर मिल गया और उसने अपने रास मे निम्न शब्दो मे उसकी भर्त्सना की—

---

१. धर्म अहिंसा मनि धरी ए मा, बोलि म कूडिय साखि।
चोरीय बात तु मा करे से मा, परनारि सहि टाली।
परिग्गह संख्या नितु करे ए, गुरुवाणि सदापालि॥

नारी विसहर वेल, नर वचेवाए घडीए।
नारीय नामज मोहल, नारी नरक मतो तडीए।
कुटिल पणानी खाणि, नारी नीचह गामिनीए।
सांचु न बोलि वाणि, वाधिण सापिण अगनि शिखाए ॥

एक स्थान पर 'आचार्य सोमकीर्त्ति' ने आत्महत्या को बडा भारी पाप बताया और कहा—"आतम हित्या पाप शिरछेदता लागसि"

इस प्रकार 'आ० सोमकीर्त्ति' अपने समय के हिन्दी एव सस्कृत के प्रतिनिधि कवि थे इसलिए उनकी रचनाओ को हिन्दी साहित्य मे उचित सम्मान मिलना चाहिए।

भट्टारक ज्ञानभूषण

अब तक की खोज के अनुसार ज्ञानभूषण नाम के चार भट्टारक हुए हैं। इसमे सर्व प्रथम भ. सकलकीर्त्ति की परम्परा मे भट्टारक भुवनकीर्त्ति के शिष्य थे जिनका विस्तृत वर्णन यहां दिया जा रहा है। दूसरे ज्ञानभूषण भ. वीर चन्द्र के शिष्य थे जिनका सम्बन्ध सूरत शाखा के भ. देवेन्द्रकीर्त्ति की परम्परा मे था। ये संवत् १६०० से १६१६ तक भट्टारक रहे। तीसरे ज्ञानभूषण का सम्बन्ध अटेर शाखा से रहा था और इनका समय १७ वी शताब्दि का माना जाता है। और चौथे ज्ञानभूषण नागौर जाति के भट्टारक रत्नकीर्त्ति के शिष्य थे। इनका समय १८ वी शताब्दि का अन्तिम चरण था।

प्रस्तुत भ. ज्ञानभूषण पहिले भ. विमलेन्द्र कीर्त्ति के शिष्य थे और बाद मे इन्होने भ. भुवनकीर्त्ति को भी अपना गुरु स्वीकार कर लिया। ज्ञानभूषण एव ज्ञानकीर्त्ति ये दोनो ही सगे भाई एव गुरु भाई थे और ये पूर्वी गोलालारे जाति के श्रावक थे। लेकिन सवत् १५३५ मे सागवाडा एव नोगाम मे एक साथ तथा एक ही दिन आयोजित होने के कारण दो भट्टारक परम्पराए स्थापित हो गयी। सागवाडा मे होने वाली प्रतिष्ठा के सचालक थे भ. ज्ञानभूषण और नोगाम की प्रतिष्ठा महोत्सव का सचालन ज्ञानकीर्त्ति ने किया। यहीं से भ. ज्ञानभूषण बडसाजनो के भट्टारक माने जाने लगे और भ. ज्ञानकीर्त्ति लोहडसाजनो के गुरु कहलाने लगे।[1]

---

1. देखिये, भट्टारक पट्टावलि-शास्त्र भण्डार भ. यश. कीर्त्ति दि. जैन सरस्वती भवन ऋषभदेव (राज)

एक नन्दिसघ की पट्टावली से ज्ञात होता है कि ये गुजरात के रहने वाले थे। गुजरात मे ही उन्होने सागार धर्म धारण किया, अहीर (आभीर) देश मे ग्यारह प्रतिमाए धारण की और वाग्वर या वागड देश मे दुर्धर महाव्रत ग्रहण किए। तलव देश के यतियो मे इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। तैलव देश के उत्तम पुरुषो ने उनके चरणो की वन्दना की, द्रविड देश के विद्वानो ने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्र मे उन्हे बहुत यश मिला, सौराष्ट्र के धनी श्रावको ने उनके लिए महामहोत्सव किया, रायदेश (ईडर के आस पास का प्रान्त) के निवासियो ने उनके वचनो को अतिशय प्रमाण माना। मेरूपाट (मेवाड) के मूर्ख लोगो को उन्होने प्रतिबोधित किया, मालवे के भव्य जनो के हृदय-कमल को विकसित किया, मेवात मे उनके अध्यात्म रहस्यपूर्ण व्याख्यान से विविध विद्वान् श्रावक प्रसन्न हुए। कुरुजागल के लोगो का अज्ञान रोग दूर किया, वैराठ (जयपुर के आस पास) के लोगो को उभय मार्ग (सागार अनगार) दिखलाये, नमियाड (नीमाड) मे जैन धर्म की प्रभावना की। भैरव राजा ने उनकी भक्ति की, इन्द्रराज ने चरण पूजे, राजाधिराज देवराज ने चरणो की आराधना की। जिन धर्म के आराधक मुदलियार, रामनाथराय, वोम्मरसराय, कलपराय, पान्डुराय आदि राजाओ ने पूजा की और उन्होने अनेक तीर्थो की यात्रा की। व्याकरण-छन्द-अलकार-साहित्य-तर्क-आगम-अध्यात्म आदि शास्त्र रूपी कमलो पर विहार करने के लिए वे राज हस थे और शुद्ध ध्यानामृत-पान की उन्हे लालसा थी [1]। उक्त विवरण कुछ अतिशयोक्ति-पूर्ण भी हो सकता है लेकिन इतना तो अवश्य है कि ज्ञानभूषण अपने समय के प्रसिद्ध सन्त थे और उन्होने अपने त्याग एव विद्वत्ता से सभी को मुग्ध कर रखा था।

ज्ञानभूषण भ० भुवनकीर्त्ति के पश्चात् सागवाडा मे भट्टारक गादी पर बैठे। अब तक सबसे प्राचीन उल्लेख सम्वत् १५३१ वैशाख बुदी २ का मिलता है जब कि इन्होने डूगरपुर मे आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव का सचालन किया था। उस समय डूगरपुर पर रावल सोमदास एव रानी गुराई का शासन था [2]। श्री जोहारपुरकर ने ज्ञानभूषण का भट्टारक काल सवत १५३४ से माना है [3] लेकिन यह काल

---

१ देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास
पृष्ठ सख्या ३८१-३८२

२ सवत् १५३१ वर्षे वैसाख वुदी ५ बुधे श्री मूलसघे भ० श्री सकलकीर्त्ति-स्तत्पट्टे भ. भुवनकीर्त्तिदेवास्तत्पट्टे भ श्री ज्ञानभूषणदेवस्तदुपदेशात् मेघा भार्या टीगू प्रणमति श्री गिरिपुरे रावल श्री सोमदास राज्ञी गुराई सुराज्ये।

३. देखिये-भट्टारक सम्प्रदाय-पृष्ठ सख्या-१५८

किस आधार पर निर्धारित किया है इसका कोई उल्लेख नही किया। श्री नाथूराम प्रेमी ने भी 'जैन साहित्य और इतिहास मे' इनके काल के सबन्ध से कोई निश्चित मत नही लिखा। केवल इतना ही लिखकर छोड दिया कि 'विक्रम सवत १५३४-३५ और १५३६ के तीन प्रतिमा लेख और भी है जिनसे मालूम होता है कि उक्त सवतो मे ज्ञानभूषण भट्टारक पद पर थे। डा० प्रेमसागर ने अपनी "हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि"[1] मे इनका भट्टारक काल सवत १५३२-५७ तक समय स्वीकार किया है। लेकिन डूगरपुर वाले लेख से यह स्पष्ट है कि ज्ञान-भूषण सवत् १५३१ अथवा इससे पहिले भट्टारक गादी पर बैठ गये थे। इस पद पर वे सवत् १५५७-५८ तक रहे। सवत १५६० मे उन्होने तत्वज्ञान तरगिणी की रचना समाप्त की थी इसकी पुष्पिका मे इन्होने अपने नाम के पूर्व 'मुमुक्षु' शब्द जोडा है जो अन्य रचनाओ मे नही मिलता। इससे ज्ञात होता है कि इसी वर्ष अथवा इससे पूर्व ही इन्होने भट्टारक पद छोड दिया था।

सवत् १५५७ तक ये निश्चित रूप से भट्टारक रहे। इसके पश्चात इन्होने अपने शिष्य विजयकीर्त्ति को भट्टारक पद देकर स्वय साहित्य साधक एव मुमुक्षु बन गये। वास्तव मे यह भी उनके जीवन मे उत्कृष्ट त्याग था क्योकि उस युग मे भट्टा-रको की प्रतिष्ठा, मान सम्मान बडे ही उच्चस्तर पर थी। भट्टारको के कितने ही शिष्य एव शिष्याए होती थी, श्रावक लोग उनके विहार के समय पलक पावडे बिछाये रहते थे तथा सरकार की ओर से भी उन्हे उचित सम्मान मिलता था। ऐसे उच्च पद को छोडकर केवल आत्म चितन एव साहित्य साधना मे लग जाना ज्ञान-भूषण जैसे सन्त से ही हो सकता था।

ज्ञानभूषण प्रतिभापूर्ण साधक थे। उन्होने आत्म साधना के अतिरिक्त ज्ञाना-राधना, साहित्य साधना, सास्कृतिक उत्थान एव नैतिक धर्म के प्रचार मे अपना सपूर्ण जीवन खपा दिया। पहिले उन्होने स्वय ने अध्ययन किया और शास्त्रो के गम्भीर अर्थ को समझा। तत्वज्ञान की गहराइयो तक पहुँचने के लिए व्याकरण, न्याय सिद्धान्त के बडे २ ग्रंथो का स्वाध्याय किया और फिर साहित्य-सृजन प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम उन्होने स्तवन एव पूजाष्टक लिखे फिर प्राकृत ग्रथो की टीकाए लिखी। रास एव फागु साहित्य की रचना कर साहित्य को नवीन मोड दिया और अन्त मे अपने सपूर्ण ज्ञान का निचोड तत्वज्ञान तरगिणी मे डाल दिया।

साहित्य सृजन के अतिरिक्त सैकडो ग्रथो की प्रतिलिपिया करवा कर साहित्य के भण्डारो को भरा तथा अपने शिष्य प्रशिष्यो को उनके अध्ययन के लिए प्रोत्साहित

---

१ देखिये हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि-पृष्ठ संख्या ७२

किया तथा समाज को विजयकीर्त्ति एव शुभचन्द्र जैसे मेधावी विद्वान दिए। बौद्धिक एव मानसिक उत्थान के अतिरिक्त इन्होने सास्कृतिक पुनर्जागरण मे भी पूर्ण योग दिया। आज भी राजस्थान एव गुजरात प्रदेश के सैकडो स्थानो के मदिरो में उनके द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्तिया विराजमान है। सह अस्तित्व की नीति को स्वय मे एव जन मानस मे उतारने मे उन्होने अपूर्व सफलता प्राप्त की थी और सारे भारत को अपने विहार मे पवित्र किया। देशवासियो को उन्होने अपने उपदेशामृत का पान कराया एव उन्हे बुराइयो से बचने के लिए प्रेरणा दी। ज्ञानभूषण का व्यक्तित्व बडा आकर्षक था। श्रावको एव जनता को वश मे कर लेना उनके लिए अत्यधिक सरल था। जब वे पद यात्रा पर निकलते तो मार्ग के दोनो ओर जनता कतार बाधे खडी रहती और उनके श्रीमुख से एक दो शब्द सुनने को लालायित रहती। ज्ञानभूषण ने श्रावक धर्म का नैतिक धर्म के नाम से उपदेश दिया। अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह के नाम पर एक नया सन्देश दिया। इन्हे जीवन मे उतारने के लिए वे घर घर जाकर उपदेश देते और इस प्रकार वे लोगो की श्रद्धा एव भक्ति के प्रमुख सन्त बन गए। श्रावक के दैनिक षट् कर्म को पालन करने के लिए वे अधिक जोर देते।

प्रतिष्ठाकार्य सचालन

भारतीय एव विशेषत. जैन सस्कृति एव धर्म की सुरक्षा के लिये उन्होने प्राचीन मदिरो का जीर्णोद्धार, नवीन-मदिर निर्माण, पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठायें, सास्कृतिक समारोह, उत्सव एवं मेलो आदि के आयोजनो को प्रोत्साहित किया। ऐसे आयोजनो मे वे स्वय तो भाग लेते ही थे अपने शिष्यो को भी भेजते एव अपने भक्तो से भी उनमे भाग लेने के लिये उपदेश देते।

भट्टारक बनते ही इन्होने सर्व प्रथम सवत् १५३१ मे डूंगरपुर मे २३" × १८" अवगाहना वाले सहस्त्रकूट चैत्यालय की प्रतिष्ठा का सञ्चालन किया, इनमे से ६ चैत्यालय तो डूंगरपुर के ऊडा मन्दिर मे ही विराजमान हैं। इस समय डूंगरपुर पर रावल सोमदास का राज्य था। इन्ही के द्वारा सवत १५३० फाल्गुण सुदी १० मे आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव के समय की प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ कितने ही स्थानो पर मिलती हैं[1]।

१ संवत् १५३४ वर्षे फाल्गुण सुदी १० गुरौ श्री मूलसंघे भ. सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री भुवनकीर्त्तिस्त० भ. ज्ञानभूषणगुरूपदेशात् हूंबड ज्ञातीय साह वाइदो भार्या छिवाई सुत सा. डूंगा भगिनी वीरदास भगनी प्रनाडी भार्त्रेय सान्ता एते नित्यं प्रणमति।

संवत् १५३५ मे इन्होने दो प्रतिष्ठाओ मे भाग लिया जिसमे एक लेख जयपुर[1] के छाबडो के मदिर मे तथा दूसरा लेख उदयपुर[2] के मदिर मे मिलता है। सवत् १५४० मे हूबड जातीय श्रावक लाखा एव उसके परिवार ने इन्ही के उपदेश से आदिनाथ स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी[3]। इसके एक वर्ष पश्चात् ही नागदा जाति के श्रावक श्राविकाओ ने एक नवीन प्रतिष्ठा का आयोजन किया जिसमे भ ज्ञानभूषण प्रमुख अतिथि थे। इस समय की प्रतिष्ठापित चन्द्रप्रभ स्वामी की एक प्रतिमा डूगरपुर के एक प्राचीन मन्दिर मे विराजमान[4] है। इसके पश्चात् तो प्रतिष्ठा महोत्सवो की धूम सी मच गई। सवत १५४३, ४४ एव सवत् १५४५ में विविध प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न हुए। १५५२ मे डूगरपुर मे एक वृहद् आयोजन हुआ जिसमे विविध सास्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुये। इसी समय की प्रतिष्ठापित नेमिनाथ

---

१. संवत् १५३५ वर्षे माघ सुदी ५ गुरौ श्री मूलसघे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति त० भ० श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् गोत्रे सा माला भा० त्रापु पुत्र संघपति स० गोइन्द भार्या राजलदे भ्रातृ स० भोजा भा० लीलन सुत जीवा जोगा जिणदास सांझा सुरताण एतैः अष्टप्रातिहार्यचतुर्विशतिका प्रणमंति।

२. सवत् १५३५ श्री मूलसंघे भ० श्री भुवनकीर्त्ति त० भ० श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् श्रेष्ठि हासा भार्या हासले सुत समधरा भार्यापामी सुत नाथा भार्या सारू भ्राता गोइआ भार्या पाचू भ्रा० महिराज भ्रा० जेसा रूपा प्रणमंति।

३. संवत् १५४० वर्षे वैशाख सुदी ११ गुरौ श्री मूलसघे भ० श्री सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ० भुवनकीर्त्ति तत्पट्टे भ० ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् हूंबड ज्ञातीय सा० लाखा भार्या माल्हणदे सुत हीरा भार्या हरखू भ्रा लाला रामति तत् पुत्र द्वौ० धन्ना, वन्ना राजा विरुषा साहा जेसा वेणा आणद वाछा राहूया अभय कुमार एते श्री आदिनाथ प्रणमंति।

४. सवत् १५४१ वर्षे वैसाख सुदी ३ सोमे श्री मूलसंघे भ० ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् नागदा ज्ञातीय पंडवाल गोत्रे सा वाछा भार्या जसभी सुत देपाल भार्या गुरी सुत सिहिसा भार्या चमकू एते चन्द्रप्रभं नित्य प्रणमंति।

की प्रतिमा डूगरपुर के ऊडे मन्दिर मे विराजमान[1] है। यह सभवत आपके कर कमलो से सम्पादित होने वाला अन्तिम समारोह था। इसके पश्चात् सवत् १५५७ तक इन्होने कितने आयोजनो मे भाग लिया इसका अभी कोई उल्लेख नहीं मिल सका है। सवत् १५६०[2] व १५६१[3] मे सम्पन्न प्रतिष्ठाओ के अवश्य उल्लेख मिले हैं। लेकिन वे दोनो ही इनके पट्ट शिष्य भ० विजयकीर्त्ति द्वारा सम्पन्न हुए थे। उक्त दोनो ही लेख डूगरपुर के मन्दिर मे उपलब्ध होते हैं।

सहित्य साधना

ज्ञानभूषण भट्टारक बनने से पूर्व और इस पद को छोडने के पश्चात् भी साहित्य-साधना मे लगे रहे। वे जबरदस्त सहित्य-सेवी थे। प्राकृत सस्कृत हिन्दी गुजराती एव राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होने सस्कृत एव हिन्दी मे मौलिक कृतिया निबद्ध की और प्राकृत ग्र थो की सस्कृत टीकाऐं लिखी। यद्यपि सख्या की दृष्टि से इनकी कृतिया अधिक नही है फिर भी जो कुछ हैं वे ही इनकी विद्वत्ता एव पाडित्य को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त हैं। श्री नाथूराम जी प्र`मी ने इनके "तत्वज्ञानतरगिणी, सिद्धान्तसार भाष्य, परमार्थोपदेश, नेमिनिर्वाण की पञ्जिका टीका, पञ्चास्तिकाय, दशलक्षणोद्यापन, आदीश्वर फाग, भक्तामरोद्यापन, सरस्वतीपूजा" ग्रन्थो का उल्लेख किया है[4]। पडित परमानन्द जी ने उक्त

---

१ सवत् १५५२ वर्षे ज`ठ वदी ७ शुक्रे श्री मूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ. श्री सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति तत्पट्टे भ श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् हूंबड ज्ञातीय डूडूकरण भार्या साणी सुत नानां भार्या हीरु सुत सांगा भार्या पहुती नेमिनाथ एतैं नित्य प्रणमति।

२. सवत् १५६० वर्षे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे भ. श्री विजयकीर्त्तिगुरूपदेशात् बाई श्री प्रोढ्ढंन श्रीबाई श्रीविनय श्रीदिमान पक्तिव्रत उद्यापने श्री चन्द्रप्रभ ।

३. सवत १५६१ वर्षे चैत्र वदी ८ शुक्रे श्री मूलसघे सरस्वती गच्छे भट्टारक श्री सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ श्री भुवनकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे भ विजयकीर्त्ति गुरूपदेशात् हूवड ज्ञातोय श्र`ष्ठि लखमण भार्या मरगदी सुत श्र`० समधर भार्या मचकू सुत श्र`० गगा भार्या वल्लि सुत हरखा होरा झठा नित्य श्री आदीश्वर प्रणमति बाई मचकू पिता दोसी रामा भार्या पूरी पुत्री रगी एते प्रणमति।

४. देखिये पं. नाथूरामजी प्र`मी कृत जैन साहित्य और इतिहास—पृष्ठ – ३८२

रचनाओ के अतिरिक्त सरस्वती स्तवन, आत्म सबोधन आदि का और उल्लेख किया है[1]। इधर राजस्थान के जैन ग्रन्थ भडारो की जब से लेखक ने खोज एव छानबीन की है तब से उक्त रचनाओ के अतिरिक्त इनके और भी ग्रन्थो का पता लगा है। अब तक इनकी जितनी रचनाओ का पता लग पाया है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

सस्कृत ग्रंथ

१. आत्मसबोधन काव्य
२ ऋषिमडल पूजा[2]
३. तत्वज्ञान तरगिनी
४ पूजाष्टक टीका
५. पञ्चकल्याणकोद्यापन पूजा[3]
६. भक्तामर पूजा[4]
७ श्रुत पूजा[5]
८. सरस्वती पूजा[6]
९. सरस्वती स्तुति[7]
१०. शास्त्र मडल पूजा[8]

हिन्दी रचनायें

१. आदीश्वर फाग
२ जलगालण रास
३. पोसह रास
४. षट्कर्म रास
५ नागद्रा रास

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त अभी इनकी और भी कृतियाँ उपलब्ध होने की सभावना है। अब यहा आत्मसबोधन काव्य, तत्वज्ञानतरगिणी, पूजाष्टक टीका, आदीश्वर फाग, जलगालन रास, पोसह रास एव षट्कर्म रास का सक्षिप्त वर्णन उपस्थित किया जा रहा है।

आत्मसंबोधन काव्य

अपभ्रंश भाषा मे इसी नाम की एक कृति उपलब्ध हुई है जिसके कर्त्ता १५ वी शताब्दि के महापडित रइधू थे। प्रस्तुत आत्मसबोधन काव्य भी उसी काव्य

---

१. देखिये पं. परमानन्द जी का "जैन-ग्रंथ प्रशस्ति-संग्रह"

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भडारो की ग्रथ सूची भाग चतुर्थ पृष्ठ संख्या–४६३

३. वही पृष्ठ संख्या ६५०
४. वही पृष्ठ संख्या ५२३
५ वही पृष्ठ संख्या ५३७
६. वही पृष्ठ संख्या ५१५
७. वही पृष्ठ सख्या ६५७

की रूपरेखा पर लिखा हुआ जान पडता है। इसकी एक प्रति जयपुर के बाबा दुलीचन्द्र के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है लेकिन प्रति अपूर्ण है और उसमे प्रारम्भ का प्रथम पृष्ठ नही है। यह एक आध्यात्मिक ग्र थ है और कवि की प्रारम्भिक रचनाओ मे से जान पडता है।

२ तत्वज्ञानतरगिणी

इसे ज्ञानभूषण की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती हैं। इसमे शुद्ध आत्म तत्त्व की प्राप्ति के उपाय बतलाये गये हैं। रचना अधिक बडी नही है किन्तु कवि ने उसे १८ अध्यायो मे विभाजित किया है। इसकी रचना स० १५६० मे हुई थी जब वे भट्टारक पद छोड चुके थे और आत्मतत्व की प्राप्ति के लिए मुमुक्षु बन चुके थे। रचना काव्यत्वपूर्ण एव विद्वत्ता को लिए हुये है।

भेदज्ञानं विना न शुद्धचिद्रूप ध्यानसभव
भवेन्नैव यथा पुत्र सभूति जनक विना ॥१०।३॥

× × × ×

न द्रव्येण न कालेन न क्षेत्रेण प्रयोजन।
केनचिन्नैव भावेन न लब्धे शुद्धचिदात्मके ॥७।४॥
परमात्मा पर ब्रह्म चिदात्मा सर्वद्रक शिव।
नामानीमान्यहो शुद्ध चिद्रू पस्यैव केवलं ॥८।४॥

× × × ×

ये नरा निरहकारह वितन्वति प्रतिक्षण।
अर्हं ततश्च चिद्रूप प्राप्नुवन्ति न सशय ॥४।१०॥

३. पूजाष्टक टीका—

इसकी एक हस्तलिखित प्रति सभवनाथ दि० जैन मंदिर उदयपुर मे सग्रहीत है। इसमे स्वय ज्ञानभूषण द्वारा विरचित आठ पूजाओ की स्वोपज्ञ टीका हैं। कृति मे १० अधिकार है और उसकी अन्तिम पुष्पिका निम्न प्रकार है—

इति भट्टारक श्री भुवनकीर्त्तिशिष्यमुनिज्ञानभूषणविरचितायां स्वकृताष्टकदशकटीकायां विद्वज्जनवल्लभासज्ञायां नन्दीश्वरद्वीपजिनालयार्चनवर्णनीय नामा दशमोऽधिकार ॥

यह ग्रन्थ ज्ञानभूषण ने जब मुनि थे तब निबद्ध किया गया था। इसका रचना काल सवत् १५२८ एव रचना स्थान डूंगरपुर का आदिनाथ चैत्यालय है।[1]

१. श्रीमद् विक्रमभूपराज्यसमयातीते वसुद्वींद्रियक्षोणी—
सम्मितहायके गिरपुरे नाभेयचैत्यालये।
अस्ति श्री भुवनादिकीर्त्तिमुनयस्तस्यासि ससेविना,
स्वोक्ते ज्ञानविभूषणेन मुनिना टीका शुभेयं कृता ॥१॥

४. आदिश्वर फाग

'आदीश्वर फाग' इनकी हिन्दी रचनाओ मे प्रसिद्ध रचना है। फागु सज्ञक काव्यो मे इस कृति का विशिष्ट स्थान है। जैन कवियो ने काव्य के विभिन्न रूपो मे सस्कृत एवं हिन्दी मे साहित्य लिखा है उससे उनके काव्य रसिकता की स्पष्ट झलक मिलती है। जैन कवि पक्के मनो वैज्ञानिक थे। पाठको की रुचि का वे पूरा ध्यान रखते थे इसलिये कभी फागु, कभी रास, कभी वेलि एव कभी चरित सज्ञक रचनाओ से पाठको के ज्ञान की अभिवृद्धि करते रहते थे।

'आदीश्वर फाग' इनकी अच्छी रचना है, जो दो भाषा मे निबद्ध है इसमे भगवान आदिनाथ के जीवन का सक्षिप्त वर्णन है जो पहले सस्कृत एव फिर हिन्दी मे वर्णित है। कृति मे दोनो भाषाओ के ५०१ पद्य है जिनमे २६२ हिन्दी के तथा शेष २३९ पद्य सस्कृत के है। रचना की श्लोक स० ५९१ है।

कवि ने रचना के प्रारम्भ मे विषय का वर्णन निम्न छन्द मे किया है.—

आहे प्रणमयि भगवति सरसति जगति विबोधन माय।
गाइस्यूं आदि जिणद, सुरिंदवि वदित पाय ।।२।।

× × × ×

आहे तस घरि मरुदेवी रमणीय, रमणीय गुण गणखाणि।
रूपिर नही कोइ तोलइ बोलइ मधुरीय वाणि ।।१०।।

माता मरुदेवी के गर्भ मे आदिनाथ स्वामी के आते ही देवियो द्वारा माता की सेवा की जाने लगी। नाच-गान होने लगे एव उन्हे प्रतिपल प्रसन्न रखा जाने लगा।

आहे एक कटी तटि बाधइ हसतीय रसना लेवि।
नेउर कांबीय लांबीय एक पहिरावइ देवि ।।१७।।

आहे अंगुलीइ पगि वीछीया वीछीयनु आकार।
पहिरावइ अंगुथला, अंगूठइ सणगार ।।१८।।

आहे कमल तणी जिसी पाखडी आखडी आजइ एक।
सीदूर घालइ सइथइ गूथइ वेणी एक ।।१९।।

आहे देवीय तेवड तेवडी केवडी ना लेई फूल।
प्रगट मुकट रचना करइ तेह तणू नहीं भूल ।।२०।।

आदिनाथ का जन्म हुआ। देवो एव इन्द्रो ने मिलकर खूव उत्सव मनाये। पाडुक शिला पर ले जाकर अभिषेक किया और बालक का नाम ऋषभदेव रखा गया—

आहे अभिषव पूरउ सीधउ कीधउ अ गि विलेय।
आगीय अ गि कारवाउ कीधउ वहू आक्षेप ॥८४॥
आहे आणीय वहुत विभूषण दूषण रहित अभग।
पहिराव्या ते मनि रली वली वली जोअइ अ ग ॥८५॥
आहे नाम वषभ जिन दीधउ कीधउ नाटक चग।
रूप निरुपम देखीय हरषिइ भरीया अ ग ॥८६॥

'बालक आदिनाथ' दिन २ बडे होने लगे। उनको खिलाने, पिलाने, स्नान कराने आदि के लिये अलग अलग सेविकाए थी। देविया अलग थी। इसी 'बाल-लीला' एक वर्णन देखिए—

आहे देवकुमार रमाडइ मातज माउर क्षीर।
एक धरइ मुख आगलि आणीय निरमल नीर ॥९३॥
आहे एक हसावइ ल्यावइ कइडि चडावीय बाल।
नीति नहीय नहीय सलेखन नइ मुखि लाल ॥९४॥
आहे आगीय अ गि अनोपम उपम रहित शरीर।
टोपीय उपीय मस्तकि बालक छइ पणवीर ॥९५॥
आहे कानेय कु डल झलकइ खलकइ नेउर पाइ।
जिम जिम निरखइ हरखइ हियडइ तिय तिय माइ ॥९६॥

आदिनाथ ने बडे ठाट-बाट मे राज्य किया। उनके राज्य मे सारी प्रजा आनन्द से रहती थी। वे इन्द्र के समान राज्य-कार्य करते थे।

आहे नाभि नरेश सुरेश, मिलीनइ दीधउ राज।
सर्व प्रजा व्रज हरखीउ, हरखीउ देव समाज ॥१५४॥

एक दिन नीलजना नामकी देव नर्तकी उनके सामने नृत्य कर रही थी कि वह देखते २ मर गयी। आदिनाथ को यह देख कर जगत से उदासीनता हो गयी।

आहे धिग २ इह ससार, बेकार अपार असार।
नही सम मार समान कुमार रमा परिवार ॥१६४॥
आहे घर पुर नगर नही निज रज सम राज अकाज।
हय गय पयदल चल मल सरिखउ नारि समाज ॥१६५॥

आहे आयु कमल दल सम चचल चपल शरीर ।
यौवन धन इव अथिर करम जिय करतल नीर ॥१६६॥
आहे भोग वियोग समन्वित रोग तणू घर अंग ।
मोह महा मुनि निंदित निंदित नारीय सग ॥१६७॥
आहे छेदन भेदन वेदन दीठीय नरग मझारि ।
भामिनी भोग तणइ फलि तउ किम वाछइ नारि ॥

इस प्रकार 'आदिनाथ फाग' हिन्दी की एक श्रेष्ठ रचना है। इसकी भाषा को हम 'गुजराती प्रभावित राजस्थानी का नाम दे सकते हैं।

रचनाकाल:—यद्यपि 'ज्ञान भूषण' ने इस रचना का कोई समय नही दिया है, फिर भी यह सवत् १५६० पूर्व की रचना है—इसमे कोई सन्देह नही है। क्योकि तत्वज्ञानतरगिणी (सवत् १५६०) भ० ज्ञानभूषण की अन्तिम रचना गिनी जाती है।[1]

उपलब्धि स्थान:—'ज्ञान भूषण' की यह रचना लोकप्रिय रचना है। इसलिए राजस्थान के कितने ही शास्त्र-भण्डारो मे इसकी प्रतिया मिलती हैं। आमेर शास्त्र भण्डार मे इसकी एक प्रति सुरक्षित है।

५ पोसह रास

यह यद्यपि व्रत-विधान के महात्म्य पर आधारित रास है, लेकिन भाषा एव शैली की दृष्टि से इसमे रासक काव्य जैसी सरसता एव मधुरता आ गयी है। 'पोषह रास' के कर्त्ता के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। प परमानन्द जी एव डॉ प्रेमसागर जी के मतानुसार यह कृति भ वीरचन्द के शिष्य भ. ज्ञानभूषण की होनी चाहिए, जब कि स्वय कृति मे इस सम्बन्ध मे कोई उल्लेख नही मिलता। कवि ने कृति के अन्त मे अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है.—

वारि रमणिय मुगतिज सम अनुप सुख अनुभवइ ।
भव म कारि पुनरपि न आवइ टह पू फलजस गमइ ।
ते नर पोसह कान भावइ एणि परि पोसह धरइज नर नारि सुजण ।
ज्ञान भूषण गुरु इम भणइ, ते नर करइ वरवाण ॥१११॥

---

1. डॉ० प्रेमसागर जी ने इस कृति का जो सवत् १५५१ रचनाकाल वतलाया है वह सभवत सही नहीं है। जिस पद्य को उन्होंने रचनाकाल वाला पद्य माना है, वह तो उसकी श्लोक संख्या वाला पद्य है
हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि : पृष्ठ सं० ७५

वैसे इस रास की 'भाषा' अपभ्र श प्रभावित भाषा है, किन्तु उसमे लावण्य की भी कमी नही है।

संसार तणउ विनासु किम दूसइ राम चितवइ।
ओडयु मोहनुपास वलीयवती तेह नित चीइ ॥९८॥

इस रास की राजस्थान के जैन शास्त्र भडारों मे कितनी ही प्रतिया मिलती है।

६. षट्कर्म रास :

यह कर्म-सिद्धात पर आधारित लघु रासक काव्य है जिसमे, इस प्राणी को प्रतिदिन देव पूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, सयम, तप एव दान—इन षट्कर्मों के पालन करने का सुन्दर उपदेश दिया गया है। इसमे ५३ छन्द है और अन्तिम छन्द में कवि ने अपने नाम का किस प्रकार परि-उल्लेख किया है, उसे देखिये—

सुण उ श्रावक सुणउ श्रावक एह षट्कर्म्म ।
घरि रहइता जे आचरइ, ते नर पर भवि स्वर्ग पामइ ।
नरपति पद पामी करीय, नर सघला नइ पाड नामइ ।
समकित धरता जु घरइ, श्रावक ए आचार ।
ज्ञानभूषण गुरु इम भणाइ, ते पामइ भवपार ॥

७. जलगालन रास

यह एक लघु रास है, जिसमे जल छानने की विधि का वर्णन किया गया है। इसकी शैली भी षट्कर्म रास एव पोसह रास जैसी है। इसमे ३३ पद्य हैं। कवि ने अपने नाम का अन्तिम पद्य मे उल्लेख किया है —

गलउ पाणीय गलउ पाणीय य तन मन रगि,
हृदय सदय कोमल धरु धरम तणू एह मूल जाणउ ।
कुह्यू नीलू गध करइ ते पाणी तुप्ति धरिम आणउ ।
पाणीय आणीय यतन करी, जे गलसिइ नर-नारि ।
श्री ज्ञान भूषण गुरु इम भणइ, ते तरसिइ ससारि ॥३३॥

'भ० ज्ञानभूषण' की मृत्यु सवत् १५६० के बाद किसी समय हुई होगी। लेकिन निश्चित तिथि की अभी तक खोज नही हो सकी है।

ग्रंथ लेखन कार्य :

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त अक्षयनिधि पूजा आदि और भी कृतिया हैं।

रचनायें निबद्ध करने के अतिरिक्त ज्ञानभूषण ने ग्रन्थो की प्रतिलिपिया करवा कर शास्त्र भण्डारो में सग्रहीत कराने मे भी खूब रस लिया है। आज भी राजस्थान के शास्त्र भण्डरो मे इनके शिष्य प्रशिष्यो द्वारा लिखित कितनी ही प्रतिया उपलब्ध होती हैं। जिनका कुछ उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है; —

१. सवत् १५४० आसोज बुदी १-२ शनिवार को ज्ञानभूषण के उपदेश से धनपाल कृत भविष्यदत्त चरित्र की प्रतिलिपि मुनि श्री रत्नकीर्त्ति को पठनार्थ भेंट दी गई।

प्रशास्ति सग्रह-पृष्ठ स. १४९

२. सवत् १५४१ माह बुदी ३ सोमवार डूंगरपुर मे इनकी गुर वहिन शाति गौतम श्री के पठनार्थ आशाधर कृत धर्मामृतपजिका की प्रतिलिपि की गयी।

(ग्रन्थ सख्या-२६० शास्त्र भडार ऋषभदेव)

३ सवत् १५४९ आषाढ सुदी २ सोमवार को इनके उपदेश से वसुनदि पचविशति की प्रति ब्र. माणिक के पठनार्थ लिखी गई।

ग्रन्थ स. २०४ सभवनाथ मन्दिर उदयपुर।

३. सवत् १५५३ मे गिरिपुर (डूंगरपुर) के आदिनाथ चैत्यालय मे सकलकीर्त्ति कृत प्रश्नोत्तर श्रावकाचार की प्रतिलिपि इनके उपदेश से हूंवट ज्ञातीय श्रेष्ठि ठाकुर ने लिखवाकर माघनदि मुनि को भेंट की।

भट्टारकीय शास्त्र भंडार अजमेर ग्रन्थ स १२२

४. सवत् १५५५ मे अपनी गुरु बहिन के लिये ब्रह्म जिनदास कृत हरिवश पुराण की प्रतिलिपि कराई गयी।

प्रशास्ति सग्रह-पृष्ठ ७३

५ सवत् १५५५ आषाढ बुदी १४ कोटस्याल के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे ज्ञानभूषण के शिष्य ब्रह्म नरसिंह के पढने के लिये कातन्त्र रुपमाला वृत्ति की प्रतिलिपि करवा कर भेंट की गई।

सभवनाथ मदिर शास्त्र भंडार उदयपुर
ग्रन्थ सख्या-२०९

६. सवत् १५५७ मे इनके उपदेश से महेश्वर कृत शव्दभेदप्रकाश की प्रतिलिपि की गई।

ग्रन्थ सख्या-११२ अग्रवाल मदिर उदयपुर

७. संवत् १५५६ मे ज्ञानभूषण के भाई आ. रत्नकीर्त्ति के शिष्य ब्र. रत्नसागर ने गधार मंदिर के पार्श्वनाथ चैत्यालय मे पुष्पदत कृत यशोघरचरित्र की प्रतिलिपि करवायी थी।

प्रशस्ति सग्रह पृ. ३८६

८. सवत् १५५७ अषाढ बुदी १४ के दिन ज्ञानभूषण के उपदेश से हूं वड जातीय श्री श्रेष्ठी जइता भायो पाचू ने महेश्वर कवि द्वारा विरचित शब्दभेदप्रकाश की प्रतिलिपि करवायी।

ग्रन्थ सख्या-२८ अग्रवाल मदिर उदयपुर

९ सवत् १५५८ में ब्र. जिनदास द्वारा रचित हरिवश पुराण की प्रति इन्ही के प्रमुख शिष्य विजयकीर्त्ति को भेंट दी गई देउल ग्राम मे—

ग्रन्थ सख्या-२४७ शास्त्र भडार उदयपुर

ज्ञानभूषण के पश्चात् होने वाले कितने ही विद्वानो ने इनका आदर पूर्वक स्मरण किया है। भ. शुभचद की दृष्टि मे न्यायशास्त्र के पारगत विद्वान थे एव उन्होंने अनेक शास्त्रार्थों मे विजय प्राप्त की थी। सकल भूषण ने इन्हे ज्ञान से विभूषित एव पाडित्य पूर्ण बतलाया है तथा इन्हे सकलकीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भट्टारको मे सूर्य के समान कहा है।

ज्ञानभूषण की मृत्यु सवत् १५६० के बाद किसी समय हुई होगी ऐसा विद्वानो का अभिमत है।

मूल्यांकन :

'भट्टारक ज्ञानभूषण' साहित्य-गगन मे उस समय अवतरित हुए जब हिन्दी-भाषा जन-साधारण की शनैः शनैः भाषा बन रही थी। उस समय [illegible], [illegible] एव कबीरदास जैसे जैनेतर कवि एव स्वयम्भू, पुष्पदन्त, वीर, [illegible], [illegible], रइधू और ब्रह्म-जिनदास जैसे जैन-विद्वान् हो चुके थे। इन विद्वानो ने हिन्दी-साहित्य' को अपनी अनुपम [illegible] भेंट किये हैं। [illegible] [illegible] के साथ [illegible] थी। 'भ. ज्ञानभूषण' ने भी 'आदिनाथ फागु' जैसी [illegible] रचना उस वातावरण की आत्मविशुद्धि के लिए लिखी तथा [illegible] रास, [illegible] रास, [illegible] जैसी रचनाएँ [illegible] में लिखी हैं [illegible]। इन रचनाओं का [illegible] [illegible] के [illegible] एवं [illegible] जीवन को [illegible] था। यद्यपि [illegible] अधिक रचनाएँ [illegible] [illegible] नहीं हैं, [illegible] [illegible] है।

उसने पानी छानकर विधि बतलाने के लिए, व उपवास के महात्म्य को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही रासक-काव्यो की रचना मे सफलता प्राप्त की। ये रासक-काव्य गीति-प्रधान काव्य हैं, जिन्हे समारोहो के अवसरो पर जनता के सामने अच्छी तरह रखा जा सकता है।

भ० विजयकीर्त्ति

१५ वी शताब्दि मे भट्टारक सकलकीर्ति ने गुजरात एव राजस्थान मे अपने त्यागमय एव विद्वतापूर्ण जीवन से भट्टारक सस्था के प्रति जनता की गहरी आस्था प्राप्त करने मे महान सफलता प्राप्त की थी। उनके पश्चात इनके दो सुयोग्य शिष्य प्रशिष्यो भ० भुवनकीर्ति एव भ० ज्ञानभूषणः ने उसकी नीव को और भी दृढ करने मे अपना योग दिया। जनता ने इन साधुओ का हार्दिक स्वागत किया और उन्हे अपने मार्गदर्शक एव धर्म गुरू के रूप मे स्वीकार किया। समाज मे होने वाले प्रत्येक धार्मिक एव साँस्कृतिक तथा साहित्यिक समारोहो मे इनसे परामर्श लिया जाने लगा तथा यात्रा संघो एव विम्बप्रतिष्ठाओ मे इनका नेतृत्व स्वत. ही अनिवार्य मान लिया गया। इन भट्टारको के विहार के अवसर पर धार्मिक जनता द्वारा इनका अपूर्व स्वागत किया जाता और उन्हे अधिक से अधिक सहयोग देकर उनके महत्व को जनसाधारण के सामने रखा जाता। ये भट्टारक भी जनता के अधिक से अधिक प्रिय बनने का प्रयास करते थे। ये अपने सम्पूर्ण जीवन को समाज एव सस्कृति की सेवा मे लगाते और अध्ययन, अध्यापन एव प्रवचनो द्वारा देश मे एक नया उत्साहप्रद वातावरण पैदा करते।

विजयकीर्ति ऐसे ही भट्टारक थे जिनके बारे मे अभी बहुत कम लिखा गया है। ये भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य थे और उनके पश्चात भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठापित भट्टारक गादी पर बैठे थे। इनके समकालीन एव बाद मे होने वाले कितने ही विद्वानो ने अपनी ग्र थ प्रशस्तियो मे इनका आदर भाव से स्मरण किया है। इनके प्रमुख शिष्य भट्टारक शुभचन्द ने तो इनकी अत्यधिक प्रशसा की है और इनके सबध मे कुछ स्वतन्त्र गीत भी लिखे हैं। विजयकीर्ति अपने समय के समर्थ भट्टारक थे। उनकी प्रसिद्धि एव लोकप्रियता काफी अच्छी थी यही बात है कि ज्ञानभूषण ने उन्हे अपना पट्टाधिकारी स्वीकृत किया और अपने ही समक्ष उन्हें भट्टारक

पद देकर स्वय साहित्य सेवा मे लग गये ।

विजयकीर्ति के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध मे अभी कोई निचिश्त जानकारी उपलब्ध नही हो सकी है लेकिन भ० शुभचन्द के विभिन्न गीतो के आधार पर ये शरीर से कामदेव के समान सुन्दर थे । इनके पिता का नाम साह गगा तथा माता का नाम कुअरि था ।

> साहा गंगा तनय करउ विनय शुद्ध गुरू
> शुभ वसह जात कुअरि मात परमपर
> साक्षादि सुवुद्ध जी कीइ शुद्ध दलित तम ।
> सुरसेवत पाय मारीत माय मथित तम ॥१०॥
> शुभचन्द्र कृत गुरूछन्द गीत ।

बाल्यकाल मे ये अधिक अध्ययन नही कर सके थे । लेकिन भ०ज्ञानभूषण के संपर्क मे आते ही इन्होंने सिद्धान्त ग्रथों का गहरा अध्ययन किया । गोमट्टसार लब्धि-सार त्रिलोकसार आदि सैद्धान्तिक ग्रथो के अतिरिक्त न्याय, काव्य, व्याकरण आदि के ग्रथो का भी अच्छा अध्ययन किया और समाज मे अपनी विद्वता की अद्भुत छाप जमा दी

> लब्धि सु गुंमट्टसार सार त्रैलोक्य मनोहर ।
> कर्कश तर्क वितर्क काव्य कमलाकर दिणकर ।
> श्री मूलसघि विख्यात नर विजयकीर्ति वांछित करण ।
> जा चांदसूर ता लगि तयो जयह सूरि शुभचद्र सरण ।

इन्होंने जब साधु जीवन मे प्रवेश किया तो ये अपनी युवावस्था के उत्कर्ष पर थे । सुन्दर तो पहिले से ही थे किन्तु यौवन ने उन्हें और भी निखार दिया था । इन्होने साधु बनते ही अपने जीवन को पूर्णत: सयमित कर लिया और कामनाओ एव षटरस व्यजनो से दूर हट कर ये साधु जीवन की कठोर साधना मे लग गये । ये अपनी साधना में इतने तल्लीन हो गये कि देश भर में इनके चरित्र की प्रशंसा होने लगी ।

भ० शुभचन्द्र ने इनकी सुन्दरता एव सयम का एक रूपक गीत मे बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है । रूपक गीत का सक्षिप्त निम्न प्रकार है ।

जब कामदेव को भ० विजयकीर्ति की सुन्दरता एव कामनाओ पर विजय का पता चला तो वह ईर्ष्या से जल भुन गया और क्रोधित होकर सन्त के सयम को डिगाने का निश्चय किया ।

नाद एह वेरि वग्गि रगि कोई नावीमो ।
मूलसघि पट्ट वध विविह भावि भावीयो ।
तसह भेरी ढोल नाद वाद तेहं उपन्नो ।
भरिण मार तेह नारि कवरण आज नीपन्नो ।

कामदेव ने तत्काल देवागनाओ को बुलाया और विजयकीर्ति के सयम को भग करने की आज्ञा दी लेकिन जब देवागनाओ ने विजयकीर्ति के बारे मे सुना तो उन्हें अत्यधिक दुख हुआ और सन्त के पास जाने मे कष्ट अनुभव करने लगी । इस पर कामदेव ने उन्हें निम्न शब्दो से उत्साहित किया ।

वयरण सुनि नव कामिरणी दुख धरिहि महत ।
कही विमासरण मझहवी नवि वार्‍यो रहि कत ॥१३॥
रे रे कामरिण म करि तु दुखह
इन्द्र नरेन्द्र मगाव्या भिखह ।
हरि हर बभमि कीया रकह ।
लोय सव्व मम वसाहु निसकह ॥१४॥

इसके पश्चात् क्रोध, मान, मद एव मिथ्यात्व की सेना खडी की गई । चारो ओर वसन्त ऋतु जैसा सुहावनी ऋतु करदी गई जिसमे कोयल कुहु कुहु करने लगी और भ्रमर गु जरने लगे । भेरी बजने लगी । इन सब ने सन्त विजयकीर्ति के चारो ओर जो माया जाल बिछाया उसका वर्णन कवि के शब्दो मे पढिये ।

वाल्लत खेलत चालत धावत धूरणत
धूजत हाक्कत पूरत मोडत
तुदत भजत खजत मुक्कत मारत रगेरण
फाडत जाणंत घालत फेडत खग्गेरण ।
जाणीय मार गमण रमरण य तीसो ।
वोल्यावइ निज वल सकल सुधीसो ।
राय गणयता गयो वहु युद्ध कतो ॥१८॥

कामदेव की सेना आपस मे मिल गई । बाजे बजने लगे । कितने ही सैनिक नाचने लगे । धनुषबाण चलने लगे और भीषण नाद होने लगा । मिथ्यात्व तो देखते ही डर गया और कहने लगा कि इस सन्त ने तो मिथ्यात्व रूपी महान विकार को पहिले ही पी डाला है । इसके पश्चात् कुमति की बारी आयी लेकिन उसे भी कोई सफलता नही मिली । मोह की सेना भी शीघ्र ही भाग गई । अन्त मे स्वय कामदेव ने कर्म रूपी सेना के साथ उस पर आक्रमण किया ।

महामयण महीमर चडीयो गयवर, कम्मह परिकर साथि कियो
मछर मद माया व्यसन विकाया, पाखड राया साथि लियो ।

उधर विजयकीर्ति ध्यान मे तल्लीन थे । उन्होने शम, दम एव यम के द्वारा कामदेव और उसके साथियो की एक भी नही चलने दी जिससे मदन राज को उसी क्षण वहा से भागना पडा ।

झूटा झूट करीय तिहाँ लग्गा, मयणराय तिहा ततक्षण भग्गा
आगति यो मयणाधिय नासइ, ज्ञान खडक मुनि अ तिहि प्रकासइ ।।२७।।

इस प्रकार इस गीत मे शुभचन्द्र ने विजयकीर्ति के चरित्र की निर्मलता, ध्यान की गहनता एव ज्ञान की महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला है । इस गीत मे उनके महान व्यक्तित्व की झलक मिलती है ।

विजयकीर्ति के महान व्यक्तित्व की सभी परवर्ती कवियो एव भट्टारको ने प्रशसा की है । ब्र० कामराज ने उन्हे सुप्रचारक के रूप मे स्मरण किया है ।[1] भ० सकलभूषण ने यशस्वी, महामना, मोक्षसुखाभिलाषी आदि विशेषणो से उनकी कीर्ति का बखान किया है ।[2] शुभचन्द्र तो उनके प्रधान शिष्य थे ही, उन्होने अपनी प्राय. सभी कृतियो मे उनका उल्लेख किया है । श्रेणिक चरित्र मे यतिराज, पुण्यमूर्ति आदि विशेषणो से अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है ।

जयति विजयकीर्तिः पुन्यमूर्ति सुकीर्ति
जयतु च यतिराजो भूमिपैः स्पृष्टपाद ।
नयनलिनहिमाशु ज्ञानभूपस्य पट्टे
विविध पर-विवादि क्षमाधरे वज्रपात ।।

: श्रेणिकचरित्र

भ० देवेन्द्रकीर्ति एव लक्ष्मीचन्द चादवाड ने भी अपनी कृतियो मे विजयकीर्ति का निम्न शब्दो मे उल्लेख किया है ।

---

१ विजयकीर्तियो भवन भट्टारकोपदेशिन. ।।७।।

जयकुमार पुराण

२ भट्टारक श्रीविजयादिकीर्तिस्तदीयपट्टे वरलब्धकीर्ति. ।
महामना मोक्षसुखाभिलाषी बभूव जैनावनी यार्च्यपाद. ।।

उपदेशरत्नमाला

१. विजयकीर्ति तस पटधारी, प्रगट्या पूरण सुखकार रे ।
प्रद्युम्न प्रबन्ध :

२. तिन पट विजयकीर्ति जैवत, गुरू अन्यमति परवत समान
: श्रेणिक चरित्र :

सास्कृतिक सेवा

विजयकीर्ति का समाज पर जबरदस्त प्रभाव होने के कारण समाज की गति-विधियो मे उनका प्रमुख हाथ रहता था। इनके भट्टारक काल मे कितनी ही प्रतिष्ठाए हुई। मन्दिरो का निर्माण एव जीर्णोद्धार किया गया। इसके अतिरिक्त सास्कृतिक कार्यक्रमो के सम्पादन मे भी इनका योगदान उल्लेखनीय रहा। सर्वप्रथम इन्होने सवत् १५५७.१५६० और उसके पश्चात सवत् १५६१, १५६४,१५६८, १५७० आदि वर्षो मे सम्पन्न होने वाली प्रतिष्ठाओ मे भाग लिया और जनता को मार्गदर्शन दिया। इन सवतो मे प्रतिष्ठित मूर्तिया डूगरपुर, उदयपुर आदि नगरो के मन्दिरो मे मिलती हैं। सवत् १५६१ मे इन्होने सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान एव सम्यक-चारित्र की महत्ता को प्रतिष्ठापित करने के लिए रत्नत्रय की मूर्ति को प्रतिष्ठापित किया।[1]

स्वर्णकाल—विजयकीर्ति के जीवन का स्वर्णकाल सवत् १५५२ से १५७० तक का माना जा सकता है। इन १८ वर्षो मे इन्होने देश को एक नयी सास्कृतिक चेतना दी तथा अपने त्याग एव तपस्वी जीवन से देश को आगे बढाया। सवत् १५५७ मे इन्हे भट्टारक पद अवश्य मिल गया था। उस समय भट्टारक ज्ञानभूषण जीवित थे क्यो कि उन्होने सवत् १५६० मे 'तत्वज्ञान तरगिणी' की रचना समाप्त की थी। विजयकीर्ति ने सभवत: स्वय ने कोई कृति नही लिखी। वे केवल अपने विहार एव प्रवचन से ही मार्ग दर्शन देते रहे। प्रचारक की दृष्टि से उनका काफी ऊंचा स्थान बन गया था और वे बहुत से राजाओ द्वारा भी सम्मानित थे[2]। वे शास्त्रार्थ एव वाद विवाद भी करते थे और अपने अकाट्य तर्कों से अपने विरोधियो से अच्छी टक्कर लेते थे। जब वे बहस करते तो श्रोतागण मत्रमुग्ध हो जाते और उनकी तर्कों को सुनकर उनके ज्ञान की प्रशसा किया करते। भ० शुभचन्द्र ने अपने एक गीत मे इनके शास्त्रार्थ का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

---

१ भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ १४४

२. यः पूज्यो नृपमल्लिभैरवमहादेवेन्द्रमुख्यैर्नृपै: ।
षट्तर्कागमशास्त्रकोविदमतिजाग्रद्यशश्चद्रमा ।।
भव्याभोरुहभास्कर शुभकर: ससारविच्छेदकः ।
सो व्याद्धीविजयादिकीर्तिमुनियो भट्टारकाधीश्वर । वही पृष्ठ १०

वादीय वाद विटब वादि सिगाल मद गजन ।
वादीय कुद कुदाल वादि श्रावय मत रजन ।
वादि तिमिर हर भूरि, वादि नीर मह सुधाकर ।
वादि विटबन वीर वादि निगाण गुण सागर ।
वादीन विबुध सरस्वति गच्छि मूलसघि दिगवर रहू ।
कहि ज्ञानभूषण तो पट्टि श्री विजयकीर्ति जागी यतिवरह ।५।

इनके चरित्र ज्ञान एव सयम के सम्बन्ध मे इनके शिष्य शुभचन्द्र ने कितने ही पद्य लिखे हैं उनमे से कुछ का रसास्वादन कीजिये ।

सुरनर सग भर चागचद्र चर्चित चरणद्वय ।
समयसार का सार हृस मर चिंतित चिन्मय ।
दक्ष पक्ष शुभ सुक्ष लक्ष लक्षण पतिनायक
ज्ञान दान जिनगान अघ नासक जलदायक
कमनीय मूर्ति सुदर सुकर धम्म शर्म कल्याण कर ।
जय विजयकीर्ति सूरीश नर श्री श्री वर्द्धन सौम्य गर ।।७।।
विमद विगद वादि वरन कुद गज भेदज ।
दुर्नय वनद समीर वीर वदित पद पकज ।
पुण्य पयोधि सुचद्र चद्र चामीकर सुन्दर ।
स्मृति कीर्ति विख्यात सुमुनि सोभित शुभ मदर ।
ससार सघ वह दयो हर सागरमति चारित्र धरा ।
श्री विजयकीर्ति सूरीश जगवर श्री वर्द्धन पापहर ।।८।।

'भ० विजयकीर्ति' के समय मे सागवाड़ा एव नोगनपुर की समाज मे जातियो मे विरोध था । 'विजयकीर्ति' बडसाजनो के गुरु कहलाते थे । जब वे नोगनपुर आये तो [illegible] शास्त्रार्थ करना चाहा लेकिन उनकी विद्वत्ता के सामने वे नहीं टिक सके ।[2]

शिष्य परम्परा—

विजयकीर्ति के कितने ही शिष्य थे । इनमे से भ. शुभचन्द्र, [illegible], ब. [illegible] आदि प्रमुख हैं । [illegible] ने एक विजयकीर्ति गीत लिखा है, जिसमे विजय-कीर्ति के [illegible] की [illegible] है । वे सिद्धान्त के मर्मज्ञ थे

---

१ [illegible] श्री विजयकीर्ति [illegible] ।

२ वही [illegible] शास्त्र भण्डार [illegible] ।

तथा चारित्र सम्राट थे।[1] इनके एक अन्य शिष्य ब्र. यशोधर ने अपने कुछ पदो मे विजयकीर्ति का स्मरण किया है तथा एक स्वतत्र गीत मे उनकी तपस्या, विद्वत्ता एव प्रसिद्धि के बारे मे अच्छा परिचय दिया है। गीत[2] का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है:—

अनेक राजा चलण सेवि मालवी मेवाड।
गूजर सोरठ सिंधु सहिजि अनेक भड भूपाल ॥
दक्षण मरहठ चीण कुकण पूरवि नाम प्रसिद्ध।
छत्रीस लक्षण कला बहुतरि अनेक विद्यारिधि ॥

आगम वेद सिद्धान्त व्याकरण भावि भवीयण सार।
नाटक छन्द प्रमाण सूझि नित जपि नवकार ॥

श्री काष्टा सघि कुल तिलुरे यती सरोमणि सार।
श्री विजयकीरति गिरुउ गणधर श्री सघकरि जयकार ॥४॥

---

१. पूरा पद देखिये—लेखक द्वारा सम्पादित—
राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ-सूची, चतुर्थ भाग– पृ. सं ६६६-६७।

२. विजयकीर्ति गीत, रजिस्टर नं ७, पृ. स ६०। महावीर-भवन, जयपुर।

ब्रह्म बूचराज

'रूपक काव्यो' के निर्माता 'ब्रह्म बूचराज' हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित कवि है। इनकी एक रचना 'मयरण जुज्झ' इतनी अधिक लोकप्रिय रही कि राजस्थान के कितने ही भण्डारो मे उसकी प्रतिलिपिया उपलब्ध होती है। इनकी सभी कृतियाँ उच्चस्तर की है। 'बूचराज' भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। इसलिए उनकी प्रशसा मे उन्होने एक 'विजयकीर्ति गीत' लिखा, जिसका उल्लेख हम भ विजयकीर्ति के परिचय मे पहिले ही कर चुके है। विजयकीर्ति के अतिरिक्त ये 'भ० रत्नकीर्ति' के भी सम्पर्क मे रहे थे। इसलिए उनके नाम का उल्लेख भी 'भुवनकीर्ति गीत' मे किया गया है।[1]

'बूचराज' राजस्थानी विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक किसी भी कृति मे उन्होने अपने जन्म स्थान एव माता-पिता आदि का परिचय नही दिया है, लेकिन इन रचनाओ की भाषा के आधार पर एव भ० विजयकीर्ति के शिष्य होने के कारण इन्हे राजस्थानी विद्वान् ही मानना अधिक तर्क सगत होगा। वैसे ये सन्त थे। 'ब्रह्मचारी' पद इन्होने धारण कर लिया था। इसलिये धर्म प्रचार एव साहित्य-प्रचार की दृष्टि से ये उत्तरी भारत मे विहार किया करते थे। राजस्थान, पजाब, देहली एव गुजरात इनके मुख्य प्रदेश थे। सवत् १५९१ मे ये हिसार मे थे और उस वर्ष वही चातुर्मास किया था। इसलिए १५६१ की भादवा शुक्ला पचमी के दिन इन्होने "सतोप जय तिलक" को समाप्त किया था। सवत् १५८२ मे ये चम्पावती (चाटसू) मे और इस वर्ष फाल्गुन सुदी १४ के दिन इन्हे 'सम्यक्त्व कौमुदी' की प्रतिलिपि भेंट स्वरूप प्रदान की गयी थी।[2]

---

१. सुर तरु सघ वालिउ चितामणि दुहिए दुहि।
महो धरि धरि ए पंच सबद बाजहि उछरगिहिए ॥
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि।
जिणहं मन्दिर अवही अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसम माल चढावइ ॥
बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटि उदयोसह गुरो।
श्री भुवनकीर्त्ति आसीरवादहि सघ कलियो सुरतरो ॥

—लेखक द्वारा सम्पादित राजस्थान के जैन
शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग

२. "सवत् १५८२ फाल्गुन सुदि १४ शुभ दिने ' चपावती नगरे
एतान् इद शास्त्र कौमुदीं लिखाप्य कर्मक्षय निमित्तं ब्रह्म बूचाय दत्त ॥
—लेखक द्वारा सपादित प्रशास्ति मग्रह-पृ ६३

इन्होंने अपनी कृतियो मे बूचराज के अतिरिक्त बूचा, वल्ह, वील्ह, अथवा वल्हव नामो का उपयोग किया है। एक ही कृति मे दोनो प्रकार के नाम प्रयोग मे आये है। इनकी रचनाओ के आधार से यह कहा जा सकता है कि बूचराज का व्यक्तित्व एव मनोवल बहुत ही ऊंचा था। उन्होने अपनी रचनाएँ या तो भक्ति एव स्तवन पर आधारित की है अथवा उपदेश परक है-जिसमे मानव-मात्र को काम-वासना पर विजय प्राप्त करने तथा सन्तोष पूर्वक जीवन-यापन करने का उपदेश दिया गया है।

समय

कविवर के समय के बारे मे निश्चित तो कुछ भी नही कहा जा सकता लेकिन इनकी रचनाओ के आधार पर इनका समय सवत् १५३० से १६०० तक का माना जा सकता है। इस तरह उन्होने अपने जीवन-काल मे भट्टारक भुवनकीर्त्ति, ज्ञानभूषण एव विजयकीर्त्ति का समय देखा होगा तथा इनके सानिध्य मे रहकर बहुत कुछ सीखने का अवसर भी प्राप्त किया होगा। ऐसा लगता है कि ये ग्रहस्था-वस्था के पश्चात् संवत् १५७५ के आस पास ब्रह्मचारी बने होगे तथा उसी के पश्चात् इनका ध्यान साहित्य रचना की ओर गया होगा। 'मयरा जुज्झ' इनकी प्रथम रचना है जिसमे इन्होने भगवान आदिनाथ द्वारा कामदेव पर विजय प्राप्त करने के रूप मे सभवत: स्वय के जीवन का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कवि की अभी तक जिन रचनाओ की खोज की जा सकी है वे निम्न प्रकार है।

१ मयणजुज्झ (मदनयुद्ध)
२ सतोष जयतिलक
३ चेतन पुद्गल धमाल
४. टडाणा गीत
५. नेमिनाथ वसतु
६. नेमीश्वर का बारहमासा
७. विभिन्न रागो मे लिखे हुए ८ पद
८. विजयकीर्त्ति गीत

१ मयणजुज्झ

यह एक रूपक काव्य[1] है जिसमे भगवान् ऋषभदेव द्वारा कामदेव पराजय का वर्णन है। यह एक आध्यात्मिक रूपक काव्य है, जिसका प्रमुख उद्देश्य "मनो-

१ साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन जयपुर के एक गुटके मे इसकी एक प्रति संग्रहीत है।

विकारो के अधीन रहने पर मानव को मोक्ष की उपलब्धि नही हो सकती।" इसको पाठको के समक्ष प्रस्तुत करना है। काम मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्राप्त करने मे बहुत बडी बाधा है, मोह, माया, राग एवं द्वेष काम के प्रवल सहायक हैं। वसन्त काम का दूत है, जो काम की विजय के लिए पृष्ठ भूमि वनाता है लेकिन मानव अनन्त शक्ति एव ज्ञान वाला है यदि वह चाहे तो सभी विकारो पर विजय प्राप्त कर सकता है। और इसी तरह भगवान ऋषभदेव भी अपने आत्मिक गुणो के द्वारा काम पर विजय प्राप्त करते है। कवि ने इस रूपक को बहुत ही सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है।

वसन्त कामदेव का दूत होने के कारण उसकी विजय के लिये पहिले जाकर अपने अनुरूप वातावरण वनाता है। वसन्त के आगमन का वृक्ष एव लतायें तक नव पुष्पो से उसका स्वागत करती हैं। कोयल कुहू कुहू की रट लगा कर, एव भ्रमर पक्ति गुन्जार करती हुई उसके आगमन की सूचना देती है। युवतिया अपने आपको सज्जित करके भ्रमण करती है। इसी वर्णन को कवि के शब्दो मे पढिए....

वज्यउ नीसाण वसत आयउ, छल्लकु द सिखिल्लिय।
सुगध मलया पवण झुल्लिय, अब कोइल्ल कुल्लिय।

रूण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिह छाइय।
गावति गीय वजति वीणा, तरुणि पाइक आइय ॥३७॥

जिन्ह कडिल केस कलाव, कुतिल मग मुत्तिय धारिय।
जिन्ह वीण भवयग लसंति चदन गुथि कुसुमण वारिय।

जिन्ह भवह धुणहर घनिय समुह्नर नवण वाण चडाइय।
गावत गीय वजति वीणा, तरुणि पाइक आइय ॥३८॥

मदन (कामदेव) भी ऐसा वैसा योद्धा नहीं जो शीघ्र ही अपनी पराजय स्वीकार करले, पहिले वह अपने प्रतिपक्षियो की शक्ति परीक्षा करता है और इसके लिए अपने प्रधान सहायक मोह को भेजता है। वह अपने विरोधियो के मन मे विकार उत्पन्न करता है।

मोह चल्लिउ साथि कलिकालु।
जह हु तउ मदन भट्टु, तहमु जाद कुमनु कीयउ।
गढु विषमउ धम्मु पुरू, तहसु सधनु सवूहि लिधउ।
दोनउ चल्ले पैंज करि, गव्व धरयउ मन मगहि।

पवन सवल जव उछलहिं, घण कर केव रहाहि ॥८७॥

गाथा

रहहि सुकिव घणघट, जुडिया जह सवल गजि गजघट ।
समिविडि चलै सुभट, पधाणउ कीयउ भडि मोह ।।८८।।

अन्त मे भावात्मक युद्ध होता है और सबसे पहिले भगवान् आदिनाथ राग को वैराग्य से जीत लेते है

परियउ तिमरु जिउ देखि भाणु, आगिउ छोडि सो पम्म ठाणु ।
उठि राग़ु चल्यउ गरजत गहीरु, वैरागु हुव्यउ तनि तसु तीस ।।१०९।।

फिर क्या था, भगवान् आदिनाथ एक एक योद्धा को जीतते गए । क्रोध को क्षमा से, मद को मार्दव से, माया को आर्जव से, लोभ को सन्तोष से जीत लिया । अन्त मे पहिले मोह, तथा बाद मे काम से युद्ध हुआ । लेकिन वे भी ध्यान एव विवेक के सामने न टिक सके और अन्त मे उन्हे भी हार माननी पडी ।

'मयण जुज्झ' को कवि ने सवत् १५८९ मे समाप्त किया था,[१] जिसका उल्लेख कवि ने रचना के अन्तिम छन्द मे किया है । यह रूपक काव्य अभी तक अप्रकाशित है । इसकी प्रतिलिपि राजस्थान के कितने ही भण्डारो मे मिलती है ।

२. सतोष जय तिलक

यह कवि का दूसरा रूपक काव्य है ।[२] इसमे सन्तोष की लोभ पर विजय का वर्णन किया गया है । काव्य मे सन्तोष के प्रमुख अ ग है—शील, सदाचार, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, क्षमा एव सयम । लोभ के प्रमुख अ गो मे असत्य, मान, क्रोध, मोह, माया, कलह, कुव्यसन, एव अनाचार आदि हैं । वास्तव मे कवि ने इन पात्रो की नयोजना कर जीवन के प्रकाश और अन्धकार पक्ष की उद्भावना मौलिक रूप मे की है । कवि ने आत्म तत्व की उपलब्धि के लिए निवृत्ति मार्ग को विशेष महत्व दिया है । काव्य का सन्तोष नायक है एव लोभ प्रतिनायक ।

---

१. राइ विक्कम तणउ संवतु नवासियन पनरसे ।
सवदरुति आसु बखाणउ, तिथि पडिया सुकल पखु ।
सुसनिश्चवारु वरु णिखित्तु जणउ, तिणि दिलि वल्ह सु स पडिउ ।
मयणं जुज्झु सुविसेसु करत पढत निसुणत नर, जयउ स्वामि रिसहेस ।।१५६।।

२. 'दि० जैन मन्दिर नागदा' बूंदी (राजस्थान) के गुटका न० १७४ में इसकी प्रति सग्रहीत है ।

जब वे दोनो युद्ध मे अवतरित होते हैं तो उनकी शक्ति का कवि ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है

षट् पद छन्द

आयउ झूठु परधानु, मतु तत्त खिरिग कीयउ।
मानु कोहु अरू दोहु मोहु, इकु युद्धउ थीयउ।
माया कलहि कलेसु थापु, सतापु छदम दुखु।
कम्म मिथ्या आसरउ, आइ अद्धम्मि किगउ पखु।
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ रागि दोषि आइरु लहिउ।
अप्पणउ सयनु वल देखि करि लोहु राउ तव गहगहिउ ॥७२॥

× × × ×

गीतिका छन्द

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु, न्यानु चरित सवरो।
वैरागु, तपु, करुणा, महाव्रत खिमा चित्ति सजमु थिरु।
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु, द्धम्मु सो आकिंचणो।
इन मेलि दलु सतोप राजा, लोम सिउ मडइ रणो ॥७६॥

रचना मे लोभ के अवगुणो का विस्तृत वर्णन किया गया है, क्योकि अनादि काल से चारो गतियो मे घूमने पर भी यह लोभ किसी का पीछा नही छोडता।

गाथा

भमियउ अनादिकाले चहुगति, भम्भम्मि जीउ वहु जोनी।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यह दारणु लोभ प्रचडु ॥१४॥

दोहा

दारणु लोभ प्रचडु यहु, फिरि फिरि वहु दु ख दीय।
व्यापि रहया वलि अप्पइ, लख चउरासी जीय ॥१५॥

लोभ तेल के समान है, जैसे जल मे तेल की वून्द पडते ही वह चारो ओर फैल जाती है, उसी प्रकार लोभ की किंचित मात्रा भी इस जीव को चतुर्गति मे भ्रमण कराने मे समर्थ है। भगवान् महावीर ने ससार मे लोभ को सबसे बुरा पाप कहा है। लोभ ने साधुओ तक को नही छोडा। वे भी मन के मध्य "मोक्ष रुपी लक्ष्मी को पाने की इच्छा से फिरते हैं। इन्ही भावो को कवि के शब्दो मे पढिए—

जिव तेल बून्द जल माहि पडइ, सा पसरि रहे भाजनइ छाइ ।
तिल लोभु करइ राईस चारु, प्रगटावे जगि मे रह विथारू ।।२२।।

× × × ×

वरण मझि मुनीसर जे वसहि, सिव रमरिग लोभु तिन हियइ माहि ।
इकि लोभि लग्गि पर भूमि जाहि, पर करहिं सेव जीउ जीउ मरणहि ।।२४।।

× × × ×

मरणवु तिजचहे नर सुरह, हीडावे गति चारि ।
वीर भरण गोइम निसुरिग, लोभ बुरा ससारि ।।४५।।

'सतोष जय तिलक' को कवि ने हिसार नगर मे सवत् १५९१ मे समाप्त किया था। इसका स्वय कवि ने अपनी रचना के अन्त मे उल्लेख किया है।

सतोषह जयतिलउ जपिउ, हिसार नयर मझ मे ।
जे सुराहि भविय इक्कमनि, ते पावहि वछिय सुक्ख ।।११९।।

सवति पनरह इक्याण महवि, सिय पविख पचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृपे जेउ, तहि जारिग वभनामेरग ।।१३०।।

'सतोष जय तिलक' कृति प्राचीन राजस्थानी की एक सुन्दर रचना है, जिसकी भाषा पर अपभ्र श का अधिक प्रभाव है। अकारान्त शब्दो को उकारात बनाकर प्रयोग करना कवि को अधिक अभीष्ट था। इसमे १३१ पद्य है। जो साटिक, रड, रगिक्का, गाथा, पटपद्, दोहा, पद्धडी, अडिल्ल, रासा, चदाइरगु, गीतिका, तोटक, आदि छन्दो मे विभक्त है। रचना भाषा विज्ञान क अध्ययन की दृष्टि मे उत्तम है। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ बून्दी (राजस्थान) के गुटका सख्या १७४ मे सग्रहीत है।

३. चेतन पुद्गल धमाल [1]

यह कवि के रूपक काव्यो मे सबसे उत्तम रचना है। कवि ने इसमे जीव एव पुद्गल के पारस्परिक सम्बन्धो का तुलनात्मक अध्ययन किया है। "चेतन सुगु निरगुरग जड सिउ सगति कीजइ" को वह बार बार दोहराता है। वास्तव मे यह एक सम्वादात्मक काव्य है जिसके जीव एव जड : 'अजीव' दोनो नायक है। स्वय

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर नागदा बून्दी के गुटका संख्या १७४ मे इसकी प्रति संग्रहीत है।

कवि ने प्रारम्भिक मगलाचरण के पश्चात् काव्य के मुख्य विषय को पाठको के समक्ष निम्न शब्दो मे उपस्थित किया है—

पच प्रमिण्टी वल्ह कवि, ए पणमी घरिभाउ ।
चेतन पुद्गल दहूक, सादु विवादु सुणावो ।।३२।।

प्रारम्भ मे चेतन वाद विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहता है कि जड पदार्थ से किसी को प्रीति नही करनी चाहिए क्योकि वह स्वय विध्वंसनशील है । जड के साथ प्रेम बढाकर अपने आपका उपकार सोचना सर्प को दूध पिलाकर उससे अच्छे स्वभाव की आशा करने के समान है ।

जिनि कारि जाणी आपणी, निश्चे बूडा होइ ।
खीरु पड्या विसहरि मुखे, ताते क्या फल होई ।।३७।।

चेतन के प्रश्न का जड ने जो सुन्दर उत्तर दिया उसे कवि के शब्दो मे पढिए-

चेतन चेति न चालई, कहउत माने रोसु ।
आये बोलत सौ फिरे, जडहि लगावइ दोसु ।।३८।।

× × × ×

छह रस भीयण विविह परि, जो जह नित सीचेइ ।
इन्दो होवहि पडवडी, तउ पर धम्मु चलेइ ।।४०।।

इस प्रकार पूरा रूपक सवाद पूर्ण है, चेतन और पुद्गल के सुन्दर विवाद होता है । क्योकि जड और चेतन का सम्बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है वह उसी प्रकार है, जिस प्रकार काष्ठ मे अग्नि एव तिलो मे तेल रहता है ।

जिउ वैसन्दरु कट्ठ महि, तिल महि तेलु भिजेउ ।
आदि अनादिहि जाणिये, चेतन पुद्गल एव ।।५४।।

एक प्रसग पर चेतन पदार्थ जड से कहता है कि उसे सदैव दूसरो का भला करना चाहिए । यदि अपना बुरा होता हो तो भी उसे दूसरो का भला करना चाहिए ।

भला करन्लिहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा जाणि ।
तो भी भला न छोडिये, उत्तम यह परवाणु ।।७०।।

लेकिन इसका पुद्गल के द्वारा दिया हुआ उत्तर भी पढिए ।

भला भला सहु को कहे, मरमु न जाणे कोइ ।
काया सोई मीत रे, भला न किस ही होइ ।।७१।।

किन्तु इससे भी अधिक व्यग निम्न पद्य मे देखिए—

जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ।
तिउ इसु काया सग ते, मोखही जीयहा जाए ॥७३॥

रचना के कुछ सुन्दर पद्य, पाठको के अवलोकनार्थ दिए जा रहे है—

जिउ ससि मडणु रमणिका, दिन का मण्डणु भाणु।
तिम चेतन का मण्डणा, यहु पुद्गल तू जाण ॥७८॥

× × × ×

काय कलेवरु वसि सुहु, जतनु करन्तिहि जाइ।
जिव जिव पाचे तूवडी, तिव तिव अति करवाइ ॥८१॥

× × × ×

फूलु मरह परमलु जीवइ, तिसु जाणै सहु कोई।
हसु चलइ काया रहइ, किवस बराबरि होइ ॥८३॥

× × × ×

काया की निंदा करइ, आपु न देखइ जोइ।
जिउ जिउ भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ ॥९०॥

× × × ×

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कहिया आदि अनादि।
छह खड भोगे चक्कवै, काया के परसादि ॥९६॥

× × × ×

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु।
जे गुण होवहि गोरडी, तउ वन छाडे ताहु ॥९९॥

× × × ×

मोती उपना सीप महि, विडि माथावे लोइ।
तिउ जीउ काया सगते, सिउपुरि वासा होइ ॥१०४॥

× × × ×

कालु पच मारुद्द यहु, चित्तु न किसही ठाइ।
इदी सुखु न मोखु हुइ, दोनउ खोवहि काए ॥११४॥

× × × ×

यह सजमु असिवर अरणी, तिसु ऊपरि पगु देहि ।
रे जीय मूढ न जाणही, इव कहु किव सीहयेहि ।।१२४।।

× × × ×

उद्दिमु साहसु धीरु वलु, बुद्धि पराकमु जारिग ।
ए छह जिनि मनि दिठु किया, ते पहुँचा निरवारिग ।।१३१।।

'चेतन पुदगल धमाल' मे १३६ पद्य हैं, जिनमे १३१ पद्य दीपक राग के तथा शेष ५ पद्य अष्ट पद छप्पय छन्द के है । कवि ने इस रचना मे अपने दोनो ही नामो का उल्लेख किया है । रचना काल का इसमे कही उल्लेख नही हुआ है किन्तु सभवत यह कृति रचनाए संवत् १५९१ के बाद की लिखी हुई हैं क्योकि भाषा एव शैली की दृष्टि से इसका रूप अत्यधिक निखरा हुआ है । धमाल का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है...

जिय मुकति सरूपी, तु निकल मलु राया ।
इसु जड के सग ते, भमिया करमि भमाया ।
चडि कवल जिवा गुरिग, तजि कद्दम ससारो ।
भजि जिरग गुरग हीयडे, तेरा याहु विवहारो ।
विवहास यहु तुझ जारिग जीयडे करहु इदिय सवरो ।
निरजरहु वधरग कम्मं केरे, जान तनि दुकाजरो ।।
जे वचन श्री जिरग वीरि भासे, ताहु नित धारहु हीया ।
इव भरगइ वूचा सदा निम्मल, मुकति सरूपी जीया ।।१३६।।

४ टडाणा गीत

यह एक उपदेशात्मक गीत है । जिसका प्रधान विपय "इसि ससारे दु ख भडारे क्या गुरग देखि लुभारगावे" है । कवि ने प्रारगी मात्र को ससार से सजग रहते हुए शुद्ध जीवन यापन करने का उपदेश दिया है क्योकि जिस ससार ने उसे अनादि काल से ठगा है, फिर भी यह प्रारगी उसी पर विश्वास करता रहता है ।

गीत की भापा शुद्ध हिन्दी है, जो अपभ्र श के प्रभाव से रहित है । कवि ने रचना मे अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त और कोई परिचय नही दिया है ।

सिधि सरूप सहज ले लावे, ध्यावे अ तर झारगावे ।
जपति वूचा जिय तुम पावी, वछित सुख निरवारगावे ।।१५।।

रचना का नाम 'टडाणा गीत' प्रारम्भिक पद्य के कारण दिया गया है। वैसे टडाणा शब्द यहा ससार के लिये प्रयुक्त हुआ है। टडाणा, टाडा शब्द से बना है, जिसका अर्थ व्यापारियो का चलता समूह होता है। ससार भी प्राणियो के समूह का ही नाम है, जहा सभी वस्तुए अस्थिर हैं।

गीत के छन्द पाठको के अवलोकनार्थ दिये जा रहे है ...

मात पिता सुत सजन सरीरा, दुहु सब लोगि विराणावे।
इयण पख जिमि तरवर वासै, दसहुँ दिशा उडाणावे ॥

विषय स्वारथ सब जग वछे, करि करि बुधि विनाणावे।
छोडि समाधि महारस नूपम, मधुर विंदु लपटाणावे ॥

इसकी एक प्रति जयपुर के शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधा के एक गुटके के सग्रह मे है।

५. नेमिनाथ वसतु

यह वसत आगमन का गीत है। नेमिनाथ विवाह होने से पूर्व ही तोरण द्वार से सीधे गिरनार पर जाकर तप धारण कर लेते है। राजुल को लाख समझाने पर भी वह दूसरा विवाह करने को तैयार नही होती और वह भी तपस्विनी का जीवन यापन का निश्चय कर लेती है। इसके बाद वसन्त ऋतु आती है। राजुल तपस्विनी होते हुए भी नवयौवना थी। उसका प्रथम अनुभव कैसा होगा, इसे कवि के शब्दो मे पढिए .

अमृत अबु लउ मोर के, नेमि जिणु गढ गिरनारे।
म्हारे मनि मधुकरु निह वसइ, सजमु कुसमु मझारो ॥२॥

सखिय वसत सुहाल रे, दीसइ सोरठ देसो।
कोइल कुहकह, मधुकर सारि सब वणइ पइसो ॥३॥

विवलसिरी यह महकैइरे, भवरा रुणझुण कारो।
गावहि गति स्वरास्वरि, गध्रव गढ गिरनारे ॥४॥

लेकिन नेमिनाथ ने तो साधु जीवन अगीकार कर लिया था और वे मोक्ष लक्ष्मी का वरण करने के लिए तैयारी कर रहे थे, इसलिये वे अपने सयम के साथ फाग खेल रहे थे। क्षमा का वे पान चबाते और उससे राग का उगाल निकालते।

मुक्ति रमणि रगि रातेउ, नेमि जिणु खेलइ फागो।
सरस तबोल समा रे, रासे राग उगालो।

राजुल समुद्रविजय की लाडली कुमारी थी, लेकिन अब तो उसने भी व्रत अगीकार कर लिए थे। जब नेमिनाथ तपस्वी जीवन विताने लगे तो वह क्यो पीछे रहती, उसने भी सयम धारण कर लिया ...

समुद्रविजयराइ लाडिलउ, अपूरव देस विसालो।
नव रस रसियउ नेमि जिणु, नव रस रहित रसालो ॥७॥

विरस विलासणि भो लयो, समुद विजय राइवालो।
नेमि छयलि तिहुयणि छलियउ, माणिणि मलियउ मारू ॥८॥

राजुल द्वेन देइखत दिनु रमह, सजम सिरिख सुजाणो।
जणु जागइ तव सोवइ, जागह सूतइ लोगो।

रचना मे २३ पद्य हैं,[1] अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है

वल्हि विपक्खणु, सखीय वघण जाइ।
मूल सघ मुख मडया, पद्मनन्दि सुपसाइ।
वल्हि वसतु जु गावहि, सो सखि रलिय कराइ ॥

६. नेमिश्वर का बारहमासा[2]

यह एक छोटी सी रचना है, जिसमे नेमिनाथ एव राजुल के प्रथम १२ महिनो का सक्षिप्त वर्णन दिया हुआ है। वर्णन सुन्दर एव सरस है, रचना मे १२ पद्य है।

७. विभिन्न रागो में लिखे हुए आठ पद

कवि के उपलब्ध आठ पद आध्यात्मिक भावो से पूर्ण ओतप्रोत है। पद लम्बे है, तथा राग धनासरी, राग गौडी, राग वडहस, राग दीपक, राग सुहड, राग विहागड, तथा राग आसावरी मे लिखे हुए हैं। राग गौडी वाले पद के अतिरिक्त सभी पदो मे कवि ने अपना बूचराज नाम लिखा है। केवल उसी पद मे वल्ह नाम दिया है। एक पद मे भगवान को फूलमाला चढाने का उल्लेख आया है। उस समय किये गये फूलो का नाम देखिए।

राइ चपा, अरू केवडा, लालो, मालवी मरूवा जाइवे
कु द मयक्द अरू केवडा लालो रेवती वहु मुसकाय।

गौडी राग वाला पद अत्याधिक सुन्दर है,उसे भी पाठको के पठनार्थ अविकल रूप मे दिया जा रहा है।

---

१. इसकी एक प्रति महावीर भवन जयपुर के संग्रह में है।
२　　　　वही

मूल्याकन

'बूचराज' की कृतियो के अध्ययन के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होने हिन्दी-साहित्य की अपूर्व सेवा की थी। उनकी सभी कृतिया काव्यत्व, भाषा एवं शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय कृतिया हैं, जिनको हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे उचित स्थान मिलना ही चाहिए। कवि ने अपने तीनों ही रूपक काव्यो मे काव्य की वह धारा वहायी है जिसमे पाठकगण स्नान करके अपने जीवन को शान्त, सयमित, शुद्ध एव सतोषपरक बना सकते हैं। कवि ने विभिन्न छन्दो एव राग-रागनियो मे अपनी कृतियो को निबद्ध करके अपने छन्द-शास्त्र का ही परिचय नही दिया, किन्तु लोक-धुनो की भी लोक प्रियता का परिचय उपस्थित किया है। इन कृतियो के माध्यम से कवि ने समाज को सरल एव सरस भाषा मे आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया था और लेखक की दृष्टि मे वह अपने मिशन मे अत्यधिक सफल हुआ है। कवि जैन दर्शन के पुद्गल एवं चेतन के सम्बन्ध से अत्यधिक परिचित था। अनादिकाल से यह जीव जड को अपना हितैषी समझता आरहा है और इसी कारण जगत के चक्कर मे फसना पडता है। जीव और जड के इस सम्बन्ध की पोल 'चेतन पुद्गल धमाल' मे कवि ने खोल कर रखदी है। इसी तरह सन्तोष एव काम वासना पर विजय प्राप्त करने का जो सुन्दर उपदेश दिया है—वह भी अपने ढग का अनोखा है। पात्रो के रूप मे प्रस्तुत विषय को उपस्थित करके कवि ने उसमे सरसता एव पाठको की उत्सुकता को जाग्रत किया है। कवि के अब तक जो विभिन्न रागो मे लिखे हुए आठ पद मिले हैं, उनमे उन्ही विषयो को दोहराया गया है। कवि का एक ही लक्ष्य था और वह था जगत के प्राणियो को सुमार्ग पर लगाने का।

सत कवि यशोधर

हिन्दी एव राजस्थानी भाषा के ऐसे सैकडो साहित्य सेवी हैं जिनकी सेवाओ का उल्लेख न तो भाषा साहित्य के इतिहास मे ही हो पाया है और न अन्य किसी रूप मे उनके जीवन एव कृतियो पर प्रकाश डाला जा सका है। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात एव देहली के समीपवर्त्ती पजाबी प्रदेश मे यदि विस्तृत साहित्यिक सर्वेक्षण किया जावे तो आज भी हमे सैकडो ही नही किन्तु हजारो कवियो के बारे मे जानकारी उपलब्ध हो सकेगी जिन्होने जीवन पर्यंत साहित्य-सेवाकी थी किन्तु कालान्तर मे उनको एव उनकी कृतियो को सदा के लिये भुला दिया गया। इनमे से कुछ कवि तो ऐसे मिलेंगे जिन्हें न तो अपने जीवन काल मे ही प्रशसा के दो शब्द मिल सके और न मृत्यु के पश्चात् ही उनकी साहित्यिक सेवा के प्रति दो आँसू बहाये गये।

सन्त यशोधर भी ऐसे ही कवि हैं जो मृत्यु के बाद भी जनसाधारण एव विद्वानो की दृष्टि से सदा ओझल रहे। वे दृढनिष्ठ साहित्य सेवी थे। विक्रमीय १६ वी शताब्दी मे हिन्दी की लोकप्रियता मे वृद्धि तो रही थी लेकिन उसके प्रचार मे शासन का किञ्चित भी सहयोग नही था। उस समय मुगल साम्राज्य अपने वैभव पर था। सर्वत्र अरबी एव फारसी का दौर दौरा था। महाकवि तुलसीदास का उस समय जन्म भी नही हुआ था और सूरदास को भी साहित्य-गगन मे इतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नही हो सकी थी। ऐसे समय मे सन्त यशोधर ने हिन्दी भाषा की उल्लेखनीय सेवा की। यशोधर काष्ठा सघ मे होने वाले जैन सन्त सोम-कीर्त्ति के प्रशिष्य एव विजयसेन के शिष्य थे। बाल्यकाल मे ही ये अपने गुरु की वाणी पर मुग्ध हो गये और ससार को असार जानकर उससे उदासीन रहने लगे। युवा होते २ इन्होने घर बार छोड़ दिया और सन्तो की सेवा मे लीन रहने लगे। ये आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सन्त सकलकीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भट्टारक विजय-कीर्त्ति की सेवा मे रहने का भी इन्हे सौभाग्य मिला और इसीलिये उनकी प्रशसा मे भी इनका लिखा हुआ एक पद मिलता है। ये महाव्रती थे तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह इन पाँच व्रतो को पूर्ण रूप से अपने जीवन मे उतार लिया था। साधु अवस्था मे इन्होने गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र एव उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तो मे विहार करके जनता को बुराइयो से बचने का उपदेश दिया। ये सभवत. स्वय गायक भी थे और अपने पदों को गाकर सुनाया करते थे।

साहित्य के पठन-पाठन में इन्हें प्रारम्भ से ही रुचि थी। इनके दादा गुरु

सोमकीर्त्ति संस्कृत एवं हिन्दी के अच्छे विद्वान थे जिनका हम पहिले परिचय दे चुके है। इसलिये उनसे भी इन्हे काव्य-रचना मे प्रेरणा मिली होगी। इसके अतिरिक्त भ० विजयसेन एवं यशकीर्त्ति से भी इन्हे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। इन्होंने स्वयं बलिभद्र चौपई (सन् १५२८) मे भ० विजयसेन[1] का तथा नेमिनाथ गीत एव अन्य गीतो मे भ० यशकीर्त्ति का उल्लेख किया है। इसी तरह भ० ज्ञानभूषण के शिष्य भ० विजयकीर्त्ति[2] का भी इन पर वरद हस्त था। ये नेमिनाथ के जीवन से संभवत अधिक प्रभावित थे। अत इन्होंने नेमिराजुल पर अधिक साहित्य लिखा है। इसके अतिरिक्त ये साधु होने पर भी रसिक थे और विरह श्रृंगार आदि की रचनाओं मे रुचि रखते थे।

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहा हुआ तथा कितनी आयु के पश्चात् उनका स्वर्गवास हुआ हमे इस सम्बन्ध मे अभी तक कोई प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध नही हो सकी। सोमकीर्त्ति का भट्टारक काल सं० १५२६ से १५४० तक का माना जाता है।[3] यदि यह सही है कि इन्हे सोमकीर्त्ति केचरणो मे रहने का अवसर मिला था तो फिर इनका जन्म सवत् १५२० के आस पास होना चाहिये। अभी तक इनकी जितनी रचनायें मिली है उनमे से केवल दो रचनाओ में इनका रचना काल दिया हुआ है। जो सवत् १५८१ (सन् १५२४) तथा सवत् १५८५ (सन् १५२८) है। अन्य रचनाओ मे केवल इनके नामोल्लेख के अतिरिक्त अन्य विवरण नही मिलता। जिस गुटके मे इनकी रचनाओ का सग्रह है वह स्वय इन्ही के द्वारा लिखा गया है तथा उसका लेखनकाल सवत् १५८५ जेष्ठ सुदी १२ रविवार का है। इसके

---

१. श्री रामसेन अनुक्रमि हुआ, यसकीरति गुरु जाणि।
श्री विजयसेन पठि थापीया, महिमा मेर समाण ॥१८६॥
तास सिष्य इम उच्चरि, ब्रह्म यशोधर जेह।
भूमंडलि दणी पर तपि, तारहु रास चिर एह ॥१८७॥

❀ ❀ ❀ ❀

२. श्री यसकीरति सुपसाउलि, ब्रह्म यशोधर भणिसार।
चलण न छोडउं स्वामी, तह्म तणां मुझ भवचां दु:ख निवार ॥६८॥

❀ ❀ ❀ ❀

वाग वाणी वर मांगु मात दि, मुझ अविरल वाणी रे।
यसकीरति गुरु गाउ गिरिया, महिमा मेर समाणी रे॥
आवु आवु रे भवीयण मनि रलि रे॥

३. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या-२९८

अतिरिक्त इन्होने सोमकोत्ति के प्रशिष्य भ० यशःकीति को भी गुरु के रूप मे स्मरण किया है। जो सवत् १५७५ के आस पास भट्टारक बने होंगे। इसलिये इनका समय सवत् १५२० से १५९० तक का मान लेना युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

यशोधर की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी है किन्तु आशा है कि सागवाडा, ईडर आदि स्थानो के जैन ग्रन्थालयो मे इनका और भी साहित्य उपलब्ध हो सकता है। यशोधर प्रतिलिपि करने का भी कार्य करते थे। अभी इनके द्वारा लिपि-बद्ध नैणवा (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार मे एक गुटका उपलब्ध हुआ है जिसमे कितने ही महत्वपूर्ण पाठो का सकलन दिया हुआ है। कवि के द्वारा निबद्ध सभी सभी रचनायें इस गुटके मे सग्रहीत हैं। इसकी लिपि सुन्दर एव सुपाठ्य है।

१, नेमिनाथ गीत

इसमे २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन की एक झलक मात्र है। पूरी कथा २८ पद्यो मे समाप्त होती है। गीत की रचना सवत् १५८१ मे वंसपालपुर (बांस-वाडा) मे समाप्त की गई थी।

सवत पनर एकासीहजी वसपालपुर सार।
गुण गाया श्री नेमिनाथ जी, नवनिधि श्री संघवार हो स्वामी।

गीत मे राजुल की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उसे मृगनयनी, हसगामनी बतलाया है। इसके कानो मे झूमके, ललाट पर तिलक एव नाग के समान लटकती हुई उसकी वेणी सुन्दरता मे चार चाद लगा रही थी। इसी वर्णन को कवि के शब्दो मे पढिये—

रे हस गमणीय मृगनयणीय स्तवण झाल झवूकती।
तप तपिय तिलक ललाट, सुन्दर वेणीय वासुडा लटकती।
खलिकत चूडीय मुखि वारीय नयन कज्जल सारती।
मलयतीय मेंगल मास आसो इम बोली राजमती।।३।।

गीत की भाषा पर राजस्थानी का अत्यधिक प्रभाव है।

२ नेमिनाथ गीत

राजुल नेमि के जीवन पर यह कवि का दूसरा गीत है। इस गीत में राजुल नेमिनाथ को अपने घर बुलाती हुई उनकी बाट जोह रही हैं। गीत छोटा सा है जिसमे केवल ५ पद्य हैं। गीत की प्रथम पक्ति निम्न प्रकार है—

नेम जी आवु न घरे घरे।
वाटडीयां जोइ सिवयामा (ला) डली रे।।

३. मल्लिनाथ गीत

इस गीत मे ९ छन्द है जिसमे तीर्थंकर मल्लिनाथ के गर्भ, जन्म, वैराग्य, ज्ञान एव निर्वाण महोत्सव का वर्णन किया गया है। रचना का अन्तिम पाठ निम्न प्रकार है—

ब्रह्म यशोघर वीनवी हूं, हवि तह्य तणु दास रे।
गिरिपुरय स्वामीय मडणु, श्री सघ पूरवि ग्रास रे॥९॥

४. नेमिनाथ गीत

यह कवि का नेमिनाथ के जीवन पर तीसरा गीत है। पहिले गीतो से यह गीत बड़ा है और वह ६९ पद्यो मे पूर्ण होता है। इसमे नेमिनाथ के विवाह की घटना का प्रमुख वर्णन है। वर्णन सुन्दर, सरस एव प्रवाह युक्त है। राजुलि-नेमि के विवाह की तैय्यारिया जोर शोर से होने लगी। सभी राजा महाराजाओ को विवाह मे सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण पत्र भेजे गये। उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम आदि सभी दिशाओ के राजागण उस बरात मे सम्मिलित हुये। इसे वर्णन को कवि के शब्दों मे पढिये:—

कु कम पत्री पाठवी रे, शुभ आवि अतिसार।
दक्षिण मरहटा मालवी रे, कु कण कन्नड राउ॥

गूजर मडल सोरठीयारे, सिन्धु सबाल देश।
गोपाचल नु राजाउरे, ढीली आदि नरेस॥२३॥

मलवारी प्रासु पाडनेर, खुरसाणी सवि ईस।
वागडी उदक मजकरी रे, लाड गउडना धाम॥२४॥

कवि ने उक्त पद्यो मे दिल्ली को 'ढीली' लिखा है। १२वी शताब्दी के अपभ्र श के महाकवि श्रीधर ने भी अपने पास चरिउ मे दिल्ली को 'ढिल्ली' शब्द से सम्बोधित किया था।[१]

बरातियो के लिये विविध फल मंगाये गये तथा अनेक पकवान एव मिठाइया बनवायी गई। कवि ने जिन व्यञ्जनो के नाम गिनाये हैं उनमे अधिकाश राजस्थानी मिष्ठान्न हैं। कवि के शब्दो मे इसका आस्वादन कीजिये—

१. विक्कमणरिंद सुपसिद्ध कालि, ढिल्ली पट्टणि घण कण विसालि।
सनवासी एयारह सएहि, परिवाडिए वरिसह परिगएहि॥

पकवान नीपजि नित नवां रे, मांडी मुरकी सेव ।
खाजा खाजडली दही घरां रे, रेफे घेवर हेव ॥२५॥

मोतीया लाड्डू मूंग तरगा रे, सेवइया अतिसार ।
काकरीय पड सूघीयारे, साकिरि मिश्रित सार ॥२६॥

सालीया तदुल सपडारे, उज्जल अखंड अपार ।
मूग मंडोरा अति भला रे, घृत अखडी धार ॥२७॥

राजुल का सौन्दर्य अवर्णनीय था । पावो के नूपुर मधुर शब्द कर रहे थे वे ऐसे लगते थे मानो नेमिनाथ को ही बुलारहे हो । कटि पर सुशोभित 'कनकती' चमक रही थी । अगुलियो मे रत्नजटित अगूठी, हाथो मे रत्नो की ही चूड़ियां तथा गले मे नवलख हार सुशोभित था । कानो मे झूमके लटक रहे थे । नयन कजरारे थे । हीरो मे जडी हुई ललाट पर राखड़ी (बोरला) चमक रही थी । इसकी वेणी दण्ड उतार (ऊपर से मोटी तथा नीचे से पतली) थी इन सब आभूषणो से वह ऐसी लगती थी कि मानो कही कामदेव के धनुष को तोड़ने जा रही हो—

पायेय नेउर रणझरिणरे, घूघरी नु घमकार ।
कटियअ सोहि रुडी मेखला रे झूमणु झलक सार ॥

रत्नजड़ित रूडी मुद्रकारे, करियल चूडीतार ।
वाहि विठा रूडा बहिरखा रे, हयिडोलि नवलखहार ॥

कोटिय टोडर रूयडुं रे, श्रवणे झबकि झाल ।
नानविट टीलु तप तपि रे, खीटलि खटकि चालि ॥

वाकीय भमरि सोहामणी रे, नयले काजल रेह ।
कामिधनु जाणे तोडीउरे, नर मग पाडवा एह ॥ ४६ ॥

हीरे जड़ी रूडी राखडी, वेणी दड उतार ।
मयरिण पन्नग जाणे पासीउरे, गोफणु लहि किसार ॥

नेमीकुमार ९ खण के रथ मे विराजमान थे जो रत्न जड़ित था तथा जिसमे हांसना; जाति के घोडे जुते हुये थे । नेमिकुमार के कानो मे कुण्डल एव मस्तक पर छत्र सुशोभित थे । वे श्याम वर्ण के थे तथा राजुल की सहेलिया उनकी ओर संकेत करके कह रही थी यही उसके पति है ?

नवखणु रथ सोवनमि रे, रयण मडित सुविसाल ।
हासना अश्व जिणि जोतस्या रे, लह लहधि जाय अपार ॥ ५१ ॥

कानेय कुंडल तपि तपि रे, मस्तकि छत्र सोहति।
सामला व्रण सोहामणुरे, सोई राजिल तोरू कंत ॥५२॥

इस प्रकार रचना में घटनाओं का अच्छा वर्णन किया गया है। अन्त मे कवि ने अपने गुरु को स्मरण करते हुए रचना की समाप्ति की है।

श्री यसकीरति सुपसाउलि, ब्रह्म यशोधर भणिसार।
चलण न छोडउ स्वामी तणा, मुझ भवचा दुःख निवार ॥६८॥
भणसि जिनेसर सांभलि रे, धन धन ते अवतार।
नव निधि तस घरि उपजि रे, ते तरसि रे ससार ॥६९॥

भाषा-गीत की भाषा राजस्थानी है। कुछ शब्दो का प्रयोग देखिये—

गासु—गाऊं गा (१) काइ करू—क्या करू (१) नीकल्या रे—निकला (६) तह्य, अह्य (८) तिहा (२१) नेउर (४३) आपणा (५३) तोरू (तुम्हारा) मोरू (मेरा) (५०) उतावलु (१३) पाठवी (२२)

छन्द—सम्पूर्ण गीत गुडी (गौडी) राग मे निबद्ध है।

५. बलिभद्र चौपई—यह कवि की अब तक उपलब्ध रचनाओ मे सबसे बडी रचना है। इसमे १८९ पद्य हैं जो विभिन्न ढाल, दूहा एवं चौपई आदि छन्दो मे विभक्त हैं। कवि ने इसे संम्वत् १५८५ में स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर मे सम्पूर्ण[1] किया था।

रचना मे श्रीकृष्ण जी के भाई बलिभद्र के चरित का वर्णन है। कथा का सक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

द्वारिका पर श्री कृष्ण जी का राज्य था। बलभद्र उनके बडे भाई थे। एक बार २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ का उधर बिहार हुआ। नगरी के नरनारियो के साथ वे दोनो भी दर्शनार्थ पधारे। बलभद्र ने नेमिनाथ से जब द्वारिका के भविष्य के बारे मे पूछा तो उन्होने १२ वर्ष बाद द्वीपायन ऋषि द्वारा द्वारिका दहन की भविष्यवाणी की। १२ वर्ष बाद ऐसा ही हुआ। श्रीकृष्ण एवं बलराम दोनो जगल में चले गये और जब श्रीकृष्ण जी सो रहे थे तो जरदकुमार ने हरिण के धोखे मे इन पर बाण चला दिया जिससे वहीं उनकी मृत्यु हो गई। जरदकुमार को जब वस्तु-स्थिति का पता लगा तो वह बहुत पछताये लेकिन फिर क्या होना था। बलभद्र जी

१. संवत् पनर पच्यासीर, स्कन्ध नगर मझारि।
भवणि अजित जिनवर तणी, ए गुण गाया सारि ॥१८८॥

श्रीकृष्ण जी को अकेला छोडकर पानी लेने गये थे, वापिस आने पर जब उन्हे मालूम हुआ तो वे बड़े शोकाकुल हुए एव रोने लगे और अपने भाई के मोह से छह मास तक उनके मृत शरीर को लिए घूमते रहें। अन्त मे एक मुनि ने जब उन्हे संसार की असारता बतलाई तो उन्हे भी वैराग्य हो गया और अन्त मे तपस्या करते हुए निर्वाण प्राप्त किया। चौपई की सम्पूर्ण कथा जैन पुराणो के आधार पर निबद्ध है।

चौपई प्रारम्भ करने के पूर्व सर्व प्रथम कवि ने अपनी लघुता प्रगट करते हुए लिखा है कि न तो उसे व्याकरण एव छंद का बोध है और न उचित रूप से अक्षर ज्ञान ही है। गीत एव कवित्त कुछ आते नही हैं लेकिन वह जो कुछ लिख रहा है वह सब गुरु के आशीर्वाद का फल है—

न लहुं व्याकरण न लहु छन्द, न लहु अक्षर न लहुं विन्द।
हूं मूरख मानव मतिहीन, गीत कवित्त नवि जाणुं कही ॥२॥
सूरज ऊग्यु तम हरि, जिय जलहर वूठि ताप।
गुरु वयणे पुण्य पामीइ, झडि भवतर पाप ॥५॥
मूरख पणि जे मति लहि, करि कवित अतिसार।
ब्रह्म यशोधर इम कहि, ते सहि गुरु उपगार ॥६॥

उस समय द्वारिका वैभव पूर्ण नगरी थी। इसका विस्तार १२ योजन प्रमाण था। वहा सात से तेरह मजिल के महल थे। बडे बड़े करोडपति सेठ वहा निवास करते थे। श्रीकृष्ण जी याचको को दान देने मे हर्षित होते थे, अभिमान नही करते थे। वहा चारो ओर वीर एव योद्धा दिखलाई देते थे। सज्जनो के अतिरिक्त दुर्जनो का तो वहा नाम भी नही था।

कवि ने द्वारिका का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इन्द्रपुरी अवतार।
बार जोयण ते फिर तु वसि, ते देखी जन मन उलसि ॥११॥
नव खण तेर खणा प्रासाद हह श्रेणि सम लागु वाद।
कोटीधज तिहा रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नही मणा ॥१२॥
याचक जननि देइ दान, न हीयडि हरष नही अभिमान।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नही दुर्जणा ॥१३॥
जिण भवने धज वड फरहरि, शिखर स्वर्ग सु वातज करि।
हेम मूरति पोढी परिमाण, एके रत्न अमूलिक जाण ॥१४॥

द्वारिका नगरी के राजा थे श्रीकृष्ण जी जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर थे। वे छप्पन करोड यादवो के अधिपति थे। इन्ही के वडे भाई थे वलभद्र। स्वर्ण के समान जिनका शरीर था। जो हाथी रूपी शत्रुओ के लिए सिंह थे तथा हल जिनका आयुध था। रेवती उनकी पटरानी थी। वडे २ वीर एव योद्धा उनके सेवक थे। वे गुणो के भण्डार तथा सत्यव्रती एव निर्मल-चरित्र के धारण करने वाले थे—

तस वधव अति रुयडु रोहिण जेहनी मात।
वलिभद्र नामि जाणयो, वसुदेव तेहनु तात ॥२८॥

कनक वर्ण सोहि जिसु, सत्य शील तनुवास।
हेमधार वरसि सदा, ईहण पूरि आस ॥२९॥

अरीयण मद गज केशरी, हल आयुध करिसार।
सुहड सुभट सेवि सदा, गिरुउ गुणह भडार ॥३०॥

पटराणी तस रेवती, शील सिरोमणि देह।
धर्म धुरा भालि सदा, पतिसु अविहुउ नेह ॥३१॥

उन दिनो नेमिनाथका विहार भी उधर ही हुआ। द्वारिका की प्रजा ने नेमिनाथ का खूव स्वागत किया। भगवान श्रीकृष्ण, वलभद्र आदि सभी उनकी वदना के लिए उनकी सभागृह मे पहुँचे। वलभद्र ने जव द्वारिका नगरी के बारे मे प्रश्न पूछा तो नेमिनाथ ने उसका निम्न शब्दो मे उत्तर दिया—

दूहा— सारी वाणी सभली, बोलि नेमि रसाल।
　　पूरव भवि अक्षर लखा, ते किम थाइ आल ॥७१॥

चुपई—द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी सघार।
मद्य भाड जे नामि कही, तेह थकी वली जलसि सही ॥

पौरलोक सवि जलसि जिसि, वे वधव नीकससु तिसि।
तह्य सहोदर जरा कुमार, ते हनि हाथि मारि मोरार ॥

बार वरस पूरि जे तलि, ए कारण होसि ते तलि।
जिणवर वाणी अमीय समान, सुणीय कुमर तव चाल्यु रानि ॥८०॥

वारह वर्ष पश्चात् वही समय आया। कुछ यादवकुमार अपेय पदार्थ पीने से उन्मत्त हो गए। वे नाना प्रकार की क्रियायेँ करने लगे। द्वीपायन मुनि को जो वन मे तपस्या कर रहे थे वे देखकर चिढाने लगे।

तिणि अवसरि ते पीछु नीर, विकल रूप ते थया शरीर।
ते परवत था पीछावलि, एकि विसि एक धरणी टलि ॥८२॥

एक नाचि एक गाइ गीत, एक रोइ एक हरषि चित्त।
एक नासि एक उडलि घरि, एक सुइ एक क्रीडा करि ॥८३॥

इणि परि नगरी आवि जिसि, द्विपायन मुनि दीठु तिसि।
कोप करीनि ताडि ताम, देर गालवली लेई नाम ॥८४॥

द्वीपायन ऋषि के शाप से द्वारिका जलने लगी और श्रीकृष्ण जी एव बलराम अपनी रक्षा का कोई अन्य उपाय न देखकर वन की ओर चले गये। वन मे श्री कृष्ण की प्यास बुझाने के लिए बलभद्र जल लेने चले गये। पीछे से जरदकुमार ने सोते हुये श्रीकृष्ण को हरिण समझ कर बाण मार दिया। लेकिन जब जरदकुमार को मालूम हुआ तो वे पश्चाताप की अग्नि मे जलने लगे। भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हे कुछ नही कहा और कर्मों की विडम्बना से कौन बच सकता है यही कहकर धैर्य धारण करने को कहा—

कहि कृष्ण सुणि जराकुमार, मूढ पणि मम बोलि गमार।
ससार तणी गति विषमी होइ, हीयडा माहि विचारी जोइ ॥११२॥

करमि रामचन्द वनगउ, करमि सीता हरणज भउ।
करमि रावण राज जटली, करमि लक विभीषण फली ॥११३॥

हरचन्द राजा साहस धीर, करमि अधमि घरि आण्यु वीर।
करमि नल नर चूकु राज, दमयन्ती वनि कीधी त्याज ॥११४॥

इतने मे वही पर बलभद्र आ गये और श्री कृष्ण जी को सोता हुआ जानकर जगाने लगे। लेकिन वे तब तक प्राणहीन हो चुके थे। यह जानकर बलभद्र रोने लगे तथा अनेक सम्बोधनो से अपना दुःख प्रकट करने लगे। कवि ने इसका बहुत ही मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है।

जल विण किम रहि माछलु, तिम तुझ विणु बध।
विरीइ वनडिउ सासीउ, असला रे सघ ॥१३०॥

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त वैराग्य गीत विजय कीर्ति गीत एव २५ से भी अधिक पद उपलब्ध हो चुके हैं। अधिकांश पदो मे नेमि राजुल के वियोग का कथानक है जिनमे प्रेम, विरह एव शृंगार की हिलोरें उठती है। कुछ पद वैराग्य एव जगत् की वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालने वाले है।

मूल्यांकन

'ब्रह्म यशोधर' की अब तक जितनी कृतिया उपलब्ध हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि वे हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। उनकी काव्य शैली परिमार्जित थी। वे किसी

भी विषय को सरस छन्वो मे प्रस्तुत करते थे। उन्होंने नेमिनाथ के जीवन पर कितने ही गीत लिखे, लेकिन सभी गीतो में अपनी २ विशेषताए है। उन्होने राजुल एव नेमिनाथ को लेकर कुछ श्रृंगार रस प्रधान पद एव गीत भी लिखे हैं और उनमे इस रस का अच्छा प्रतिपादन किया है। राजुलके सौन्दर्य वर्णनमें वे अपने पूर्व कवियो से कभी पीछे नही रहे। उन्होने राजुलके आभूषणो का एव बारातके लिए बनने वाले व्यञ्जनो का अत्यधिक सुन्दर वर्णन मे भी वे पाठको के हृदय को सहज ही द्रवित कर देते हैं। जब कवि राजुल के शब्दो को दोहराता है, 'नेमजी आवुन घरे घरे' तो पाठको को नेमिनाथ के विरह से राजुल की क्या मनोदशा हो रही होगी— इसका सहज ही पता चल जाता है।

'बलिभद्र रास'–जो उनकी सबसे अच्छी काव्य कृति है-श्री कृष्ण एव बलराम के सहोदर प्रेम की एक उत्तम कृति है। यह भी एक लघुकाव्य है, जो भाषा एव शैली की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। यशोघर कवि के काव्यो की एक और विशेषता यह है कि इन कृतियो की भाषा भी अधिक निखरी हुई है। उन पर गुजराती भाषा का प्रभाव कम एवं राजस्थानी का प्रभाव अधिक है। इस तरह यशोधर अपने समय के हिन्दी के अच्छे कवि थे।

भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य-प्रेमी, धर्म-प्रचारक एवं शास्त्रो के प्रबल विद्वान थे। जब वे भट्टारक बने उस समय भट्टारक सकलकीर्ति, एव उनके पट्ट शिष्य, प्रशिष्य भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण एव विजयकीर्ति ने अपनी सेवा, विद्वत्ता एव सास्कृतिक जागरूकता से इतना अच्छा वातावरण बना लिया था कि इन सन्तो के प्रति जैन समाज मे ही नही किन्तु जैनेतर-समाज मे भी अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। शुभचन्द्र ने भट्टारक ज्ञानभूषण एव भट्टारक विजयकीर्ति का शासनकाल देखा था। विजयकीर्ति के तो लाडले शिष्य ही नही थे किन्तु उनके शिष्यो मे सबसे अधिक प्रतिभावान् सन्त थे। इसलिए विजयकीर्ति की मृत्यु के पश्चात् इन्हे ही उस समय के सबसे प्रतिष्ठित, सम्मानित एव आकर्षक पद पर प्रतिष्ठापित किया गया।

इनका जन्म सवत् १५३०-४० के मध्य कभी हुआ होगा। ये जब बालक थे तभी से इनका इन भट्टारको से सम्पर्क स्थापित हो गया। प्रारम्भ मे इन्होने अपना समय सस्कृत एव प्राकृत भाषा के ग्रन्थो के पढने मे लगाया। व्याकरण एव छन्द शास्त्र मे निपुणता प्राप्त की और फिर भ. ज्ञानभूषण एव भ. विजयकीर्ति के सानिध्य मे रहने लगे। श्री वी. पी. जोहाकरपुर के मतानुसार ये संवत् १५७३ मे भट्टारक बने।[1] और वे इसी पद पर सवत् १६१३ तक रहे। इस तरह शुभचन्द्र ने अपने जीवन का अधिक भाग भट्टारक पद पर रहते हुये ही व्यतीत किया। बलात्कारगण की ईडर शाखा की गद्दी पर इतने समय तक सभवतः ये ही भट्टारक रहे। इन्होने अपनी प्रतिष्ठा एव पद का खूब अच्छी तरह सदुपयोग किया और इन ४० वर्षों मे राजस्थान, पजाब, गुजरात एव उत्तर प्रदेश मे साहित्य एव सस्कृति का उत्साहप्रद वातावरण उत्पन्न कर दिया।

शुभचन्द्र ने प्रारम्भ मे खूब अध्ययन किया। भाषण देने एव शास्त्रार्थ करने की कला भी सीखी। भ० बनने के पश्चात् इनकी कीर्ति चारो ओर व्याप्त हो गयी राजस्थान के अतिरिक्त इन्हे गुजरात, महाराष्ट्र, पजाब एव उत्तर प्रदेश के अनेक गाँव एव नगरों से निमन्त्रण मिलने लगे। जनता इनके श्रीमुख से धर्मोपदेश सुनने को अधीर हो उठती इसलिये ये जहां भी जाते भक्त जनो के पलक पावडे बिछ जाते।

१. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ संख्या १५८

इनकी वाणी मे आकर्षण था इसलिये एक ही बार के सम्पर्क मे वे किसी भी अच्छे व्यक्ति को अपना भक्त बनाने मे समर्थ हो जाते। समय का पूरी तरह सदुपयोग करते। जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ खोना इन्हे अच्छा नही लगता था। ये अपनी साथ ग्रथो के ढेर के ढेर एव लेखन सामग्री रखते। नवीन साहित्य के निर्माण मे इनकी अधिक रुचि थी। इनकी विद्वत्ता से मुग्ध होकर भक्त जन इनसे ग्रथ निर्माण के लिये प्रार्थना करते और ये उनके आग्रह से उसे पूरा करने का प्रयत्न करते। अपने शिष्यो द्वारा ये ग्रथो की प्रतिलिपिया करवाते और फिर उन्हें शास्त्र भण्डारो मे विराजमान करने के लिये अपने भक्तो से आग्रह करते। सवत् १५९० मे ईडर नगर के हूवड जातीय श्रावको ने ब्र० तेजपाल के द्वारा पुण्यास्रव कथा कोश की प्रति लिखवा कर इन्हे भेंट की थी। सवत् १५९९ मे डूंगरपुर के आदिनाथ चैत्यालय मे इन्ही के उपदेश से अगप्रज्ञप्ति की प्रतिलिपि करवा कर विराजमान की गयी थी। चन्दना चरित को इन्होने वाग्वर (वागड) मे निबद्ध किया और कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका को सवत् १६१३ मे सागवाडा मे समाप्त की। इसी तरह सवत् १६१७ मे पाण्डव-पुराण को हिसार (पजाब) मे किया गया।

विद्वत्ता

शुभचन्द्र शास्त्रो के पूर्ण मर्मज्ञ थे। ये षट् भाषा कवि-चक्रवर्ति कहलाते थे। छह भाषाओ मे सभवतः सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती एव राजस्थानी भाषायें थी। ये त्रिविध विद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम एव परमागम) के ज्ञाता थे। पट्टावलि के अनुसार ये प्रमाण-परीक्षा, पत्र परीक्षा, पुष्प परीक्षा (?) परीक्षा-मुख, प्रमाण-निर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुदचद्र, न्याय विनिश्चय, श्लोकवार्त्तिक, राजवार्त्तिक, प्रमेयकमल मार्त्तण्ड, आप्तमीमासा, अष्टसहस्री, चितामणिमीमासा विवरण वाचस्पति, तत्त्व कौमुदी आदि न्याय ग्रन्थो के, जैनेन्द्र, शाकटायन ऐन्द्र, पाणिनी, कलाप आदि व्याकरण ग्रन्थो के, त्रैलोक्यसार गोम्मट्टसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सुविज्ञप्ति, अध्यात्माष्टसहस्री (?)और छन्दोलकार आदि महाग्रन्थो के पारगामी विद्वान् थे।[1]

शिष्य परम्परा

वैसे तो भट्टारको के सघ मे कितने ही मुनि, ब्रह्मचारी, साध्विया तथा विद्वान्-गण रहते थे। इसलिए इनके संघ में भी कितने ही साधु थे लेकिन कुछ प्रमुख शिष्य थे जिनमे सकलभूषण, ब्र. तेजपाल, वर्णी क्षेमचंद्र, सुमतिकीर्त्ति, श्रीभूषण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आचार्य सकलभूषण ने अपने उपदेश रत्नमाला मे

1. देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत-जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ सख्या ३८३

भट्टारक शुभचन्द्र का नाम बडे ही आदर के साथ लिया है और अपने आपको उनका शिष्य लिखने मे गौरव का अनुभव किया है। यही नही करकुण्ड चरित्र को तो शुभचन्द्र ने सकल भूषण की सहायता से ही समाप्त किया था। वर्णी श्रीपाल ने इन्हे पाण्डवपुराण की रचना मे सहायता दी थी। जिसका उल्लेख शुभचन्द्र ने पाण्डव-पुराण[1] की प्रशस्ति मे सुन्दर ढग से किया है:—

सुमतिकीर्त्ति इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पट्ट शिष्य बने थे। ये भी प्रकाड विद्वान् थे और इन्होने कितने ही ग्रन्थो की रचना की थी। इस तरह इन्होने अपने सभी शिष्यो को योग्य बनाया और उन्हे देश एव समाज सेवा करने को प्रोत्साहित किया।

प्रतिष्ठा समारोहों का सचालन

अन्य भट्टारको के समान इन्होने भी कितनी ही प्रतिष्ठा-समारोहो मे भाग लिया और वहा होने वाले प्रतिष्ठा विधानो को सम्पन्न कराने मे अपना पूर्ण योग दिया। भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित आज भी कितनी ही मूर्त्तियाँ उदयपुर, सागवाडा, डू गरपुर, जयपुर आदि मन्दिरो मे विराजमान हैं। पचायतो की ओर से ऐसे प्रतिष्ठा-समारोहो मे सम्मिलित होने के लिए इन्हें विधिवत निमन्त्रण-पत्र मिलते थे। और वे संघ सहित प्रतिष्ठाओ मे जाते तथा उपस्थित जन समुदाय को धर्मोपदेश का पान कराते। ऐसे ही अवसरो पर ये अपने शिष्यो का कभी २ दीक्षा समारोह भी मनाते जिससे साधारण जनता भी साधु जीवन की ओर आकर्षित होती। सवत् १६०७ मे इन्ही के उपदेश से पञ्चपरमेष्टि की मूर्त्ति की स्थापना की गई थी[1]।

इसी समय की प्रतिष्ठापित एक ११½"×३०" अवगाहना वाली नदीश्वर द्वीप के चैत्यालयो की धातु की प्रतिमा जयपुर के लश्कर के मन्दिर मे विराजमान है। यह प्रतिष्ठा सागवाडा मे स्थित आदिनाथ के मन्दिर मे महाराजाधिराज श्री आसकरण के शासन काल मे हुई थी। इसी तरह सवत् १५८१ मे इन्ही के उपदेश से हूंबड

---

१ शिष्यस्तस्य समृद्धिबुद्धिविशदो यस्तर्कवेदोवरो,
वैराग्यादिविशुद्धिवृन्दजनक श्रीपालवर्णीमहान।
संशोध्याखिलपुस्तकं वरगुणं सत्पांडवानामिदं।
तेनालेखि पुराणमर्थनिकरं पूर्वं वरे पुस्तके॥

१. सवत् १६०७ वर्षे वैशाख वदी २ गुरु श्री मूलसंघे भ० श्री शुभचन्द्र गुरूपदेशात् हूंबड संखेश्वरा गोत्रे सा० जिना।

भट्टारक सम्प्रदाय-पृष्ठ संख्या १४५

जातीय श्रावक साह हीरा राजू आदि ने प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न करवाया था।[1]

साहित्यिक सेवा

शुभचन्द्र ज्ञान के सागर एवं अनेक विद्याओं मे पारगत थे। वे वक्तृत्व-कला मे पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होंने जो साहित्य सेवा अपने जीवन मे की थी वह इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। अपने सघ की व्यवस्था तथा धर्मोपदेश एव आत्म साधना के अतिरिक्त जो भी समय इन्हें मिला उसका साहित्य-निर्माण मे ही सदुपयोग किया गया। वे स्वय ग्रन्थो का निर्माण करते, शास्त्र भण्डारो की सम्हाल करते, अपने शिष्यो से प्रतिलिपिया करवाते, तथा जगह २ शास्त्रागार खोलने की व्यवस्था कराते थे। वास्तव मे ऐसे ही सन्तो के सद्प्रयास से भारतीय साहित्य सुरक्षित रह सका है।

पाण्डवपुराण इनकी सवत् १६०८ की कृति है। उस समय साहित्यिक-जगत मे इनकी ख्याति चरमोत्कर्ष पर थी। समाज मे इनकी कृतिया प्रिय बन चुकी थी और उनका अत्यधिक प्रचार हो चुका था। सवत् १६०८ तक जिन कृतियो को इन्होने समाप्त कर लिया था[1] उनमे (१) चन्द्रप्रभ चरित्र (२) श्रेणिक चरित्र (३) जीवधर चरित्र (४) चन्दना कथा (५) अष्टाह्निका कथा (६) सद्वृत्तिशालिनी (७) तीन चौवीसीपूजा (८) सिद्धचक्र पूजा (९) सरस्वती पूजा (१०) चिंतामणिपूजा (११) कर्मदहन पूजा (१२) पार्श्वनाथ काव्य पजिका (१३) पल्य व्रतोद्यापन (१४) चारित्र शुद्धिविधान (१५) सशयवदन विदारण (१६) अपशब्द खण्डन (१७) तत्व निर्णय (१८) स्वरूप सबोधन वृत्ति (१९) अध्यात्म तरगिणी (२०) चिंतामणि प्राकृत व्याकरण (२१) अगप्रज्ञप्ति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उक्त साहित्य भ० शुभचन्द्र के कठोर परिश्रम एव त्याग का फल है। इसके पश्चात इन्होने और भी कृतिया लिखी।[2] संस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त इनकी कुछ रचनायें हिन्दी मे भी उपलब्ध होती हैं। लेकिन कवि ने पाण्डव पुराण मे उनका कोई उल्लेख नही किया

---

१. संवत् १५८१ वर्षे पोष वदी १३ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे श्री भ० विजयकीर्त्ति तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्र गुरूपदेशात् हूंबड जाति साह हीरा भा० राजू सुत सं० तारा द्वि० भार्या पोई सुत सं० माका भार्या हीरा दे .... भा० नारग दे भ्रा० रत्नपाल भा० विराला दे सुत रखभदास नित्यं प्रणमति।

२. विस्तृत प्रशस्ति के लिए देखिये लेखक द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसग्रह पृष्ठ संख्या ७

है। राजस्थान के प्राय: सभी ग्रन्थ भण्डारों मे इनकी अब तक जो कृतिया उपलब्ध हुई हैं वे निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत रचनाएं

१. चन्दप्रभ चरित्र
२ करकण्डु चरित्र
३ कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका
४. चन्दना चरित्र
५. जीवन्धर चरित्र
६. पाण्डवपुराण
७. श्रेणिक चरित्र
८. सज्जनचित्तवल्लभ
९. पार्श्वनाथ काव्य पजिका
१०. प्राकृत लक्षण टीका
११. अध्यात्मतरगिणी
१२. अम्बिका कल्प
१३. अष्टाह्निका कथा
१४. कर्मदहन पूजा
१५. चन्दनषष्ठिव्रत पूजा
१६. गणधरवलय पूजा
१७. चारित्रशुद्धिविधान
१८. तीस चौबीसी पूजा
१९. पञ्चकल्याणक पूजा
२०. पल्यव्रतोद्यापन
२१. तेरहद्वीप पूजा
२२. पुष्पाजलिव्रत पूजा
२३. सार्द्धद्वयद्वीप पूजा
२४. सिद्धचक्र पूजा

हिन्दी रचनायें

१. महावीर छद
२ विजयकीर्त्ति छंद
३. गुरु छंद
४. नेमिनाथ छद
५. तत्त्वसार दूहा
६ दान छद
७. अष्टाह्निकागीत, क्षेत्रपालगीत एव पद आदि।

उक्त सूची के आधार पर निम्न तथ्य निकाले जा सकते हैं—

१. कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, सज्जन चित्त वल्लभ, अम्बिकाकल्प, गणधर वलय पूजा, चन्दनषष्ठिव्रतपूजा, तेरहद्वीपपूजा, पञ्च कल्याणक पूजा, पुष्पाजलि व्रत पूजा, सार्द्धद्वयद्वीप पूजा एव सिद्धचक्रपूजा आदि सवत् १६०८ के पश्चात् अर्थात् पाण्डवपुराण के बाद की कृतिया हैं।

२. सदवृत्तिशालिनी, सरस्वतीपूजा, चिंतामणिपूजा, संशय वदन-विदारण, अपशब्दखन्डन, तत्वनिर्णय, स्वरूपसबोधनवृत्ति, एवं अंगप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ अभी तक राजस्थान के किसी भण्डार मे प्रति उपलब्ध नही हो सके है।

३. हिन्दी रचनाओ का कवि द्वारा उल्लेख नही किया जाना इन रचनाओ का विशेष महत्व की कृतियां नही होना बतलाया जाता है क्योकि गुरु छन्द एवं

विजयकीर्त्ति छन्द तो कवि की उस समय की रचनायें मालूम पडती है जव विजय कीर्त्ति का यश उत्कर्ष पर था।

इस प्रकार भट्टारक शुभचन्द्र १६–१७ वी शताब्दी के महान साहित्य सेवी थे जिनकी कीर्त्ति एव प्रशसा मे जितना भी कहा जावे वही अल्प होगा। वे साहित्य के कल्पवृक्ष थे जिससे जिसने जिस प्रकार का साहित्य मागा वही उसे मिल गया। वे सरल स्वभावी एव व्युत्पन्नमति सन्त थे। भक्त जनो के सिर इनके पास जाते ही स्वत ही श्रद्धा से झुक जाते थे। सकलकीर्त्ति के सम्प्रदाय के भट्टारको मे इतना अधिक साहित्योपासक भट्टारक कभी नही हुआ। जव वे कही विहार करते तो सरस्वती स्वय उन पर पुष्प वखेरती थी। भापण करते समय ऐसा प्रतीत होता था मानो दूसरे गणधर ही वोल रहे हो। अव यहा उनकी कुछ प्रसिद्ध कृतियो का सामान्य परिचय दिया जा रहा है—

१. करकण्डु चरित्र

करकण्डु राजा का जीवन इस काव्य की मुख्य कथा वस्तु है। यह एक प्रवन्ध काव्य है जिसमे १५ सर्ग है। इसकी रचना सवत् १६११ मे जवाछपुर मे समाप्त हुई थी। उस नगर के आदिनाथ चैत्यालय मे कवि ने इसकी रचना की। सकलभूषण जो इस रचना मे सहायक थे शुभचन्द्र के प्रमुख शिष्य थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् सकलभूषण को ही भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया था। रचना पठनीय एव सुन्दर है। 'चरित्र' की अन्तिम प्रशस्ति निम्न प्रकार है–

श्री मूलसंघे कृति नंदिसघे गच्छे वलात्कार इदं चरित्र।
पूजाफलेद्ध करकुण्डराज्ञो भट्टारकश्रीशुभचन्द्रसूरिः ॥५४॥
द्व्याष्टे विक्रमतः शते समहते चैकादशाब्दाधिके।
भाद्रे मासि समुज्वले युगतिथौ खड्गे जावाछपुरे।
श्रीमच्छ्रीवृषभेश्वरस्य सदने चक्रे चरित्र त्विद।
राज्ञ. श्रीशुभचन्द्रसूरी यतिपश्चपाधिपस्याद् ध्रुव ॥५५॥
श्रीमत्सकलभूषेण पुराणे पाण्डवे कृत।
साहाय येन तेनाऽत्र तदाकारिस्वसिद्धये ॥५६॥

२ अध्यात्मतरगिणी

आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार अध्यात्म विपय का उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। जिस पर सस्कृत एव हिन्दी मे कितनी ही टीकाए उपलब्ध होती हैं। अध्यात्मतरगिणी सवत् १५७३ की रचना है जो आचार्य अमृतचद्र के समयसार के कलशो पर आधारित है। यह रचना कवि की प्रारम्भिक रचनाओ

मे से है। ग्रन्थ की भाषा क्लिष्ट एव समास बहुल है। लेकिन विषय का अच्छा प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ का एक पद्य देखियेः—

जयतु जितविपक्षः पालिताशेषशिष्यो
विदितनिजस्वतत्त्वश्चोदितानेकसत्त्व ।
अमृतविधुयतीश कुन्दकुन्दोगणेश
श्रुतसुजिनविवाद स्याद्विवादाधिवादः ।।

इसकी एक प्रति कामा के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। प्रति १०'×४½" आकार की है तथा जिसमे १३० पत्र हैं। यह प्रति सवत् १७९५ पौष वुदी १ शनिवार को लिखी हुई है। समयसार पर आधारित यह टीका अभी तक अप्रकाशित है।

३. कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका

प्राकृतभाषा मे निवद्ध स्वामी कार्त्तिकेय की 'बारस अनुपेहा' एक प्रसिद्ध कृति है। इसमे आध्यत्मिक रस कूट २ कर भरा हुआ है। तथा ससार की वास्तविकता का अच्छा चित्रण मिलता है। इसी कृति की सस्कृत टीका भ० शुभचन्द्र ने लिखी जिससे इसके अध्ययन, मनन एव चिन्तन का समाज मे और भी अधिक प्रचार हुआ और इस ग्रन्थ को लोकप्रिय बनाने मे इस टीका को भी काफी श्रेय रहा। टीका करने मे इन्हें अपने शिष्य सुमतिकीर्त्ति से सहायता मिली जिसका इन्होंने ग्रन्थ प्रशस्ति मे सामार उल्लेख किया है।[1] ग्रन्थ रचना के समय कवि हिसार (हरियाणा) नगर मे थे और इसे इन्होने सवत् १६०० माघ सुदी ११ के दिन समाप्त की थी[2]

अपनी शिष्य परम्परा मे सबसे अधिक व्युत्पन्नमति एव शिष्य वर्णी क्षीमचंद्र के आग्रह से इसकी टीका लिखी गई थी।[3] टीका सरल एव सुन्दर है तथा गाथाओ

---

१. तदन्वये श्रीविजयादिकीर्त्तिः तत्पट्टधारी शुभचन्द्रदेवः।
तेनेयमाकारि विशुद्धटीका श्रीमत्सुमत्यादिसुकीर्त्तिकीर्त्तेः ।।४५।।

२. श्रीमत् विक्रमभूपतेः परमिते वर्षे शते षोडशे,
माघे मासिदशाग्रवह्निमहिते ख्याते दशम्यां तिथौ।
श्रीमच्छ्रीमहीसार-सार-नगरे चैत्यालये श्रीपुरो.।
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्रदेवविहिता टीका सदा नन्दतु ।।५।।

३. वर्णी श्री क्षेमचन्द्रेण विनयेन कृत प्रार्थना।
शुभचन्द्र-गुरो स्वामिन, कुरु टीकां मनोहरा ।।६।।

के भावो की ऐसी व्याख्या अन्यत्र मिलना कठिन है । ग्रन्थ मे १२ अधिकार है । प्रत्येक अधिकार मे एक २ भावना का वर्णन है ।

४ जीवन्धर चरित्र

यह इनका प्रवन्ध काव्य है जिसमे जीवन्धर के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है । काव्य मे १३ सर्ग हैं । कवि ने जीवन्धर के जीवन को धर्मकथा के नाम से सम्वोधित किया है । इसकी रचना सवत् १६०३ मे समाप्त हुई थी । इस समय शुभचन्द्र किसी नवीन नगर मे विहार कर रहे थे । नगर मे चन्द्रप्रभ जिनालय था और उसीमे एक समारोह के साथ इस काव्य की समाप्ति की थी । [४]

५. चन्द्रप्रभ चरित्र

चन्द्रप्रभ आठवें तीर्थंकर थे । इन्ही के पावन चरित्र का कवि ने इस काव्य के १२ सर्गों मे वर्णन किया है । काव्य के अन्त मे कवि ने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि न तो वह छन्द अलकारो से परिचिन है और न काव्य-शास्त्र के नियमो मे पारगत है । उसने न जैनेन्द्र व्याकरण पढी है, न कलाप एव शाकटायन व्याकरण देखी है । उसने त्रिलोकसार एव गोम्मटसार जैसे महान् ग्रथो का अध्ययन भी नही किया है । किन्तु रचना भक्तिवश की गई है ।[५]

६ चन्दना–चरित्र

यह एक कथा काव्य है जिसमे सती चन्दना के पावन एव उज्ज्वल जीवन का वर्णन किया गया है । इसके निर्माण के लिए कितने ही शास्त्रो एव पुराणो का अध्ययन करना पडा था । एक महिला के जीवन को प्रकाश मे लाने वाला यह सभवत प्रथम काव्य है । काव्य मे पाच सर्ग हैं । रचना साधारणत अच्छी है तथा पढने योग्य है । इसकी रचना वागड प्रदेश के डूगरपुर नगर मे हुई थी —

शास्त्रण्यनेकान्यवगाह्य कृत्वा पुराणसल्लक्षणकानि भूय ।
सच्चदना चारू चरित्रमेतत् चकार च श्री शुभचन्द्रदेव ।।९५।।

× × × ×

वाग्वरे वाग्वरे देशे, वाग्वरै विदिते क्षितौ ।
चदनाचरित चक्रे, शुभचन्द्रो गिरीपुरे ।।२०८।।

---

४. श्रीमद् विक्रम भूपतेर्वसुहत द्वैतेशते सप्तह,
वेदैर्न्यूनतरे समे शुभतरेपि मासे वरे च शुचौ ।
वारे गीष्पतिके त्रयोदश तियौ सन्नूतने पत्तने ।
श्री चन्द्रप्रभधाम्नि वै विरचित चेदमया तोपयत. ।।७।।

हिन्दी कृतिया

सस्कृत के समान हिन्दी मे भी 'शुभचन्द्र' की अच्छी गति थी। अब तक कवि की ७ से भी अधिक लघु रचनाए उपलब्ध हो चुकी है और राजस्थान एवं गुजरात के शास्त्र भण्डारो मे सभवतः और भी रचनाए उपलब्ध हो जावें।

१ महावीर छन्द—यह महावीर स्वामी के स्तवन के रूप मे है। पूरे स्तवन मे २७ पद्य हैं। स्तवन की भाषा सस्कृत-प्रभावित है तथा काव्यत्व पूर्ण है। आदि और अन्तिम भाग देखिये —

आदि भाग

प्रणमीय वीर विवुह जण रे जण, मदमइ मान महाभय भंजण।
गुण गण वर्णन करीय वखाणु, यती जण योगीय जीवन जाणु॥
मेह गेह गुह देश विदेहह, कुडलपुर वर पुहवि सुदेहह।
सिद्धि वृद्धि वर्द्धक सिद्धारथ, नरवर पूजित नरपति सारथ॥

अन्तिम भाग —

सिद्धारथ सुत सिद्धि वृद्धि वाछित वर दायक,
प्रियकारिणी वर पुत्र सप्तहस्तोन्नत कायक।
द्वासप्तति वर वर्ष आयु सिंहाकसु मडित,
चामीकर वर वर्ण शरण गोतम यती मडित।
गर्भ दोष दूषण रहित शुद्ध गर्भ कल्याण करण,
'शुभचन्द्र' सूरि सेवित सदा पुहवि पाप पकह हरण॥

२. विजयकीर्ति छन्द

यह कवि की ऐतिहासिक कृति है। कवि द्वारा जिसमे अपने गुरू 'भ० विजयकीर्त्ति' की प्रशसा मे उक्त छन्द लिखा गया है। इसमे २९ पद्य हैं-जिसमे भट्टारक विजयकीर्त्ति को कामदेव ने किस प्रकार पराजित करना चाहा और उसमे उसे स्वय को किस प्रकार मुह की खानी पडी इसका अच्छा वर्णन दे रखा है। जैन-साहित्य मे ऐसी वहुत कम कृतिया है जिनमे किसी एक सन्त के जीवन पर कोई रूपक काव्य लिखा गया हो।

रूपक काव्य की भाषा एव वर्णन शैली दोनो ही अच्छी है। इसके नायक हैं 'भ० विजयकीर्त्ति' और प्रतिनायक कामदेव हैं। मत्सर, मद, माया, सप्त व्यसन आदि कामदेव की सेना के सैनिक थे तथा क्रोध मान, माया और लोभ उसकी सेना

के नायक थे। 'भ० विजयकीर्त्ति' कब घबराने वाले थे, उन्होने शम, दम एव यम की सेना को उनसे भिडा दिया। जीवन मे पालित महाव्रत उनके अ ग रक्षक थे तव फिर किसका साहस था, जो उन्हे पराजित कर सकता था। अन्त मे इस लडाई मे कामदेव बुरी तरह पराजित हुआ और उसे वहा से भागना पडा—

भागो रे मयण जाई अनग वेगि रे थाई।
पिसिर मनर माहि मुकरे ठाम।
रीति र पायरि लागी मुनि काहने वर मागी,
दुखि र काटि र जागी जपई नाम ॥
मयण नाम र फेडी आपणी सेना रे तेडी,
आपइ ध्यानती रेडी यतीय वरो।
श्री विजयकीर्त्ति यति अभिनवो,
गच्छपति पूरव प्रकट कीनि मुकनिकरो ॥२८॥

३ गुरू छन्द ·

यह भी ऐतिहासिक छन्द है जिसमे 'भ० विजयकीर्त्ति का' गुणानुवाद किया गया है। इस छन्द से विजयकीर्त्ति के माता–पिता का नाम कुअरि एव गगासहाय के नामो का प्रथम बार परिचय मिलता है। छन्द मे ११ पद्य हैं।

४ नेमिनाथ छन्द :

२५ पद्यो मे निवद्ध इस छन्द मे भगवान् नेमिनाथ के पावन जीवन का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा भी सस्कृत निष्ठ है। विवाह मे किस प्रकार आभूषणो एवं वाद्य यन्त्रो के शब्द हो रहे थे—इसका एक वर्णन देखिये—

तिहां तड तडई तव लीय ना दिन वलीय भेद भंभाबजाइ,
झकारि रूडि सहित चू डी भेर नादह गज्जइ।
झण झणण करती टणण धरती सद्ध बोल्लइ झल्लरी।
घुम घुमक करती करण हरती एहवज्जि सुन्दरी ॥ १८ ॥
तण तणण टका नाद सुन्दर ताति मन्दर वण्णिया।
धम धमह नादि धणण करती घुग्घरी सुहकारीया।
भु भुक बोलइ सद्धि सोहइ एह भु गल सारय।
कण कणण को को नादि वादि सुद्ध सादि रम्मरण ॥ १९ ॥

५. दान छन्द :

यह एक लघु पद है, जिसमे कृपणता की निन्दा एव दान की प्रशसा की गई है। इसमे केवल २ पद्य हैं।

उक्त सभी पांचो कृतियाँ दि० जैन मन्दिर, पाटोदी, जयपुर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत हैं।

६. तत्वसार दूहा :

'तत्वसार दूहा' की एक प्रति कुछ समय पूर्व जयपुर के ठोलियो के मन्दिर के शास्त्र भडार मे उपलब्ध हुई थी। रचना मे जैन सिद्धान्त के अनुसार सात तत्वों का वर्णन किया गया है। इसलिए यह एक सैद्धान्तिक रचना है। तत्वो के अतिरिक्त साधारण जनता की समझ मे आसकने वाले अन्य कितने ही विषयो को कवि ने अपनी इस रचना मे लिया है। १६वी शताब्दी मे ऐसी रचनाओ के अस्तित्व से प्रकट होता है कि उस समय हिन्दी भाषा का अच्छा प्रचलन था। तथा काव्य, कथा चरित, फागु, वेलि आदि काव्यात्मक विषयो के अतिरिक्त सैद्धान्तिक विषयो पर भी रचनाएँ प्रारम्भ हो गई थी।

'तत्वसार दूहा' मे ९१ दोहे एवं चौपई हैं। भाषा पर गुजराती का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, क्योकि भट्टारक शुभचन्द्र का गुजरात से पर्याप्त सम्पर्क था। यह रचना 'दुलहा' नामक श्रावक के अनुरोध से लिखी गयी थी। कवि ने उसके नाम का कितने ही पद्यो मे उल्लेख किया है—

> रोग रहित सगति सुखी रे, सपदा पूरण ठाण।
> धर्म बुद्धि मन शुद्धडी 'दुल्हा' अनुक्रमिजाण ॥ ६ ॥

तत्वों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जिनेन्द्र ही एक परमात्मा है और उनकी वाणी ही सिद्धान्त है। जीवादि सात तत्वों पर श्रद्धान करना ही सच्चा सम्यग्दर्शन है।

> देव एक जिन देव रे, आगम जिन सिद्धान्त।
> तत्व जीवादिक सद्दहण, होइ सम्मत अभ्रांत ॥ १७ ॥

मोक्ष तत्व का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—

> कर्म कलंक विकारनो रे, निःशेष होयि नाश।
> मोक्ष तत्व श्री जिनकही, जाणवा भानु प्रकाश ॥ २६ ॥

आत्मा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है। कि किसी भी आत्मा उच्च अथवा नीच नहीं है, कर्मों के कारण ही उसे उच्च एव नीच की संज्ञा दी जाती है।

और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आत्मा तो राजा है-वह शूद्र कैसे हो सकती है।

उच्च नीच नवि अप्पा हुयि, कर्म कलक तणो की तु सोई।
वभण क्षत्रिय वैश्य न शुद्र, अप्पा राजा नवि होय शुद्र ॥ ७ ॥

आत्मा की प्रशंसा मे कवि ने आगे भी लिखा है :—

अप्पा धनी तवि नवि निर्धन्न, नवि दुर्बल नवि अप्पा धन्न।
मूर्ख हर्ष द्वेष नविने जीव, नवि सुखी नवि दुखी अतीव ॥ ७१ ॥

× × × ×

सुक्ख अनंत बल-वली, रे अनन्त चतुष्टय ठाम।
इन्द्रिय रहित मनो रहित, शुद्ध चिदानन्द नाम ॥ ७७ ॥

रचना काल :

कवि ने अपनी यह रचना कब समाप्त की थी-इसका उसने कोई उल्लेख नही किया है, लेकिन सभवत ये रचनाए उनके प्रारम्भिक जीवन की रचनाए रही हो। इसलिए इन्हे सोलहवी शताब्दी के अन्तिम चरण की रचना मानना ही उचित होगा। रचना समाप्त करते हुए कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है।

ज्ञान निज भाव शुद्ध चिदानन्द चीततो, मूको माया मेह गेह देहए।
सिद्ध तणा सुखजि मलहरहि, आत्मा भावि शुभ एहए।
श्री विजय कीर्ति गुरु मनी धरी, ध्याउ शुद्ध चिद्रूप।
भट्टारक श्री शुभचन्द्र भणि था तु शुद्ध सरूप ॥ ९१ ॥

कृति का प्रथम पद्य निम्न प्रकार है —

समयसार रस साभलो, रे सम रवि श्री समिसार।
समयसार सुख सिद्धना सीझि सुक्ख विचार ॥ १ ॥

मूल्यांकन

भ. शुभचन्द्र की सस्कृत एव हिन्दी रचनायें एव भाषा, काव्यतत्व एव वर्णन शैली सभी दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। सस्कृत भाषा के तो ये अधिकारी आचार्य थे ही हिन्दी काव्य क्षेत्र मे भी वे प्रतिभावान कवि थे। यद्यपि हिन्दी भाषा मे उन्होंने कोई

बडा काव्य नही लिखा किन्तु अपनी लघु रचनाओ मे भी उन्होने अपनी काव्य निर्माण प्रतिभा की स्पष्ट छाप छोड दी है। उनका कार्य क्षेत्र वागड प्रदेश एव गुजरात प्रदेश का कुछ भाग था लेकिन इनकी रचनाओ मे गुजराती भाषा का प्रभाव नही के बराबर रहा है। कवि के हिन्दी काव्यो की भाषा सस्कृत निष्ठ है। कितने ही सस्कृत के शब्दो का अनुस्वार सहित ज्यो का त्यो ही प्रयोग कर दिया गया हैं। वे किसी भी कथा एव जीवन चरित को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने मे दक्ष थे। महावीर छन्द, नेमिनाथ छन्द इसी श्रेणी की रचनायें है।

सस्कृत काव्यो की दृष्टि से तो शुभचन्द्र को किसी भी दृष्टि से महाकवि से कम नही कहा जा सकता। उनके जो विविध चरित काव्य हैं उनमे काव्यगत सभी गुण पाये जाते हैं। उनके सभी काव्य सर्गो मे विभक्त हैं एव चरित काव्यो मे अपेक्षित सभी गुण इन काव्यो मे देखने को मिलते हैं। काव्य रचना के साथ साथ ही उन्होंने कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा की सस्कृत भाषा मे टीका लिखकर अपने प्राकृत भाषा के ज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया है। अध्यात्मतरगिणी की रचना करके उन्होने अध्यात्मवाद का प्रचार किया। वास्तव मे जैन सन्तो की १७-१८ वी शताब्दि तक यह एक विशेषता रही कि वे सस्कृत एव हिन्दी में समान गति से काव्य रचना करते रहे। उन्होने किसी एक भाषा का ही पल्ला नही पकडा किन्तु अपने समय की प्रमुख भाषाओ मे ही काव्य रचना करके उनके प्रचार एव प्रसार मे सहयोगी बने। भ० शुभचन्द्र अत्यधिक उदार मनोवृत्ति के साधु थे। उन्होने अपने गुरू विजयकीर्त्ति के प्रति विभिन्न लघु रचनाओ मे भावभरी श्रद्धाजली अर्पित की है वह उनकी महानता का सूचक है। अब समय आगया है जब कवि के काव्यो की विशेषताओ का व्यापक अध्ययन किया जावे।

सन्त शिरोमणि वीरचन्द्र

भट्टारकीय वलात्कारगण शाखा के सस्थापक भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति थे, जो सत शिरोमणि भट्टारक पद्मनन्दि के शिष्यो मे से थे। जब देवेन्द्रकीर्त्ति ने सूरत मे भट्टारक गादी की स्थापना की थी, उस समय भट्टारक सकलकीर्ति का राजस्थान एव गुजरात मे जबरदस्त प्रभाव था और समवत इसी प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से देवेन्द्रकीर्त्ति ने एक और नयी भट्टारक सस्था को जन्म दिया। भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति के पीछे एव वीरचन्द्र के पहिले तीन और भट्टारक हुए जिनके नाम हैं विद्यानन्दि (स० १४९९–१५३७), मल्लिभूषण (१५४४–५५) और लक्ष्मीचन्द्र (१५५६–८२)। 'वीरचन्द्र' भट्टारक लक्ष्मीचन्द के शिष्य थे और इन्ही की मृत्यु के पश्चात् ये भट्टारक बने थे। यद्यपि इनका सूरतगादी से सम्बन्ध था, लेकिन ये राजस्थान के अधिक समीप थे और इस प्रदेश मे खूब विहार किया करते थे।

'सन्त वीरचन्द्र' प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। व्याकरण एव न्याय शास्त्र के प्रकाण्ड वेत्ता थे। छन्द, अलकार, एव सगीत शास्त्र के मर्मज्ञ थे। वे जहा जाते अपने भक्तो की सख्या बढा लेते एव विरोधियो का सफाया कर देते। वाद–विवाद मे उनसे जीतना बडे २ महारथियो के लिए भी सहज नही था। वे अपने साधु जीवन को पूरी तरह निभाते और गृहस्थो को सयमित जीवन रखने का उपदेश देते। एक भट्टारक पट्टावली मे उनका निम्न प्रकार परिचय दिया गया है :—

"तदवशमडन–कदर्पदर्पदलन–विश्वलोकहृदयरजनमहाव्रतीपुरदराणा, नवसहस्रप्रमुखदेशाधिपराजाधिराजश्रीअर्जुनजीवराजसभामध्यप्राप्तसन्मानाना, षोडशवर्षपर्यन्तशाकपाकपक्वान्नशाल्योदनादिसर्पिप्रभृतिसरसहारपरिवर्जिताना, दुर्वारवादिसगपर्वतीचूर्णीकरणवज्रायमानप्रथमवचनखडनपडिताना, व्याकरणप्रमेयकमलमार्त्तण्डछदोलकृतिसारसाहित्यसगीतसकलतर्कसिद्धान्तागमशास्त्रसमुद्रपारंगताना, सकलमूलोत्तरगुणगणमणिमडितविबुधवरश्रीवीरचन्द्रभट्टारकाणा ·"

उक्त प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वीरचन्द्र ने नवसारी के शासक अर्जुन जीवराज से खूब सम्मान पाया तथा १६ वर्ष तक नीरस अहार का सेवन किया। वीरचन्द्र की विद्वत्ता का इनके बाद होने वाले कितने ही विद्वानो ने उल्लेख किया है। भट्टारक शुभचन्द्र ने अपनी कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा की सस्कृत टीका मे इनकी प्रशसा मे निम्न पद्य लिखा है :—

भट्टारकपदाधीश - मूलसघे विदावरा: ।
रमावीरेन्दु-चिद्रूप: गुरवो हि गणेशिन: ॥१०॥

भ० सुमतिकीर्ति ने इन्हे वादियो के लिए अजेय स्वीकार किया है और उनके लिए वज्र के समान माना है। अपनी प्राकृत पचसग्रह की टीका मे इनके यश को जीवित रखने के लिए निम्न पद्य लिखा है —

दुर्वारिदुर्वादिकपर्वताना वज्रायमानो वरवीरचन्द्र. ।
तदन्वये सूरिवरप्रधानो ज्ञानादिभूषो गणिगच्छराज ॥

इसी तरह 'भ० वादिचन्द' ने अपनी सुभगसुलोचना चरित मे वीरचन्द्र की विद्वत्ता की प्रशसा की है और कहा है कि कौनसा मूर्ख उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर विद्वान् नही बन सकता।

वीरचन्द्र समाश्रित्य के मूर्खा न विदो मथन् ।
तं (श्रये) त्यक्त सार्वन्न दीप्त्या निर्जितकाञ्चनम् ॥

'वीरचन्द्र' जवरदस्त साहित्य सेवी थे। वे सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एव गुजराती के पारगत विद्वान थे। यद्यपि अब तक उनकी केवल ८ रचनाए ही उपलब्ध हो सकी हैं, लेकिन वे ही उनकी विद्वत्ता का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं। इनकी रचनाओ के नाम निम्न प्रकार हैं—

१. वीर विलास फाग
२. जम्बूस्वामी वेलि
३. जिन आतरा
४. सीमधरस्वामी गीत
५. सबोध सत्ताणु
६. नेमिनाथ रास
७. चित्तनिरोध कथा
८. बाहुबलि वेलि

१. वीर विलास फाग

'वीर विलास फाग', एक खण्ड काव्य है, जिसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की जीवन की एक घटना का वर्णन किया गया है। फाग मे १३७ पद्य हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। यह प्रति संवत् १६८६ में भ० वीरचन्द्र के शिष्य भ० महीचन्द के उपदेश से लिखी गयी थी। ब्र० ज्ञानसागर इसके प्रतिलिपिकार थे।

रचना के प्रारम्भ मे नेमिनाथ के सौन्दर्य एव शक्ति का वर्णन किया गया है, इसके पश्चात् उनकी होने वाली पत्नि राजुल की सुन्दरता का वर्णन मिलता है। विवाह के अवसर पर नगर की शोभा दर्शनीय हो जाती है तथा वहा विभिन्न उत्सव

मनाये जाते हैं। नेमिनाथ की बारात बडी सजधज के साथ आती है लेकिन तोरण द्वार के निकट पहुँचने के पूर्व ही नेमिनाथ एक चौक मे बहुत से पशुओ को देखते हैं और जब उन्हे सारथी द्वारा यह मालूम होता है कि वे सभी पशु बरातियो के लिए एकत्रित किये गए हैं तो उन्हे तत्काल वैराग्य हो जाता है और वे बधन तोड कर गिरनार चले जाते हैं। राजुल को जब उनकी वैराग्य लेने की घटना का मालूम होता है, तो वह घोर विलाप करती है, बेहोश होकर गिर पडती है। वह स्वय भी अपने सब आभूषणो को उतार कर तपस्वी जीवन धारण कर लेती है। रचना के अन्त मे नेमिनाथ के तपस्वी जीवन का भी अच्छा वर्णन मिलता है।

फाग सरस एव सुन्दर है। कवि के सभी वर्णन अनूठे हैं और उनमे जीवन है तथा काव्यत्व के दर्शन होते है। नेमिनाथ की सुन्दरता का एक वर्णन देखिये—

वेलि कमल दल कोमल, सामल वरण शरीर।
त्रिभुवनपति त्रिभुवन निलो, नीलो गुण गभीर ॥७॥

माननी मोहन जिनवर, दिन दिन देह दिपत।
प्रलव प्रताप प्रभाकर, भवहर श्री भगवत ॥८॥

लीला ललित नेमीश्वर, अलवेश्वर उदार।
प्रहसित पकज पंखडी, अखडी रूपि अपार ॥९॥

अति कोमल गल गदल, अविमल वाणी विशाल।
अ गि अनोपम निरुपम, मदन... निवास ॥१०॥

इसी तरह राजुल के सौन्दर्य वर्णन को भी कवि के शब्दो में पढिये—

कठिन सुपीन पयोधर, मनोहर अति उतग।
चंपक वर्णी चद्राननी, माननी सोहि सुरग ॥१७,।

हरणी हरखी निज नयणोउ वयणीउ साह सुरग।
दत सुपती दीपती, सोहती सिरवेणी वध ॥१८॥

कनक केरी जसी पूतली, पातली पदमनी नारि।
सतीय शिरोमणि सुन्दरी, भवतरी अवनि मझारि ॥१९॥

ज्ञान-विज्ञान विचक्षणी, सुलक्षणी कोमल काय।
दान सुपात्रह पेसनी, पूजती श्री जिनवर पाय ॥२०॥

राजमती ग्लोयामणी, सोहामणि सुमधुरीय वाणि।
ममर ग्योली भामिनी, स्वामिनी मोहि सुराणी ॥२१॥

रूपि रंभा सुतिलोत्तमा, उत्तम अंगि आचार।
परणितु पुण्यवती तेहनि, नेह करी नेमिकुमार ॥२२॥

'फाग' के अन्य सुन्दरतम वर्णनो मे राजुल-विलाप भी एक उल्लेखनीय स्थल है। वर्णनो के पढने के पश्चात् पाठको के स्वयमेव आसू बह निकलते हैं। इस वर्णन का एक स्थल देखिये —

कनकमि कंकण मोडती, तोडती मिणिमिहार।
लूंचती केश-कलाप, विलाप करि अनिवार ॥७०॥

नयणि नीर काजलि गलि, टलवलि भामिनी भूर।
किम करु कहि रे साहेलडी, विहि नडि गयो मझनाह ॥७१॥

काव्य के अन्त मे कवि ने जो अपना परिचय दिया है, यह निम्न प्रकार है.—

श्री मूल संघि महिमा निलो, जती निलो श्री विद्यानन्द।
सूरी श्री मल्लिभूपण जयो, जयो सूरी लक्ष्मीचन्द ॥१३५॥

जयो सूरी श्री वीरचन्द गुणिंद, रच्यो जिणि फाग।
गाता सामलता ए मनोहर, सुखकर श्री वीतराग ॥१३६॥

जीहा मेदिनी मेरु महीधर, द्वीप सायर जगि जाम।
तिहा लगि ए चदो, नदो सदा फाग ए ताम ॥१३७॥

रचनाकाल

कवि ने फाग के रचनाकाल का कही भी उल्लेख नही किया है। लेकिन यह रचना स० १६०० के पहिले की मालूम होती है।

२. जम्बूस्वामी वेलि

यह कवि की दूसरी रचना है। इसकी एक अपूर्ण प्रति लेखक को उदयपुर (राजस्थान) के खण्डेलवाल दि०जैन-मन्दिर के शास्त्र भंडार मे उपलब्ध हुई थी। वह एक गुटके मे संग्रहीत है। प्रति जीर्ण अवस्था मे है और उसके कितने ही स्थलो से अक्षर मिट गए हैं। इसमें अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित वर्णित है।

जम्बूस्वामी का जीवन जैन कवियो के लिए आकर्षक रहा है। इसलिए संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी एवं अन्य भाषाओं में उनके जीवन पर विविध कृतियाँ उपलब्ध होती हैं।

'वेलि' की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है, जिस पर डिंगल का प्रभाव

है। यद्यपि वेलि काव्यत्व की दृष्टि से उतनी उच्चस्तर की रचना नही है, किन्तु भाषा के अध्ययन की दृष्टि से यह एक अच्छी कृति है। इसमे दूहा, त्रोटक एव चाल छदो का प्रयोग हुआ है। रचना का अन्तिम भाग जिसमे कवि ने अपना परिचय दिया है, निम्न प्रकार है —

श्री मूलसंघे महिमा निलो, अने देवेन्द्र कीरति सूरि राय।
श्री विद्यानदि वसुधा निलो, नरपति सेवे पाय ॥१॥

तेह वारें उदयो गति, लक्ष्मीचन्द्र जेण आण।
श्री मल्लिभूषण महिमा घणो, नमे ग्यासुदीन सुलतान ॥२॥

तेह गुरुचरणकमलनमी, अनें वेलि रची छे रसाल।
श्री वीरचन्द्र सूरीवर कहे, गाता पुण्य अपार ॥३॥

जम्बूकुमार केवली हवा, अमे स्वर्ग—मुक्ति दातार।
जे भवियण भावें भावसे, ते तरसे ससार ॥४॥

कवि ने इसमे भी रचनाकाल का कोई उल्लेख नही किया है।

३. जिन आंतरा

यह कवि की लघु रचना है, जो उदयपुर के उसी गुटके मे सग्रहीत है। इसमे २४ तीर्थंकरो के एक के वाद दूसरे तीर्थंकर होने मे जो समय लगता है—उसका वर्णन किया गया है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से रचना सामान्य है। भाषा भी वही है, जो कवि की अन्य रचनाओ की है। रचना का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है:—

सत्य शासन जिन स्वामीनू, जेहने तेहने रग।
हो जाते वशी भला, ते नर चतुर सुचग ॥६॥

जगें जनम्यू जन्म जेहनू, तेहनू जीव्यू सार।
रग लागे जेहवे मनें, जिन शासनह मझार ॥७॥

श्री लक्ष्मीचन्द्र गुरु गच्छपती, तिस पाटें सार शृगार।
श्री वीरचन्द्र गोरें कह्या, जिन आतरा उदार ॥८॥

४. सबोध सत्ताणु भावना

यह एक उपदेशात्मक कृति है, जिसमें ५७ पद्य हैं तथा सभी दोहो के रूप मे हैं। इसकी प्रति भी उदयपुर के उसी गुटके मे सग्रहीत है जिसमे कवि की अन्य

रचनाएं हैं। भावना के अन्त में कवि ने अपना परिचय भी दिया है, जो निम्न प्रकार है:—

सूरि श्री विद्यानन्दि जयो, श्री मल्लिभूषण मुनिचन्द्र।
तस पाटे महिमा निलो, गुरु श्री लक्ष्मीचन्द्र ॥९६॥

तेह कुलकमल दिवसपति, जपती यति वीरचन्द।
सुणता भणतां ए भावना, पामीइ परमानन्द ॥९७॥

भावना मे सभी दोहे शिक्षाप्रद हैं, तथा सुन्दर भावो से परिपूर्ण हैं। कवि की कहने की शैली सरल एव अर्थगम्य है। कुछ दोहो का आस्वादन कीजिए:—

धर्म धर्म नर उच्चरे, न धरे धर्मनो मर्म।
धर्म कारन प्राणि हणे, न गणे निष्ठुर कर्म ॥३॥

× × × ×

धर्म धर्म सहु को कहो, न गहे धर्म नू नाम।
राम राम पोपट पढे, बूझे न ते निज राम ॥६॥

× × × ×

धनपाले धनपाल ते, धनपाल नामे भिखारो।
लाछि नाम लक्ष्मी तणू, लाछि लाकडा वहे नारी ॥७॥

× × × ×

दया बीज विण जे क्रिया, ते सघली अप्रमाण।
शीतल संजल जल भर्या, जेम चण्डाल न वाण ॥१९॥

× × × ×

धर्म मूल प्राणी दया, दया ते जीवनी माय।
भाट भ्रांति न आणिए, आते धर्मनो पाय ॥२१॥

× × × ×

प्राणि दया विण प्राणी नें, एक न इछ्यु होय।
तेल न वेलू पलिता, सूप न तोय विलोय ॥२२॥

× × × ×

कठं विहूणू गान जिम, जिम विण व्याकरणे वाणि।
न सोहे धर्म दया विना, जिम भोयण विण पाणि ॥३२॥

× × × ×

नीचनी सगति परिहरो, धारो उत्तम आचार ।
दुर्ल्लभ भव मानव तणो, जीव तूं आलिम हार ।।४०।।

५. सीमन्धर स्वामी गीत

यह एक लघु गीत है–जिसमे सीमन्धर स्वामी का स्तवन किया गया है ।

६. चित्तनिरोधक कथा

यह १५ छन्दो की एक लघु कृति है, जिसमे चित्त को वश मे रखने का उपदेश दिया गया है । यह भी उदयपुर वाले गुटके मे ही सग्रहीत है । अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सूरि श्री मल्लिभूषण जयो जयो श्री लक्ष्मीचन्द्र ।
तास वश विद्यानिलु लाड नीति शृगार ।
श्री वीरचन्द्र सूरी भणी, चित्त निरोध विचार ।।१५।।

७. बाहुवलि वेलि

इसकी एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है । यह एक लघु रचना है लेकिन इसमे विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया गया है । त्रोटक एव राग सिंधु मुख्य छन्द हैं ।

८. नेमिकुमार रास

यह नेमिनाथ की वैवाहिक घटना पर एक लघु कृति है । इसकी प्रति उदयपुर के अग्रवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित है । रास की रचना सवत् १६७३ में समाप्त हुई थी जैसा कि निम्न छन्दो से ज्ञात होता है—

तेहनी भक्ति करी घणी, मुनि वीरचन्द दीधी बुधि ।
श्री नेमितणा गुण वर्णव्या, पामवा सघली रिधि ।।१६।।

सवत सोलताहोत्तरि, श्रावण सुदि गुरुवार ।
दशमी को दिन रुंपडो, रास रच्चो मनोहार ।।१७।।

इस प्रकार 'भ० वीरचन्द्र' की अब तक जो कृतिया उपलब्ध हुई हैं–वे इनके साहित्य-प्रेम का परिचय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त हैं । राजस्थान एव गुजरात के शास्त्र–भण्डारों की पूर्ण खोज होने पर इनकी अभी और भी रचनाए प्रकाश मे आने की आशा है ।

संत सुमतिकीर्त्ति

'सुमतिकीर्त्ति' नाम वाले अब तक विभिन्न सन्तो का नामोल्लेख हुआ है, लेकिन इनमे दो 'सुमतिकीर्त्ति' एक ही समय मे हुए और दोनो ही अपने समय के अच्छे विद्वान् माने जाते रहे। इन दोनो मे एक का 'भट्टारक ज्ञान भूषण' के शिष्य रूप मे और दूसरे का 'भट्टारक शुभचन्द्र' के शिष्य रूप मे उल्लेख मिलता है। 'आचार्य सकलभूषण' ने 'सुमतिकीर्त्ति' का भट्टारक शुभचन्द्र' के शिष्य रूप मे अपनी उपदेशरत्नमाला मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

भट्टारकश्रीशुभचन्द्रसूरिस्तत्पट्टपकेरुहतिश्मरश्मि: ।
त्रैविद्यवद्य सकलप्रसिद्धो वादीर्मसिहो जयतात्धरित्र्या ॥९॥

पट्टे तस्य प्रीणित प्राणिवर्ग शातोदात: शीलशाली सुधीमान् ।
जीयात्सूरि: श्रीसुमत्यादिकीर्त्ति: गच्छाधीश कमुकान्तिकलावान् ॥१०॥

''सकल भूषण' ने 'उपदेशरत्नमाला' सवत् १६२७ मे समाप्त कर दी थी और इन्होने अपने-आपको 'सुमतिकीर्त्ति' का 'गुरु भाई' होना स्वीकार किया है —

तस्याभूच्च गुरुभ्राता नाम्ना सकलभूषण: ।
सूरिर्जिनमते लीनमना: सतोपपोपक ॥८॥

'ब्रह्म कामराज' ने अपने 'जयकुमार पुराण' मे भी 'सुमतिकीर्त्ति' को भ० शुभचन्द्र का शिष्य लिखा है .—

तेभ्य: श्रीशुभचन्द्र. श्रीसुमतिकीर्त्ति सयमी ।
गुणकीर्त्याह्वया आसन् बलात्कारगणेश्वर: ॥८॥

इसके पश्चात् स० १७२२ मे रचित 'प्रद्युम्न-प्रबन्ध मे भ० देवेन्द्र कीर्त्ति ने भी सुमतिकीर्त्ति को शुभचन्द्र का शिष्य लिखा है—

तेह पट्ट कुमुद पूरण ससी, शुभचन्द्र भवतार रे ।
न्याय प्रमाण प्रचंड थी, गुरुवादी जलदगमी रे ॥

तस पट्टोधर प्रगटीया श्री सुमतिकीर्त्ति जयकार रे ।
तस पट्ट धारक भट्टारक गुणकीर्त्ति गुण गण धार रे ॥४॥

एक दूसरे 'सुमतिकीर्त्ति' का उल्लेख भट्टारक ज्ञान भूषण के शिष्य के रूप

मे मिलता है। सर्व प्रथम भट्टारक ज्ञानभूषण ने कर्मकाण्ड टीका मे सुमतिकीर्त्ति की सहायता से टीका लिखना लिखा है.—

तदन्वये दयाभोधि ज्ञानभूपो गुणाकर ।
टीका ही कर्मकाडस्य चक्रे सुमतिकीर्त्तियुक् ।।२।।

ये 'सुमतिकीर्ति' मूल सघ मे स्थित नन्दिसघ वलात्कारगण एव सरस्वती गच्छ के भट्टारक वीरचन्द्र के शिष्य थे, जिनके पूर्व भट्टारक लक्ष्मीभूषण, मल्लिभूषण एव विद्यानन्दि हो चुके थे। सुमतिकीर्ति ने 'प्राकृत पचसग्रह'-टीका को सवत् १६२० भाद्रपद शुक्ला दशमी के दिन ईडर के ऋषभदेव के मन्दिर मे समाप्त की थी। इस टीका का सशोधन भी ज्ञानभूषण ने ही किया था। [1] इस प्रकार दोनो 'सुमतिकीर्त्ति' का समय यद्यपि एक सा है, किन्तु इनमे एक भट्टारक सकलकीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भ० शुभचन्द्र के शिष्य थे और दूसरे भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य थे। 'प्रथम सुमतिकीर्त्ति' भट्टारक शुभचन्द्र के पश्चात् भट्टारक गादी पर बैठे थे, लेकिन दूसरे सुमतिकीर्त्ति सभवत भट्टारक नही थे, किन्तु ब्रह्मचारी अथवा अन्य पद धारी व्रती होगे। यदि ऐसा न होता तो वे 'प्राकृत पचसग्रह टीका' मे भट्टारक ज्ञानभूषण के पश्चात् प्रभाचन्द का नाम नही गिनाते—

भट्टारको भुवि ख्यातो जीयाच्छ्रीज्ञानभूषण ।
तस्य महोदये भानुः प्रभाचन्द्रो वचोनिधि ।।७।।

अब हम यहा 'भ० ज्ञानभूषण' के शिष्य 'सन्त सुमतिकीर्त्ति' की 'साहित्य-साधना' का परिचय दे रहे है।

'सुमतिकीर्त्ति' सन्त थे, और भट्टारक पद की उपेक्षा करके 'साहित्य-साधना' मे अपनी विशेष रुचि रखते थे। एक 'भट्टारक-विरुदावली' मे 'ज्ञानभूषण' की प्रशसा करते समय जब उनके शिष्यो के नाम गिनाये तो सुमतिकीर्त्ति को सिद्धांतवेदि एव निग्रन्थाचार्य इन दो विशेषणो से निर्दिष्ट किया है। ये सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एव राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। साधु बनने के पश्चात् इन्होने अपना अधिकाश जीवन 'साहित्य-साधना' मे लगाया और साहित्य-जगत को कितनी ही रचनाए भेंट कर गये। इनकी अब तक निम्न रचनाए उपलब्ध हो चुकी है —

टीका ग्रथ—

१ कर्मकाण्ड टीका २. पचसग्रह टीका

1. देखिये—प० परमानन्दजी द्वारा सम्पादित प्रशस्ति सग्रह'-पृ० स० ७५

हिन्दी रचनायें—

१. धर्म परीक्षा रास
२ जिनवर स्वामी वीनती
३ जिह्वा दत विवाद
४ वसत विद्या–विलास
५. पद–(काल अने तो जीव बहु परिभ्रमता)
६. शीतलनाथ गीत

उक्त रचनाओ का सक्षिप्त परिचय निम्न है'—

१. कर्मकाण्ड टीका

आचार्य नेमिचन्द्र कृत कर्मकाण्ड (प्राकृत) की यह सस्कृत टीका है । जिसको लिखने मे इन्होने अपने गुरु भट्टारक ज्ञानभूषण को पूरी सहायता दी थी । यह भी अधिक सभव है कि इन्होने ही इसकी टीका लिखी हो और भ० ज्ञानभूषण ने उसका सशोधन करके गुरु होने के कारण अपने नाम का प्रथम उल्लेख कर दिया हो । टीका सुन्दर है । इससे सुमतिकीर्त्ति की विद्वत्ता का पता लगता है ।[1]

२ प्राकृत पचसग्रह टीका

'पचसग्रह' नाम का एक प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ है, जो मूलत पाच प्रकरणो को लिए हुए है, और जिस पर मूल के साथ भाष्य चूर्णि तथा सस्कृत टीका उपलब्ध है । आचार्य अमितिगति' ने स० १०७३ मे प्राकृत पच सग्रह का सशोधन परिवर्द्धनादि के साथ पच सग्रह नामक ग्रन्थ बनाया था । इस टीका का पता लगाने का मुख्य श्रेय प० परमानन्दजी शास्त्री, देहली, को है ।[2]

३. धर्मपरीक्षा रास

यह कवि की हिन्दी रचना है, जिसका उल्लेख प० परमानन्दजी ने भी अपने प्रशस्ति सग्रह की भूमिका मे किया है । इस ग्रन्थ की रचना हासोट नगर (गुजरात) मे हुई थी । रास की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है, जैसा कि कवि की अन्य रचनाओ की भाषा है । रास का रचना काल सवत् १६२५ है । रास का अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है —[3]

---

१. प्रशस्ति संग्रहः पृ० ७ के पूरे दो पद्य
२ देखियें—प० परमानन्दजी द्वारा सम्पादित–प्रशस्ति सग्रह–पृ० स० ७४
३. इसकी एक प्रति अग्रवाल दि० जैन मन्दिर उदयपुर (राजस्थान) मे संग्रहीत है ।

पडित हेमे प्रेर्या घणु वणाय गने वीरदास ।
हासोट नगर पूरो हुवो, धर्म परीक्षा रास ॥

सवत् सोल पचवीसमे, मार्गसिर सुदि बीज वार ।
रास रुडो रलियामणो, पूर्ण किधो छे सार ॥

४ जिनवर स्वामी वीनती

यह एक स्तवन है, जिसमे २३ छन्द है । रचना साधारण है । एक पद्य देखिये—

धन्य हाथ ते नर तणा, जे जिन पूजन्त ।
नेत्र सफल स्वामी हवा, जे तुम निरखत ॥

श्रवण सार वली ते कह्या, जिनवाणी सुणत ।
मन रुडु मुनिवर तणु जे तुम्ह ध्यायत ॥

धारु रसना ते कहीए जे लीजे जिन नाम ।
जिन चरण कमल जे नमि, ते जाणो अभिराम ॥४॥

५ जिह्वादन्त विवादः—

यह एक लघु रचना है–जिसमे केवल ११ छन्द है । इसमे जीभ और दात में एक दूसरे मे होने वाले विवाद का वर्णन है । भापा सरल है । एक उदाहरण देखिए—

कठिन क वचन न बोलीयि, रह्या एकठा दोयरे ।
पचलोका माहि इम भणी, जिह्वा करे यने होयरे ॥२॥

अह्यो चार्वा चूरी रसकसू, अह्यो करु अपरमादरे ।
कवण विचारी वापडी, विठी करेय सवाद रे ॥३॥

वसन्त विलास गीत·—

इसमें २२ छन्द हैं–जिनमे नेमिनाथ के विवाह प्रसग को लेकर रचना की गई है । रचना माधारणत अच्छी है ।

'सुमतिकीर्त्ति' १६-१७ वी शताब्दि के विद्वान थे। गुजरात एव राजस्थान दोनो ही प्रदेश इनके पद चिह्नो से पावन बने थे। साहित्य-सर्जन एव आत्म-साधना ही इनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था लेकिन इससे भी बढकर था इनका गाँव गाव मे जन-जाग्रति पैदा करना। लोग अनपढ थे। मूढताओ के चक्कर मे फसे हुए थे। वास्तविक धर्म की ओर से इनका ध्यान कम हो गया था और मिथ्याडम्बरो की ओर प्रवृत्ति होने लगी थी। यही कारण है कि 'धर्म परीक्षा रास' की सर्व प्रथम इन्होने रचना की। यह इनकी सबसे बडी कृति है। जिससे 'अमितिगति आचार्य' द्वारा निवद्ध 'धर्म परीक्षा' का सार रूप मे वर्णन है। कवि की अन्य रचनाए लघु होते हुए भी काव्यत्व शक्ति से परिपूर्ण हैं। गीत, पद एव सवाद के रूप में इन्होने जो रचनाए प्रस्तुत की है, वे पाठक की रुचि को जाग्रत करने वाली है। 'सुमति कीर्त्ति' का अभी और भी साहित्य मिलना चाहिए और वह हमारी खोज पर आधारित है।

'ब्रह्म रायमल्ल'

१७वी शताव्दी के राजस्थानी विद्वानो में 'ब्रह्म रायमल्ल' का नाम विशेषत' उल्लेखनीय है। ये 'मुनि अनन्तकीर्ति' के शिष्य थे। 'अनन्तकीर्ति' के सम्वन्ध मे अभी हमे दो लघु रचनाए मिली हैं, जिससे ज्ञात होता है कि ये उस समय के प्रसिद्ध सन्त थे तथा स्थान–स्थान पर विहार करके जनता को उपदेश दिया करते थे। 'ब्रह्म रायमल्ल' ने इनसे कव दीक्षा ली, इसके विषय मे कोई उल्लेख नही मिलता। लेकिन ये ब्रह्मचारी थे और अपने गुरु के सघ मे न रहकर स्वतन्त्र रूप से परिभ्रमण किया करते थे।

'ब्रह्म रायमल्ल' हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी १३ रचनाए प्राप्त हो चुकी हैं। ये सभी रचनाए हिन्दी मे हैं। अपनी अधिकाश रचनाओ के नाम इन्होने 'रास' नाम से सम्बोधित किया है। सभी कृतिया कथा–काव्य हैं और उनमे सरल भापा मे विषय का वर्णन किया हुआ है। इनका साहित्यकाल सवत् १६१५ से आरम्भ होता है और वह सवत् १६३६ तक चलता है। अपने इक्कीस वर्ष के साहित्यकाल मे १३ रचनाए निवद्ध कर साहित्यिक जगत की जो अपूर्व सेवाए की है वे चिरस्मरणीय रहेगी। 'ब्रह्म रायमल्ल' के नाम से ही एक और विद्वान् मिलते हैं, जिन्होने सवत् १६६७ मे 'भक्तामर स्तोत्र' की सस्कृत टीका समाप्त की थी। ये रायमल्ल हूंवड जाति के श्रावक थे तथा माता–पिता का नाम चम्पा और महला था।[1] ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में इन्होने उक्त रचना समाप्त की थी। प्रश्न यह है कि दोनो रायमल्ल एक ही विद्वान् हैं अथवा दोनो भिन्न २ विद्वान् हैं।

---

१ श्रीमद्हूं बड़वशमडनमणि र्म्ह्येति नामा वणिक्।
तद् भार्या गुणमडिता व्रतयुता चम्पेति नामाभिधा ॥६॥

तत्पुत्रो जिनपादकंजमधुपो, रायादिमल्लो व्रती।
चक्रे वित्तिमिमां स्तवस्य नितरां, नत्वा श्री (सु) वादीदुक ॥७॥

सप्तषष्ठ्यंकिते वर्षे षोडशाख्ये हि सेवते। (१६६७)।
आषाढ श्वेतपक्षस्य पञ्चम्या बुधवारके ॥८॥

ग्रीवापुरे महासिन्धोस्तटभागं समाश्रिते।
प्रोत्तुंग-दुर्ग संयुक्ते श्री चन्द्रप्रभ-सद्मनि ॥९॥

वर्णिनः कर्मसी नाम्नः वचनात् मयकाऽरचि।
भक्तामरस्य सद्वृत्तिः रायमल्लेन वर्णिना ॥१०॥

हमारे विचार से दोनो भिन्न २ विद्वान हैं, क्योकि 'भक्तामर स्त्रोत्र वृत्ति' मे उन्होने जो परिचय दिया है, वैसा परिचय अन्य किसी रचना मे नही मिलता। हूबड जातीय 'ब्रह्म रायमल्ल' ने अपने को अनन्तकीर्ति का शिष्य नही माना है और अपने माता-पिता एव जाति का उल्लेख किया है। इस प्रकार दोनो ही रायमल्ल भिन्न २ विद्वान् हैं। इनमे भिन्नता का एक और तथ्य यह है कि भक्तामर स्तोत्र की टीका सवत् १६६७ मे समाप्त हुई थी जबकि राजस्थानी कवि रायमल्ल ने अपनी सभी रचनाओं को सवत् १६३६ तक ही समाप्त कर दिया था। इन ३१ वर्षो मे कवि द्वारा एक भी ग्रन्थ नही रचा जाना भी न्याय सगत मालूम नही होता। इस लिए १७वी शताब्दी मे रायमल्ल नाम के दो विद्वान् हुए। प्रथम राजस्थानी विद्वान् थे जिसका समय १७वी शताब्दी का द्वितीय चरण तक सीमित था। दूसरे 'रायमल्ल' गुजराती विद्वान् थे और उनका समय १७वी शताब्दी के दूसरे चरण से प्रारम्भ होता है। यहा हम राजस्थानी सन्त 'ब्रह्म रायमल्ल' की रचनाओ का परिचय दे रहे है। आलोच्य रायमल्ल ने जिन हिन्दी रचनाओं को निबद्ध किया था, उनके नाम निम्न प्रकार है —

१. नेमीश्वर रास
२. हनुमन्त कथा रास
३. प्रद्युम्न रास
४ सुदर्शन रास
५ श्रीपाल रास
६. भविष्यदत्त रास
७. परमहस चौपई
८. जम्बू स्वामी चौपई [1]
९. निर्दोष सप्तमी कथा
१०. आदित्यवार कथा [2]
११. चिन्तामणि जयमाल [3]
१२. छियालीस ठाणा [4]
१३. चन्द्रगुप्त स्वप्न चौपई

इन रचनाओं का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :—

१. नेमीश्वर रास

यह एक लघु कथा काव्य है, जो १३९ छन्दो मे समाप्त होता है। इसमे 'नेमिनाथ स्वामी' के जीवन पर सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। भाषा राजस्थानी

१ इसकी एक प्रति मन्दिर, सघीजी, जयपुर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित है।
२. इसकी भी एक प्रति शास्त्र भण्डार मन्दिर संघीजी में सुरक्षित है।
३. इसकी एक प्रति दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित है।
४ इसकी एक प्रति जयपुर के पार्श्वनाथ मन्दिर के शास्त्र भण्डर में सुर-क्षित है।

है। कवि की वर्णन शैली साधारण है। 'रास' काव्यकृति न होकर कथाकृति है, जिसके द्वारा जनसाधारण तक 'भगवान् नेमिनाथ' के जीवन के सम्बन्ध मे जानकारी पहुंचाना है। कवि की यह समवतः प्रथम कृति है, इसलिए इसकी भाषा मे प्रौढता नही आ सकी है। इसे सवत् १६१५ की श्रावण सुदी १३ के दिन समाप्त की थी। रचना स्थल पार्श्वनाथ का मन्दिर था। कवि ने अपना परिचय निम्न शब्दो मे दिया है :—

अहो श्री मूल सघि मुनि सरस्वती गछि, छोडि हो चारि कपाइनि भछि।

अनन्तकीर्ति गुरु वदितौ, अहो तास तणौ सखी कीयो वखाण।
राइमल ब्रह्म सो जाणिज्यो, स्वामि हो पारस नाथ को थान।।

श्री नेमि जिनेश्वर पाय नमौ ।।१३७।।

अहो सोलहसै पन्द्रहै रच्यो रास, सावलि तेरसि सावण मास।
वार ते जी बुधवासर भलै, जैसी जी बुधि दिन्हो अवकास।
पंडित कोइ जी मति हसौ, अहौ तैसि जि बुधि कियो परगास ।।१३८।।

रास की काव्य शैली का एक उदाहरण देखिये—

अहो रजमति अति किया हो उपाउ,
कामिणी चरित ते गिण्या हो न जाइ।
वात बिचारि बिनै धणै सुध,
चिद्रूपस्यौ दीनै हो ध्यान।
जैसे होविवु रत्ना जडिउ,
रागाक बचन सुणं नवि कानि।
श्रो नेमि जिनेश्वर पाय नमू ।।९७।।

रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसकी प्रतिया राजस्थान के कितने ही भण्डारो मे मिलती हैं। रास का दूसरा नाम 'नेमिश्वर फाग' भी है।

२. हनुमन्त कथा रास

यह कवि की दूसरी रचना, जो सवत् १६१६ वैशाख वुदी ९ शनिवार को समाप्त हुई थी अर्थात् प्रथम रचना के पश्चात् ९ महीने से भी कम समय मे कवि ने जनता को दूसरी रचना भेंट की। यह उसकी साहित्यिक निष्ठा का द्योतक है। रचना एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमे जैन पुराणो के अनुसार हनुमान का वर्णन किया गया है। यह एक सुन्दर काव्य है, जिसमे कवि ने कही २ अपनी विद्वत्ता का भी

परिचय दिया है। इसमे ८६५ पद्य है, जो वस्तुवध, दोहा और चौपई छन्दो मे विभक्त हैं। भाषा राजस्थानी है।

कवि ने रचना के अन्त मे अपना वही परिचय दिया है, जो उसने प्रथम रचना मे दिया था। केवल नेमिश्वर रास चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे समाप्त हुआ था और यह हनुमन्त रास, मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय मे। कवि ने रचना के प्रारम्भ मे भी मुनिसुव्रतनाथ को ही नमस्कार किया है। काव्य शैली प्रवाहमय है और वह धारा प्रवाह चलती है। काव्य के बीच बीच मे सूक्तियाँ भी वर्णित है।

दो उदाहरण देखिए—

पुरिष बिना जो कामिनी होई, ताकौ आदर करै न कोई।
चक्रवर्ती की पुत्री होई, पुरिष बिना दु.ख पावै सोई ॥७०॥

× × × × ×

नाना विधि भुजै इक कर्म, सोग कलेस आदि बहु मर्म।
एकै जन्मै एकै मरै, एकै जाइ सिधि सचरै ॥४७॥

'रास' की भाषा का एक उदाहरण देखिए—

देखी सोता तरुनी छाह, रालि मुदडी छोली माह।
पडी मुदडी देखी सीया, अचिरज भयो जनक की धीया। ।६०२॥

लई मुदडी कठ लगाई, जैसे मिलै बछनौ गाई।
चन्द्र बदन सीय भयो आनन्द, जानिकि मिलीया दशरथनन्द ॥६०३॥

३. प्रद्युम्न रास

कवि की यह तीसरी रचना है, जिसमे कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन चरित्र वर्णित है। प्रद्युम्न १६६ पुण्य पुरुषो मे से है। जन्म से ही उसके जीवन मे विचित्र घटनाए घटती हैं। अनेक विद्याओ का वह स्वामी बनता है। वर्षों तक सुख भोगने के पश्चात् वह वैराग्य धारण कर लेता है और अन्त मे आठो कर्मो का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करता है। कवि ने प्रस्तुत कथा को १९५ कडा-बन्ध छन्दो मे पूर्ण किया है। रास की रचना सवत् १६२८ भादवा सुदी २ को समाप्त हुई थी। रचना स्थान था गढ हरसौर– जिसे ब्रह्म रायमल्ल ने अपने धूलि कणो से पवित्र किया था। कवि के शब्दो मे इस वर्णन को पढ़िये—

हो सोलासै अठवीस विचारो, भादव सुदि दुतिया बुधवारो।

गढ हरसौर महा भलोजी, तिह मे भला जिनेसुर थान ।
श्रावक लोग वसै भलाजी, देव शास्त्र गुरु राखै मान ॥१६४॥

यह लघु कृति है जिसमे मुख्यतः काव्यत्व की ओर ध्यान न देकर कथा भाग को ओर विशेष ध्यान दिया गया है । प्रत्येक पद्य 'हो' शब्द से प्रारम्भ होता है एक उदाहरण देखिए—

हो कचन माला वोहो दुख पायो, विद्या दीन्ही काम न सरीयो ।

वात दोउ करि बीगडी जी, पहली चित्ति न वात विचारी ॥
हरत परत दोन्यू गयाजी, कूकर खाधी टाकर मारी ॥११८॥

हो पुत्र पाचसै लीया वुलाय, मारो वेगि काम ने जाय ।

हो मन मे हरख्या मयाजी, मैरण लेय वन क्रीडा चल्या ॥
माझि वावडी चपियो जी, ऊपरि मोटो पाथर राल्यो तो ॥१८६॥

४ सुदर्शन रास

चारित्र के विपय मे 'सेठ सुदर्शन' की कथा अत्यधिक प्रसिद्ध है ।'सेठ सुदर्शन' परम शात एव दृढ सयमी श्रावक थे । सयम से च्युत नही होने के कारण उन्हे शूलो का आदेश मिला, जिसे उन्होने सहर्ष स्वीकार किया । लेकिन अपने चरित्र के प्रभाव से शूली भी सिंहासन वन गई। कवि ने इस रास को सवत् १६२६ मे समाप्त किया था । इसमे २०० से अधिक छन्द हैं । काव्य साधारणत अच्छा है ।

५. श्रीपाल रास

रचनाकाल के अनुसार यह कवि की पांचवी रचना है ।इसमे 'श्रीपाल राजा' के जीवन का वर्णन हैं । वैसे यह कथा 'सिद्ध चक्र पूजा' के महात्म्य को प्रकट करने के लिए भी कही जाती है । 'श्रीपाल' को सर्व प्रथम कुष्ट रोग से पीडित होने के कारण राज्य-शासन छोडकर जगल की शरण लेनी पडती है । दैवयोग से उसका विवाह मैना सुन्दरी से होता है, जिसे भाग्य पर विश्वास रखने के कारण अपने ही पिता का कोप- भाजन वनना पडता है । मैनासुन्दरी द्वारा उसका कुष्ट रोग दूर होने पर वह विदेश जाता है और अनेक राजकुमारियो से विवाह करके तथा अपार सम्पत्ति का स्वामी वनकर वापिस स्वदेश लौटता है । उसके जीवन मे कितनी ही वाधाए आती हैं, लेकिन वे सव उसके अदम्य उत्साह एवं सूझ-बूझ के कारण स्वतः ही दूर हो जाती हैं । कवि ने इसी कथा को अपने इस काव्य के २६७ पद्यो मे छन्दोवद्ध किया है । रचना स्थान राजस्थान का प्रसिद्ध गढ रणथम्भोर है तथा

रचना काल है संवत् १६३० की असाढ सुदी १३ शनिवार। गढ पर उस समय अकबर बादशाह का शासन था तथा चारों ओर सुखसम्पदा व्याप्त थी। इसी को कवि के शब्दों में पढ़िए—

> हो सोलासै तीसो शुभ वर्ष, मास असाढ भणो शुभ हर्ष।
> तिथि तेरसि सित सोभिनी हो, अनुराधा नषित्र शुभ सार ॥
> करण जोग दीसै भला हो, भणै वार 'सनीसरवार ॥२९४॥
> हो रणथम्भर सोभीक विमान भरिया नीर ताल बहु थान।
> बाग विहर बावडी घणी, हो धन कन सम्पत्ति तणी निधान ॥
> साहि अकबर राजई, हो सोभा घणी जिसो सुर थान ॥२९५॥

६. भविष्यदत्त रास

यह कवि का सबसे बड़ा रासक काव्य है, जिसमें भविष्यदत्त के जीवन का विस्तृत वर्णन है। 'भविष्यदत्त' एक श्रेष्ठि-पुत्र था। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिए विदेश गया। भविष्यदत्त ने वहां खूब धन कमाया। कितने ही देशों में वे दोनों भ्रमण करते रहे। किन्तु बन्धुदत्त और उसमें कभी नहीं पटी। उसने भविष्यदत्त को कितनी ही बार धोखा दिया और अन्त में उसको वन में अकेला छोड़ कर स्वदेश लौट आया। वहां आकर वह भविष्यदत्त की स्त्री से ही विवाह करना चाहा, लेकिन भविष्यदत्त के वहां समय पर पहुँच जाने पर उसका काम नहीं बन सका। इस प्रकार भविष्यदत्त का पूरा जीवन रोमाञ्चक घटनाओं से परिपूर्ण है। वे एक के बाद एक इस रूप में आती हैं कि पाठकों की उत्सुकता कभी समाप्त नहीं होती है।

'भविष्यदत्त रास' में ९१५ पद्य हैं, जो दोहा चौपई आदि विविध छन्दों में विभक्त है। कवि ने इसकी समाप्ति—सांगानेर (जयपुर) में किया था। उस समय आमेर पर महाराजा भगवन्तदास का शासन था। सांगानेर एक व्यापारिक नगर था। यहाँ अत्यधिक रूप में व्यापार होता था। श्रावकों की यहाँ अच्छी बस्ती थी और वे धर्म ध्यान में लीन रहा करते थे। रास का रचनाकाल संवत् १६३३ कार्तिक सुदी १४ शनिवार है। इसी वर्णन को कवि के शब्दों में पढ़िए—

> सोलह सै तैतीसै सार, कातिग सुदी चौदसि सनिवार।
> स्वाति नक्षत्र सिद्धि शुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै लोग ॥९०८॥
> देश ढूंढाहड सोभा घणी, पूजै तहाँ आलि मन तणी।
> निर्मल तलै नदी बहु फिरै, सुबस वसै बहु सांगानेरि ॥९०९॥

चहु दिसि वण्या भला बाजार, भरे पटोला मोतीहार।
भवन उत्त ग जिनेसुर तणा, सोभे चदवो तोरण घणा ॥६१०॥

राजा राजै भगवतदास, राज कु वर सेवहि बहुतास।
परिजा लोग सुखी सुख वास, दुखी दलिद्री पूरवै आस ॥९११॥

श्रावग लोग वसै धनवत, पूजा करहि जपहि अरहत।
उपरा उपरी वैर न काय, जिम अहिमिन्द्र सुर्ग सुखदाय ॥९१२॥

पूरा काव्य चौपई छन्दो मे है, लेकिन कही कही वस्तु बध तथा दोहा छन्दो का भी प्रयोग हुआ है। भाषा राजस्थानी है। वर्णन प्रवाहमय है तथा कथा रूप मे लिखा हुआ है—

भवसदत राजा सुकमाल, सुख सो जातन जाणै काल।
घोडा हस्ती रथ अति घणा, उट पालिक घर सत खणा ॥६१९॥

दल बल देस अधिक भण्डार ठाडा सेवै राजकु वार।
छत्र सिंघासण दासी दास, सेवक बहु खोसरा खवास ॥६२०॥

७. परमहंस चौपई

यह रचना सवत् १६३६ ज्येष्ठ बुदी १३ के दिन समाप्त हुई थी। कवि उस समय तक्षकगढ (टोडारायसिंह) मे थे। यह एक रूपक काव्य है। छन्द सख्या ६५१ है। इसकी एक मात्र प्रति दौसा (जयपुर) के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है। चौपई की अन्तिम प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

मूल सघ जग तारणहार, सरब गच्छ गरवो आचार।
सकलकीर्त्ति मुनिवर गुणवन्त, तास माहि गुणलहो न अन्त ॥६४०॥

तिहको अमृत नाव अतिचग, रत्नकीर्त्ति मुनिगुण अभग।
अनन्तकीर्त्ति तास शिष्य जान, बोले मुख तै अमृतवान ॥६४१॥

तास शिष्य जिन चरणालीन, ब्रह्म राइमल्ल बुधि को हीन।
भाव-भेद तिहा थोडो लह्यो, परमहस की चौपई कह्यो ॥६४२॥

अधिको वोछो अन्यो भाव, तिहकी पडित करो पसाव।
सदा होई सन्यासी मर्ण, भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ॥६४३॥

सोलासै छत्तीस वखान, ज्येष्ठ सावली तेरस जान।
सोभैवार सनीसरवार, ग्रह नक्षत्र योग शुभसार ॥६४४॥

देस भलो तिह नागर चाल, तक्षिक गढ अति बन्यौ विसाल ।
सोभै वाडी बाग सुचग, कूप बावडी निरमल अ ग ॥६४५॥

चहु दिसि बन्या अधिकवाजार, भरचा पटबर मोतीहार ।
जिन चैत्यालय वहुत उत्त ग, चदवा तोरण धुजा सुभग ॥६४६॥

८. चन्द्रगुप्त चौपई

इसमे भारत के प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को जो १६ स्वप्न आये थे और उन्होने जिनका फल अन्तिम श्रुतकेवली भद्रवाहु स्वामी से पूछा था, उन्हीका इस कृति मे वर्णन दिया गया है । यह एक लघु कृति है । जिसमे २५ चौपई छन्द हैं । इसकी एक प्रति महावीर-भवन, जयपुर के सग्रहालय मे सुरक्षित है ।

९. निर्दोष सप्तमी व्रतकथा

यह एक व्रत कथा है । यह भादवा सुदी सप्तमी को किया जाता है और उस समय इस कथा को व्रत करने वालो को सुनाया जाता है । इसमे ५९ दोहा चौपई छन्द है । अन्तिम छन्द इस प्रकार है —

नर नारी जो नीदुप करे, सो ससारं थोडो फिरै ।
जिन पुराण मही इम सुण्यौ, जिहि विधि ब्रह्म रायमल्ल भण्यो ॥५९॥

इसकी एक प्रति महावीर-भवन, जयपुर के सग्रहालय मे है ।

मूल्याकन

'ब्रह्म रायमल्ल' महाकवि तुलसीदास के पूर्व कालीन कवि थे । जव कवि अपने जीवन का अन्तिम अध्याय समाप्त कर रहे थे, उस समय तुलसीदास साहित्यिक क्षेत्र मे प्रवेश करने की परि कल्पना कर रहे होगे । ब्र० रायमल्ल मे काव्य रचना की नैसर्गिक अभिरुचि थी । वे ब्रह्मचारी थे, इसलिए जहा भी चातुर्मास करते, अपने शिष्यो एव अनुयायियो को वर्षाकाल समाप्ति के उपलक्ष्य मे कोई न कोई कृति अवश्य भेट करते । वे साहित्य के आचार्य थे । लेकिन काव्य रचना करते थे सीधी-सादी जन भाषा मे क्योकि उनकी दृष्टि मे क्लिष्ट एव अलकारो से ओत-प्रोत रचना का जन-साधारण की अपेक्षा विद्वानो के ही लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होती है । अब तक उनकी १३ कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं और वे सभी कथा प्रधान रचनाए हैं । इनकी भाषा राजस्थानी है । ऐसा लगता है कि स्वय कवि अथवा उनके शिष्य इन कृतियो को जनता को सुनाया करते थे । कवि हरसौरगढ, रणथम्भोर एवं सागानेर मे काव्य-रचना से पूर्व भी इसी तरह विहार करते रहे

थे। सागानेर सभवत. उनका अन्तिम स्थान था, जहा से वे अन्य स्थान पर नही गये होगें। जब वह सागानेर आये थे, तो वह नगर धन-धान्य से परिपूर्ण था। उनके समय में भारत पर सम्राट अकबर का शासन था तथा आमेर का राज्य राजा भगवन्तदास के हाथ मे था। इसलिए राज्य मे अपेक्षाकृत शान्ति थी। जैनो का अच्छा प्रभाव भी कवि को सागानेर मे जीवन पर्यन्त ठहरने मे सहायक रहा होगा। उनने यहा आकर आगे आने वाले विद्वानो के लिए काव्य रचना का मार्ग खोल दिया और १७ वी शताब्दि के पश्चात् तत्कालीन आमेर एव जयपुर राज्य मे साहित्य की ओर जनता की रुचि बढायी। यह अधिकाश पाठको से छुपी नही है।

'ब्रह्म रायमल्ल' के पश्चात् राजस्थान के इस भाग मे विशेप रूप से साहित्यिक जाग्रति हुई। पाण्डे राजमल्ल भी इन्ही के समकालीन थे। इसके पश्चात् १७ वी, १८ वी एवं १९ वी शताब्दी मे एक के पश्चात् दूसरा कवि एव विद्वान होते रहे, और साहित्य-रचना की पावन-धारा मे बराबर वृद्धि होती रही और वह महा प० टोडरमल जी के समय मे वह नदी के रूप मे प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार ब्र० रायमल्ल का पूरे राजस्थान में हिन्दी भाषा की रचनाओ की वृद्धि मे जो योगदान रहा, वह सदा स्मरणीय रहेगा।

भट्टारक रत्नकीर्त्ति

वह विक्रमीय १७ वी शताब्दी का समय था। भारत मे बादशाह अकबर का शासन होने से अपेक्षाकृत शान्ति थी किन्तु बागड एव मेवाड प्रदेश मे राजपूतो एव मुगल शासको मे अनबन रहने के कारण सदैव ही युद्ध का खतरा तथा धार्मिक सस्थानो एव सास्कृतिक केन्द्रो के नष्ट किये जाने का भय बना रहता था। लेकिन बागड प्रदेश मे भ० सकलकीर्ति ने १४ वी शताब्दी मे धर्म प्रचार तथा साहित्य प्रचार की जो लहर फैलायी थी वह अपनी चरम सीमा पर थी। चारो ओर नये नये मदिरो का निर्माण एव प्रतिष्ठा विधानो की भरमार थी। भट्टारको, मुनियो, साधुओ, ब्रह्मचारियो एव स्त्री सन्तो का विहार होता रहता था एव अपने सदुपदेशो द्वारा जन मानस को पवित्र किया करते थे। गृहस्थो मे उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी एव जहा उनके चरण पडते थे वहा जनता अपनी पलकें बिछाने को तैयार रहती थी। ऐसे ही समय मे घोघा नगर के हूवड जातीय श्रेष्ठी देवीदास के यहा एक बालक का जन्म हुआ।[1] माता सहजलदे विविध कलाओ से युक्त बालक को पाकर फूली नही समायी। जन्मोत्सव पर नगर मे विविध प्रकार के उत्सव किये गये। वह बालक बडा होनहार था बचपन मे उस बालक को किस नाम से पुकारा जाता था इसका कही उल्लेख नही मिलता।

जीवन एवं कार्य

बडे होने पर वह विद्याध्यन करने लगा तथा थोडे ही समय मे उसने प्राकृत एव सस्कृत ग्रथो का गहरा अध्ययन कर लिया। एक दिन अकस्मात् ही उसका भट्टारक अभयनन्दि से साक्षात्कार हो गया। भट्टारक जी उसे देखते ही बडे प्रसन्न हुये एव उसकी विद्वता एव वाक्चातुर्यता से प्रभावित होकर उसे अपना शिष्य बना लिया। अभयनदि ने पहिले उसे सिद्धान्त, काव्य, व्याकरण, ज्योतिप एव

---

१. हुंवड वंशे विबुध विख्यात रे,
मात सेहेजलदे देवीदासाततरे।

कु अर कलानिधि कोमल काय रे
पद पूजो प्रेम पातक पलाय रे।

रत्नकीर्ति गीत—गणेश कृत

आयुर्वेद आदि विषयो के ग्रथो का अध्ययन करवाया ।[1] वह व्युत्पन्न मति था इसलिये शीघ्र ही उसने उन पर अधिकार पा लिया । अध्ययन समाप्त होने के बाद अभयनन्दि ने उसे अपना पट्ट शिष्य घोषित कर दिया । ३२ लक्षणो एव ७२ कलाओ से सम्पन्न विद्वान युवक को कौन अपना शिष्य बनाना नही चाहेगा । सवत् १६४३ मे एक विशेष समारोह के साथ उसका महाभिषेक कर दिया गया और उसका नाम रत्नकीर्ति रखा गया । इस पद पर वे सवत् १६५६ तक रहे । अत इनका काल अनुमानत. सवत् १६०० से १६५६ तक का माना जा सकता है ।

सन्त रत्नकीर्ति उस समय पूर्ण युवा थे । उनकी सुन्दरता देखते ही बनती थी । जब वे धर्म-प्रचार के लिये विहार करते तो उनके अनुपम सौन्दर्य एव विद्वता से सभी मुग्ध हो जाते । तत्कालीन विद्वान गणेश कवि ने भ० रत्नकीर्ति की प्रशसा करते हुये लिखा है—

अरध शशि सम सोहे शुभ मालरे,
वदन कमल शुभ नयन विशाल रे

दशन दाडिम सम रसना रसाल रे,
अधर बिंबीफल विजित प्रवाल रे ।

कठ कबू सम रेखा त्रय राजे रे,
कर किसलिय सम नख छवि छाज रे ॥

वे जहा भी विहार करते सुन्दरिया उनके स्वागत मे विविध मगल गीत गाती । ऐसे ही अवसर पर गाये हुये गीत का एक भाग देखिये—

कमल वदन करुणालय कहीये,
कनक वरण सोहे कात मोरी सहीय रे ।

कजल दल लोचन पापना मोचन
कलाकार प्रगटो विख्यात मोरी सहीय रे ॥

वलसाड नगर मे सघपति मल्लिदास ने जो विशाल प्रतिष्ठा करवायी थी वह रत्नकीर्त्ति के उपदेश से ही सम्पन्न हुई थी । मल्लिदास हूवड जाति के श्रावक

---

१. अभयनन्द पाटे उदयो दिनकर, पच महाव्रत धारी ।
सास्त्र सिधात पुराण ए जो, सो तर्क वितर्क विचारी ।
गोमटसार सगीत सिरोमणि, जाणो गोयम अवतारी ।
साहा देवदास केरो सुत सुख कर सेजलदे उरे अवतारी ।
गणेश कहे तम्हो वंदो रे, भवियण कुमति कुसंग निवारी ॥२॥

थे तथा अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। इस प्रतिष्ठा में सन्त रत्नकीर्त्ति अपने सघ सहित सम्मिलित हुये थे तथा एक विशाल जल यात्रा हुई थी जिसका विस्तृत वर्णन तत्कालीन कवि जयसागर ने अपने एक गीत मे किया है—

जलयात्रा जुगते जाय, त्याहा माननी मगल गाय।
सघपति मल्लिदास मोहत, सघवेण मोहणदे कत।
सारी शृ गार सोलमु सार, मन धरयो हरपा अपार।
च्याला जलयात्रा काजे, वाजित वहु विध वाजे।
वर ढोल निशान नफेरी, दड गडी दमाम सुभेरी।
सणाई सरुपा साद, भल्लरी कसाल सुनाद।
वधूक निशाण न फाट, वोले, विरद वहु विध भाट।
पालखी चामर शुभ छत्र, गजगामिनी नाचे विचित्र।
घाट चुनडी कु भ सोहावे, चद्राननी ओडीने आवे।

शिष्य परिवार

रत्नकीर्त्ति के कितने ही शिष्य थे। वे सभी विद्वान एव साहित्य-प्रेमी थे। इनके शिष्यो की कितनी ही कविताऐं उपलब्ध हो चुकी है। इनमे कुमुदचन्द्र, गणेश जय सागर एवं राघव के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। कुमुदचन्द्र को सवत् १६५६ मे इन्होने अपने पट्ट पर विठलाया। ये अपने समय के समर्थ प्रचारक एव साहित्य सेवी थे। इनके द्वारा रचित पद, गीत एव अन्य रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। कुमुदचन्द्र ने अपनी प्राय प्रत्येक रचना मे अपने गुरु रत्नकीर्त्ति का स्मरण किया है। कवि गणेश ने भी इनके स्तवन मे वहुत से पद लिखे हैं— एक वर्णन पढिये—

वदने चद हरावयो सीमले जीत्यो अनंग।
सु दर नयणा नीरखामे, लाजा मीन कुरग।
जुगल श्रवण शुभ सोभताने नासा सूकनी चच।
अधर अरुण रगे ओपमा, दत मुक्ता परपच।
कठ्या जतीणी जाणे सखी रे, अनोपम अमृत वेन्न।
ग्रीवा कबु कोमलरी रे, उन्नत भुजनी वेल।

इसी प्रकार इनके एक शिष्य राघव ने इनकी प्रशसा करते हुये लिखा है कि वे शाह मल्लिक द्वारा सम्मानित भी किये गये थे—

लक्षण बत्तीस सकल अ गि बहोत्तरि
खान मलिक दिये मान जी।

कवि के रूप में

रत्नकीर्त्ति को अपने समय का एक अच्छा कवि कहा जा सकता है। अभी तक इनके ३६ पद प्राप्त हो चुके है। पदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे सन्त होते हुये भी रसिक कवि थे। अतः इनके पदो का विषय मुख्यत. नेमिनाथ का विरह रहा हैं। राजुल की तडफन से ये बहुत परिचित थे। किसी भी बहाने राजुल नेमि का दर्शन करना चाहती थी। राजुल बहुत चाहती थी कि वे (नयन)नेमि के आगमन का इन्तजार न करें लेकिन लाख मना करने पर भी नयन उनके आगमन की वाट जोहना नही छोडते—

वरज्यो न माने नयन निठोर।
सुमिरि सुमिरि गुन भये सजल धन, उमगी चले मति फोर ॥१॥

चचल चपल रहत नही रोके, न मानत जु निहोर।
नित उठि चाहत गिरि को मारग, जेही विधि चद्र चकोर ॥२॥ वरज्यो ॥

तन.मन धन योवन नही भावत, रजनी न भावत भोर।
रत्नकीरति प्रभु वेगो मिलो, तुम मेरे मन के चोर ॥३॥ वरज्यो ॥

एक अन्य पद मे राजुल कहती है कि नेमि ने पशुओ की पुकार तो सुन ली लेकिन उसकी पुकार क्यो नही सुनी। इसलिये यह कहा जा सकता है कि वे दूसरो का दर्द जानते ही नही हैं—

सखी री नेमि न जानी पीर।
बहोत दिवाजे आये मेरे घरि, सग लेई हलधर वीर ॥१॥

सखी री० ॥

नेमि मुख निरखी हरषी मनसू, अब तो होइ मन धीर।
तामे पसूय पुकार सुनी करी, गयो गिरिवर के तीर ॥२॥

सखी री० ॥

चदवदनी पोकारती डारती, मडन हार उर चीर।
रतनकीरति प्रभू भये वैरागी, राजुल चित कियो धीर ॥३॥

सखी री० ॥

एक पद मे राजुल अपनी सखियो से नेमि से मिलाने की प्रार्थना करती हैं। वह कहती है कि नेमि के विना यौवन, चदन, चन्द्रमा ये सभी फीके लगते हैं। माता-

पिता, सखिया एव रात्रि सभी दु ख उत्पन्न करने वाली हैं इन्ही भावो को रत्नकीर्ति के एक पद मे देखिये—

सखि ! को मिलावे नेम नरिंदा ।
ता विन तन मन यौवन रजत हे, चारु चदन अरु चदा ।।१।।
सखि० ।।

कानन भुवन मेरे जीया लागत, दुःसह मदन को फदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी, वे अति दु ख को कदा ।।२।।
सखि० ।।

तुम तो शकर सुख के दाता, करम अति काए मदा ।
रतनकीरति प्रभु परम दयालु, सेवत अमर नरिंदा ।।३।।
सखि० ।।

अन्य रचनाए

इनकी अन्य रचनाओ मे नेमिनाथ फाग एव नेमिनाथ वारहमासा के नाम उल्लेखनीय हैं । नेमिनाथ फाग मे ५७ पद्य हैं । इसकी रचना हासोट नगर मे हुई थी । फाग मे नेमिनाथ एव राजुल के विवाह, पशुओ की पुकार सुनकर विवाह किये बिना ही वैराग्य धारण कर लेना और अन्त मे तपस्या करके मोक्ष जाने की अति सक्षिप्त कथा दी हुई है । राजुल की सुन्दरता का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है ।

चन्द्रवदनी मृगलोचनी, मोचनी खजन मीन ।
वासग जीत्यो वेणिइ, श्रेणिय मधुकर दीन ।

युगल गल दाये शशि, उपमा नाशा कीर ।
अधर विद्रुम सम उपता, दतन निर्मल नीर ।

चिबुक कमल पर षट पद, आनद करे सुधापान ।
ग्रीवा सुन्दर सोभती, कवु कपोतने वान ।।१२।।

नेमिबारहमासा इनकी दूसरी वडी रचना है । इसमे १२ त्रोटक छन्द हैं । कवि ने इसे अपने जन्म स्थान घोघा नगर मे चैत्यालय मे लिखी थी । रचनाकाल का उल्लेख नही दिया गया है । इसमे राजुल एव नेमि के १२ महिने किस प्रकार व्यतीत होते हैं यही वर्णन करना रचना का मुख्य उद्देश्य है ।

अब तक कवि की ६ रचनायें एव ३८ पदों की खोज की जा चुकी है ।

इस प्रकार सन्त रत्नकीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक एव साहित्य सेवी विद्वान थे । इनके द्वारा रचित पदो की प्रथम पक्ति निम्न प्रकार है—

१ सारङ्ग ऊपर सारङ्ग सोहे सारङ्गत्यासार जी
२ सुण रे नेमि सामलीया साहेव क्यो बन छोरी जाय
३. सारङ्ग सजी सारङ्ग पर आवे
४ वृषभ जिन सेवो बहु प्रकार
५ सखी री सावन घटाई सतावे
६ नेम तुम कैसे चले गिरिनार
७. कारण कोउ पीया को न जाणे
८. राजुल गेहे नेमी जाय
९. राम सतावे रे मोही रावन
१०. अब गिरी वरज्यो न माने मोरो
११. नेमि तुम आयो धरिय घरे
१२ राम कहे अवर जया मोही भारी
१३. दशानन वीनती कहत होइ दास
१४ बरज्यो न माने नयन निठोर
१५ झीलते कहा कर्यो यदुनाथ
१६. सरदी की रयनि सुन्दर सोहात
१७. सुन्दरी सकल सिंगार करे गोरी
१८. कहा थे मडन करु कजरा नैन भरु
१९. सुनो मेरी सयनी धन्य या रयनी रे
२०. रथडो नीहालती रे पूछति सहे सावन नी वाट
२१ सखी को मिलावो नेम नरिंदा
२२ सखी री नेम न जानी पीर
२३. वदेह जनता शरण
२४. श्रीराग गावत सुर किन्नरी
२५ श्रीराग गावत सारङ्गधरी
२६. आजू आली आये नेम नो साउरी

२७. वनी वधो का न वरज्यो अपनो

२८. आजो रे सखि सामलियो वहालो रथि परि स्हो भावे रे

२९. गोरि चडी जू ए रायुल राणी नेमिकुवर वर आवे रे

३०. आवो सोहामणी सुन्दरी वृन्द रे पूजिये प्रथम जिणंद रे

३१. ललना समुद्रविजय सुत साम रे यदुपति नेमकुमार हो

३२. सुणि सखि राजुल कहे हैडे हरष न माय लाल रे

३३. सशधर वदन सोहामणि रे, गजगामिनी गुणमाल रे

३४. वणारसी नगरी नो राजा अश्वसेन गुणधार

३५. श्रीजिन सनमति अवतर्या ना रङ्गी रे

३६. नेम जी दयालुडारे तू तो यादव कुल सिणगार

३७. कमल वदन करुणा निलयं

३८. सुदर्शन नाम के मैं वारि

अन्य कृतियां

३९ महावीर गीत

४०. नेमिनाथ फागु

४१. नेमिनाथ का बारहमासा

४२. सिद्ध धूल

४३. बलिभद्रनी वीनती

४४. नेमिनाथ वीनती

मूल्यांकन

भक्ति मे अधिक रुचि रखते थे इसलिए उन्होंने अपनी अधिकाश कृतिया इन्ही दो पर आधारित करके लिखी। नेमिनाथ गीत एव नेमिनाथ बारहमासा के अतिरक्त अपने हिन्दी पदो मे राजुल नेमि के सम्बन्ध को अत्यधिक भावपूर्ण भाषा मे उपस्थित किया। सर्व प्रथम इन्होने राजुल को एक नारी के रूप मे प्रस्तुत किया। विवाह होने के पूर्व की नारी दशा को एव तोरणद्वार से लौट जाने पर नारी हृदय को खोलकर अपने पदो मे रख दिया। वास्तव मे यदि रत्नकीर्त्ति के इन पदों का गहरा अध्ययन किया जावे तो कवि की कृतियो मे हमे कितने ही नये चरणो की स्थापना मिलेगी। विवाह के पूर्व राजुल अपने पूरे शृ गार के साथ पति की बारात देखने के लिए महल की छत पर सहेलियो के साथ उपस्थित होती है इसके पश्चात पति के अकस्मात वैराग्य धारण कर लेने के समाचारो से उसका शृ गार वियोग मे परिणत हो जाता है दोनो ही वर्णनो को कवि ने अपने पदो मे उत्तम रीति से प्रस्तुत किया है।

भ० रत्नकीर्त्ति की सभी रचनायें भाषा, भाव एव शैली सभी दृष्टियो से अच्छी रचनायें हैं। कवि हिन्दी के जबरदस्त प्रचारक थे। सस्कृत के ऊंचे विद्वान् होने पर भी उन्होंने हिन्दी भाषा को ही अधिक प्रश्रय दिया और अपनी कृतियाँ इसी भाषा मे लिखी। उन्होने राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात मे भी हिन्दी रचनाओ का ही प्रचार किया और इस तरह हिन्दी प्रेमी कहलाने मे अपना गौरव समझा। यही नही रत्नकीर्त्ति के सभी शिष्य प्रशिष्यो ने इस भाषा मे लिखने का उपक्रम जारी रखा और हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना पूर्ण योग दिया।

— — — —

बारडोली के संत कुमुदचंद्र

बारडोली गुजरात का प्राचीन नगर है। सन् १९२१ मे यहां स्व० सरदार वल्लभ भाई पटेल ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह का बिगुल बजाया था और बाद मे वहीं की जनता द्वारा उन्हें 'सरदार' की उपाधि दी गई थी। आज से ३५० वर्ष पूर्व भी यह नगर अध्यात्म का केन्द्र था। यहां पर ही 'सन्त कुमुदचन्द्र' को उनके गुरु भ० रत्नकीर्त्ति एव जनता ने भट्टारक-पद पर अभिषिक्त किया था। इन्होने यहा के निवासियो मे धार्मिक चेतना जाग्रत की एव उन्हे सच्चरित्रता, सयम एवं त्यागमय जीवन अपनाने के लिए बल दिया। इन्होने गुजरात एवं राजस्थान मे साहित्य, अध्यात्म एव धर्म की त्रिवेणी बहायी।

सत कुमुदचद्र वाणी से मधुर, शरीर से सुन्दर तथा मन से स्वच्छ थे। जहा भी उनका विहार होता जनता उनके पीछे हो जाती। उनके शिष्यो ने अपने गुरु की प्रशसा मे विभिन्न पद लिखे हैं। संयमसागर ने उनके शरीर को बत्तीस लक्षणों से सुशोभित, गम्भीर बुद्धि के धारक तथा वादियो के पहाड को तोडने के लिए वज्र समान कहा है।[1] उनके दर्शनमात्र से ही प्रसन्नता होती थी। वे पाच महाव्रत तेरह प्रकार के चारित्र को धारण करने वाले एव बाईस परीषह को सहने वाले थे।[2] एक दूसरे शिष्य धर्मसागर ने उनकी पात्रकेशरी, जम्बूकुमार, भद्रबाहु एव गौतम गणधर से तुलना की है।[3]

उनके विहार के समय कुंकम छिडकने तथा मोतियो का चौक पूरने एव बधावा गाने के लिए भी कहा जाता था।[4] उनके एक और शिष्य गणेश ने उनकी निम्न शब्दो मे प्रशसा की है:—

---

१. ते बहु कूखि उपनो वीर रे, बत्तीस लक्षण सहित शरीर रे।
बुद्धि बहोत्तरि छे गंभीर रे, वादी नग खण्डन वज्र समधीर रे॥

२ पंच महाव्रत पाले चंग रे, त्रयोदश चारित्र छे अभंग रे।
बावीय परीसा सहे अंगि रे, दरशन दीठे रंग रे॥

३. पात्रकेशरी सम जांणियेरे. जाणों वे जंबु कुमार।
भद्रबाहु यतिवर जयो, कलिकाले रे गोयम अवतार रे॥

४. सुन्दरि रे सहु आवो, तह्मे कुंकम छडो देवडावो।
वारु मोतिये चौक पूरावो, रूडा सह गुरु कुमुदचंदने वधावे॥

कला बहोत्तर अ ग रे, श्रीयले जीत्यो अनग ।
माहत मुनी मूलसघ के सेवो सुरतरुजी ।।

सेवो सज्जन आनद धनि कुमुदचन्द मुणिंद,
रतनकीरति पाटि चद के गच्छपति गुणनिलोजी ।।१।।

जीवो की दया करने के कारण लोग उन्हे दया का वृक्ष कहते थे। विद्यावल से उन्होने अनेक विद्वानो को अपने वश मे कर लिया था। उनकी कीर्त्ति चारो ओर फैल गयी थी तथा राजा महाराजा एव नवाब उनके प्रशसक वन गये थे।

कुमुदचन्द्र का जन्म गोपुर ग्राम मे हुआ था। पिता का नाम सदाफल एव माता का नाम पद्मावाई था। इन्होने मोढ वश मे जन्म लिया था।[1] इनका जन्म का नाम क्या था, इसके विषय मे कोई उल्लेख नही मिलता। वे जन्म से होनहार थे।

वचपन से ही वे उदासीन रहने लगे और युवावस्था से पूर्व ही इन्होने सयम धारण कर लिया। इन्द्रियो के ग्राम को उजाड दिया तथा कामदेव रूपी सर्प को जीत लिया।[2] अध्ययन की ओर इनका विशेष ध्यान था। ये रात दिन व्याकरण, नाटक, न्याय, आगम एव छद अलकार शास्त्र आदि का अध्ययन किया करते थे।[3] गोम्मटसार आदि ग्रन्थो का इन्होंने विशेष अध्ययन किया था। विद्यार्थी अवस्था मे ही ये भ० रत्नकीर्त्ति के शिष्य वन गये। इनकी विद्वत्ता, वाक्चातुर्यता एव अगाध ज्ञान को देखकर भ० रत्नकीर्त्ति इन पर मुग्ध हो गये और इन्हे अपना प्रमुख शिष्य वना लिया। धीरे २ इनकी कीर्त्ति वढने लगी। रत्नकीर्त्ति ने वारडोली नगर में अपना पट्ट स्थापित किया था और सवत् १६५६ (सन् १५९९) वैशाख मास मे

---

१. मोढ वश शृ गार शिरोमणि, साह सदाफल तात रे।
जायो जतिवर जुग जयवन्तो, पद्मावाई सोहात रे ।।

२. वालपणें जिणे संयम लीधो, धरीयो वेराग रे।
इन्द्रिय ग्राम उजारया हेला, जीत्यो मद नाग रे ।।

३. अहनिशि छन्द व्याकरण नाटिक भणे,
न्याय आगम अलंकार।

वादी गज केसरी विरुद्ध वारु वहे,
सरस्वती गच्छ सिणगार रे ।।

गीत धर्मसागर कृत

इनका जैनो के प्रमुख सत (भट्टारक) के पद पर अभिषेक कर दिया ।[1] यह सारा कार्य सघपति कान्ह जी, सघ वहिन जीवादे, सहस्रकरण एव उनकी धर्मपत्नी तेजलदे, भाई मल्लदास एव वहिन मोहनदे, गोपाल आदि की उपस्थिति मे हुआ था । तथा इन्होंने कठिन परिश्रम करके इस महोत्सव को सफल बनाया था ।[2] तभी से कुमुदचन्द बारडोली के सत कहलाने लगे ।

बारडोली नगर एक लम्बे समय तक आध्यात्मिक, साहित्यिक एव धार्मिक गति-विधियो का केन्द्र रहा । सत कुमुदचन्द्र के उपदेशामृत को सुनने के लिए वहा धर्मप्रेमी सज्जनो का हमेशा ही आना जाना रहता । कभी तीर्थयात्रा करने वालो का सघ उनका आशीर्वाद लेने आता तो कभी अपने-अपने निवास-स्थान के रजकणो को सत के पैरों से पवित्र कराने के लिए उन्हे निमन्त्रण देने वाले वहा आते । सवत्

---

१. सवत् सोल छपन्ने वैशाखे प्रकट पटोधर थाप्या रे ।
रत्नकीर्त्ति गोर बारडोली वर सूर मंत्र शुभ आप्या रे ।
भाई रे मन मोहन मुनिवर सरस्वती गच्छ सोहत ।
कुमुदचन्द भट्टारक उदयो भवियण मन मोहंत रे ॥

गुरु स्तुति गणेशकृत

बारडोली मध्ये रे, पाट प्रतिष्ठा कीध मनोहार ।
एक शत आठ कुम्भ रे, ढाल्या निर्मल जल अतिसार ॥
सूर मंत्र आपयो रे, सकलसघ सानिध्य जयकार ।
कुमुदचन्द्र नाम कह्यु रे, सघवि कुटम्ब प्रतपो उदार ॥

गुरु गीत गणेश कृत

२. संघपति कहान जी सघवेण जीवादेनो कन्त ।
सहेसकरण सोहे रे तरुणी तेजलदे जयवंत ॥
मल्लदास मनहर रे नारी मोहन दे अति सत ।
रमावे वीर भाई रे गोपाल वेजल्दे मन मोहन्त ॥६॥

गुरु-गीत

सघवी कहान जी भाइया वीर भाई रे ।
मल्लिदास जमला गोपाल रे ॥
छपने संवत्सरे उछव अति कर्यो रे ।
सघ मेली बाल गोपाल रे ॥

गीत-गणेशकृत

१६८२ मे इन्होने गिरिनार जाने वाले एक सघ का नेतृत्व किया।[1] इस सघ के सघपति नागजी भाई थे, जिनकी कीर्त्ति चन्द्र—सूर्य—लोक तक पहुच चुकी थी। यात्रा के अवसर पर ही कुमुदचन्द्र सघ सहित घोघा नगर आये, जो उनके गुरु रत्नकीर्त्ति का जन्म—स्थल था। बारडोली वापस लौटने पर श्रावको ने अपनी अपार सम्पत्ति का दान दिया।[2]

कुमुदचन्द्र आध्यात्मिक एव धार्मिक सन्त होने के साथ साथ साहित्य के परम आराधक थे। अव तक इनकी छोटी वडी २८ रचनाऐ एव ३० से भी अधिक पद प्राप्त हो चुके हैं। ये सभी रचनाऐ राजस्थानी भाषा में हैं, जिन पर गुजराती का प्रभाव है। ऐसा ज्ञात होता है कि ये चिन्तन, मनन एव धर्मोपदेश के अतिरिक्त अपना सारा समय साहित्य-सृजन मे लगाते थे। इनकी रचनाओ मे गीत अधिक हैं, जिन्हें ये अपने प्रवचन के समय श्रोताओ के साथ गाते थे।[3] नेमिनाथ के तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण करने की अदभुत घटना से ये अपने गुरु रत्नकीर्त्ति के समान बहुत प्रभावित थे, इसीलिए इन्होने नेमिनाथ एव राजुल पर कई रचना लिखी हैं। उनमे नेमिनाथ बारहमासा, नेमीश्वर गीत, नेमिजिन गीत, आदि के नाम उल्लेखनिय हैं। राजुल का सौन्दर्य वर्णन करते हुए इन्होने लिखा है—

रूपे फूटडो मिटे जूठडी वोले मीठडी वाणी।
विद्रुम उठडो पल्लव गोठडी रसनी कोटडी वखाणी रे॥

सारग वयणी सारग नयणी सारग मनी श्यामा हरी।
लवी कटि भमरी वकी शकी हरिनी मार रे॥

कवि ने अधिकाश छोटी रचनाऐ लिखी हैं। उन्हे कठस्थ भी किया जा सकता है। वडी रचनाओ मे आदिनाथ विवाहलो, नेमीश्वरहमची एव भरत वाहुवलि

---

१. सवत् सोल व्यासीये संवच्छर गिरिनारि यात्रा कीधा।
श्री कुमुदचन्द्र गुरु नामि संघपति तिलक कहवा॥१३॥

गीत धर्मसागर कृत

२ इणि परिउछव करता आव्या घोघानगर मझारि।
नेमि जिनेश्वर नाम जपंता उतर्‌या जलनिधिपार॥

गाजते वाजते साहमा करीने आव्या वारडोली ग्राम।
याचक जन सन्तोष्या भूतलि राख्यो नाम॥

३. देश विदेश विहार करे गुरु प्रति वोध प्राणी।
धर्म कथा रसने वरसन्ती. मीठी छे वाणी रे भाय॥

छन्द हैं। शेष रचनाए गीत एव विनतियो के रूप मे हैं। यद्यपि सभी रचनाएं सुन्दर एव भाव पूर्ण है लेकिन भरत बाहुबलि छद, आदिनाथ विवाहलो एव नेमीश्वर हमची इनकी उत्कृष्ट रचनायें है। भरत बाहुबलि एक खण्ड काव्य है, जिसमे मुख्यत. भरत और बाहुवलि के युद्ध का वर्णन किया गया है। भरत चक्रवर्त्ति को सारा भूमण्डल विजय करने के पश्चात् मालूम होता है कि अभी उन के छोटे भाई बाहुबलि ने उनकी अधीनता स्वीकार नही की है तो सम्राट भरत बाहुबलि को समझाने को दूत भेजते हैं। दूत और बहुवलि का उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत सुन्दर हुआ है।

अन्त मे दोनो भाइयो मे युद्ध होता है, जिसमे विजय बाहुवलि की होती है। लेकिन विजयश्री मिलने पर भी बाहुबलि जगत से उदासीन हो जाते है और वैराग्य धारण कर लेते हैं। घोर तपश्चर्या करने पर भी "मै भरत की भूमि पर खडा हुआ हू," यह शल्य उनके मन से नही हटती और जब स्वय सम्राट् भरत उनके चरणो मे जाकर गिरते हैं और वास्तविक स्थिति को प्रगट करते हैं तो उन्हे तत्काल केवल ज्ञान प्राप्त होकर मुक्तिश्री मिल जाती है। पूरा का पूरा खण्ड काव्य मनोहर शब्दो मे गु थित है। रचना के प्रारम्भ मे जो अपनी गुरु परम्परा दी है वह निम्न प्रकार है—

पणविवि पद आदीश्वर केरा, जेह नामे छूटे भव-फेरा।
ब्रह्म सुता समरू मतिदाता, गुण गण मडित जग विख्याता ॥

वदवि गुरू विद्यानदि सूरी, जेहनी कीर्त्ति रही भर पूरी।
तस पट्ट कमल दिवाकर जाणु, मल्लिभूषण गुरु गुण वक्खाणु ॥

तस पट्टे पट्टोधर पडित, लक्ष्मीचन्द महाजस मडित।
अभयचद गुरु शीतल वायक, सेहेर वश मंडन सुखदायक ॥

अभयनदि समरू मन माहि, भव भूला बल गाडे बाहि।
तेह तणि पट्टे गुणभूषण, वदवि रत्नकीरति गत दूषण ॥

भरत महिपति कृत मही रक्षण, बाहुबलि बलवत विचक्षण।

बाहुबलि पोदनपुर के राजा थे। पोदनपुर धन धन्य, बाग बगीचा तथा झीलो का नगर था। भरत का दूत जब पोदनपुर पहुँचता है तो उसे चारो ओर विविध प्रकार के सरोवर, वृक्ष, लतायें दिखलाई देती हैं। नगर के पास ही गगा के समान निर्मल जल वाली नदी बहती है। सात सात मजिल वाले सुन्दर महल नगर की शोभा बढा रहे हैं। कुमुदचन्द ने नगर की सु दरता का जिस रूप मे वर्णन किया है उसे पढिये—

चाल्यो दूत पयाणे रे हे तो, थोडो दिन पोयणपुरी पोहोतो।
दीठी सीम सघन कण साजित, वापी कूप तडाग विराजित ॥

कलकार जो नल जल कु डी, निर्मल नीर नदी अति ऊ डी।
विकसित कमल अमल दलपती, कोमल कुमुद समुज्जल क ती ॥

वन वाडी आराम सुरगा, अ व कदब उदवर तु गा।
करणा केतकी कमरख केली, नव नारगी नागर वेली ॥

अगर तगर तरु तिंदुक ताला, सरल सोपारी तरल तमाला।
वदरी वकुल मदाड वीजोरी, जाई जूई जवु जमीरी ॥

चदन चपक चाउरउली, वर वासती वटवर सोली।
रायणरा जवु सुविशाला, दाडिम दमणो द्राप रसाला ॥

फूला सुफुल्ल अमूल्ल गुलावा, नीपनी वाली निंवुक निंवा।
कण पर कोमल लत सुरगी, नालीपरी दीशे अति चगी ॥

पाडल पनश पलाश महाघन, लवली लीन लवग लताघन ॥

वाहुवलि के द्वारा अधीनता स्वीकार न किए जाने पर दोनो ओर की विशाल सेनायें एक दूसरे के सामने आ डटी। लेकिन जब देवो और राजाओ ने दोनो भाइयो को ही चरम शरीरी जानकर यह निश्चय किया कि दोनो ओर की सेनाओ मे युद्ध न होकर दोनो भाइयो मे ही जलयुद्ध मल्लयुद्ध एव नेत्रयुद्ध हो जावे और उसमे जो जीत जावे उसे ही चक्रवर्ती मान लिया जावे। इस वर्णन को कवियो के शब्दो मे पढिये :—

त्रण्य युद्ध त्यारे सहु वेढा, नीर नेत्र मल्लाह वपरढ्या।
जो जीते ते राजा कहिये, तेहनी आज विनयसु वहिए।
एह विचार करीनें नरवर, चल्या सहु साथे महर भर।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चाल्या मल्ल अखाडे वलीआ, सुर नर किन्नर जोया मलीआ।
काछ्या काछ कसो पट ताणी' वोले वागड वोली वाणी।

भुजा दड मन सु ड समाना, ताडता वल्कारे नाना।

हो हो कार करि ते धाया, वछो वच्छ पड्या दो राया।
हक्कारे पच्चारे पाडे, वलगा वलग करी ते आडे।

पग पछधा पोहोंयी तल वाजे, पडपडता तरुवर ते भाजे।
नाठा वनचर त्राठा कायर, छूटा मयगल फूटा सायर ॥ ---

गड गडता गिरिवर ते पडीआ, फूत फरता फणिपति डरीआ।
गढ गडगडीआ मन्दिर पडीआ, दिग दंतीव मक्या चल चकीआ।

जन खलभली आवाल कछलीआ, भव-भीरू अवला कल मलीआ।
तोपण ले घरणी धवदू के, लड पडता पडता नवि चूके ।

उक्त रचना आमेर शास्त्र मण्डार गुटका सख्या ५२ मे पत्र संख्या ४० से ४८ पर है।

२. आदिनाथ विवाहलो

इसका दूसरा नाम ऋषभ विवाहलो भी है। यह भी छोटा खण्ड काव्य है, जिसमे ११ ढाले हैं। प्रारम्भ मे ऋषभदेव की माता को १६ स्वप्नो का आना, ऋषभदेव का जन्म होना तथा नगर मे विभिन्न उत्सवो का आयोजन किया गया। फिर ऋषभ के विवाह का वर्णन है। अन्त की ढाल मे उनका वैराग्य धारण करके निर्वाण प्राप्त करना भी बतला दिया गया है।

कुमुदचन्द्र ने इसे भी सवत् १६७८ मे घोवा नगर मे रचा था। रचना का एक वर्णन देखिये—

कछ महाकछ रायरे, जे हनु जग जश गायरे।
तरा कु अरी रूवें सोहरे, जोतां जनमन मोहेरे।

सुन्दर वेणी विशाल रे, अरघ शशी सम भाल रे।

नयन कमल दल छाजे रे, मुख पूरणचन्द्र राजे रे।
नाक मोहे तिलनु फूल रे, अधर सुरंग तणु नहि भूल रे।

ऋषभदेव के विवाह मे कौन-कौन सी मिठाइया बनी थी, उसका भी रसास्वादन कीजिए—

रटि लागे पेवरने दीठा, कोल्हापाक पतासा मीठा।
दूध पाक चणा साकरीआ, सारा सकरपारा कर करीआ।

मोटा मोती आमोद कलावे, दलीआ कसम सीआ भावे।

घति गुरवर सेवईया सुन्दर, आरोगे भोग पुरंदर।
प्रीसे पापड गोटा तलीआ, पूरी आला अति उजलीआ।

नेमिनाथ के विरह मे राजुल जिस प्रकार तडफती थी तथा उसके बारह महीने किस प्रकार व्यतीत हुए, इनका नेमिनाथ बारहमासा में सजीव वर्णन किया

है। इसी तरह का वर्णन कवि ने प्रणय गीत एवं हिंडोलना-गीत मे भी किया है।

फागुण केसु फूलीयो, नर नारी रमे वर फाग जी।
हास विनोद करे घणा, किम नाहे धरयो वैराग जी ।।

नेमिनाथ बारहमासा

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सीयालो सगलो गयो, पणि नावियो यदुराय।
तेह बिना मुझने झूरता, एह दीहडा रे वरसा सो थापके।

प्रणय-गीत

वणजारा गीत मे कवि ने ससार का सुन्दर चित्र उतारा है। यह मनुष्य वणजारे के रूप मे यो ही ससार से भटकता रहता है। वह दिन रात पाप कमाता है और ससार बधन से कभी भी नही छूटता।

पाप करया ते अनत, जीवदया पाली नही।
साचो न बोलियो बोल, भरम मो साबहु बोलिया ।।

शील गीत मे कवि ने चरित्र प्रधान जीवन पर अत्यधिक जोर दिया है। मानव को किसी भी दिशा मे आगे बढने के लिए चरित्र-बल की आवश्यकता है। साधु संतो एव सयमी जनो को स्त्रियो से अलग ही रहना चाहिए-आदि का अच्छा वर्णन मिलता है इसी प्रकार कवि की सभी रचनायें सुन्दर हैं।

पदो के रूप में कुमुदचन्द्र ने जो साहित्य रचा है वह और भी उच्च कोटि का है। भाषा, शैली एव भाव सभी दृष्टियों से ये पद सुन्दर हैं। "मै तो नर भव वादि गवायो" पद मे कवि ने उन प्राणियो की सच्ची आत्मपुकार प्रस्तुत की है, जो जीवन मे कोई भी शुभ कार्य नही करते है। अन्त मे हाथ मलते ही चले जाते हैं।

'जो तुम दीनदयाल कहावत' पद भी भक्ति रस की सुन्दर रचना है। भक्ति एव अध्यात्म-पदो के अतिरिक्त नेमि राजुल सम्बन्धी भी पद हैं, जिनमे नेमिनाथ के प्रति राजुल की सच्ची पुकार मिलती है। नेमिनाथ के बिना राजुल को न प्यास लगती है और न भूख सताती है। नीद नही आती है और बार-बार उठकर गृह का आगन देखती रहती है। यहा पाठको के पठनार्थ दो पद दिए जा रहे हैं—

राग-धनश्री

मैं तो नर भव वादि गमायो।
न कियो जप तप व्रत विधि सुन्दर, काम भलो न कमायो ।।
मैं तो... ।।१।।

विकट लोभ ते कपट कूट करी, निपट विषय लपटाओ ।
विटल कुटिल शठ सगति बैठो, साधु निकट विघटायो ।।
मैं तो... ।।२।।

कृपण भयो कछु दान न दीनो, दिन दिन दाम मिलायो ।
जब जोवन जजाल पड्यो तब, पर त्रिया तनु चितलायो ।।
मै तो... ।।३।।

अन्त समय कोउ संग न आवत, झूठहि पाप लगायो ।
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही, प्रभु पद जस नही गायो ।।
मैं तो... ।।४।।

पद राग–सारंग

सखी री अब तो रह्यो नहि जात ।
प्राणनाथ की प्रीति न विसरत, क्षण क्षण छीजत गात ।।
सखी... ।।१।।

नहि न भूख नहिं तिसु लागत, घरहि घरहि मुरझात ।
मनतो उरझी रह्यो मोहन सु, सेवन ही सुरझात ।।
सखी .. ।।२।।

नाहिने नीद परती निसिवासर, होत विसुरत प्रात ।
चन्दन चन्द्र सजल नलिनीदल, मन्द मारुत न सुहात ।।
सखी ।।३।।

गृह आगन देख्यो नही भावत, दीनभई विललात ।
विरही वाउरी फिरत गिरि–गिरि, लोकन तें न लजात ।।
सखी० ।।४।।

पीउ विन पलक कल नही जीउकू न रुचित रासिक गुबात ।
'कुमुदचन्द' प्रभु सरस दरस कू, नयन चपल ललचात ।।
सखी० ।।५।।

व्यक्तित्व—

संत कुमुदचन्द्र संवत् १६५६ तक भट्टारक पद पर रहे । इतने लम्बे समय मे इन्होने देश मे अनेक स्थानो पर विहार किया और जन-साधारण को धर्म एव अध्यात्म का पाठ पढाया । ये अपने समय के असाधारण सन्त थे । उनकी गुजरात

तथा राजस्थान मे अच्छी प्रतिष्ठा थी। जैन साहित्य एव सिद्धान्त का उन्हे अप्रतिम ज्ञान था। वे सभवत आशु कवि भी थे, इसलिए श्रावको एव जन साधारण को पद्य रूप मे ही कभी २ उपदेश दिया करते थे। इनके शिष्यो ने जो कुछ इनके जीवन एव गतिविधियो के बारे मे लिखा है, वह इनके अभूतपूर्व व्यक्तित्व की एक झलक प्रस्तुत करता है।

शिष्य परिवार

वैसे तो भट्टारको के बहुत से शिष्य हुआ करते थे जिनमे आचार्य, मुनि, ब्रह्मचारी, आर्यिका आदि होते थे। अभी जो रचनाए उपलब्ध हुई हैं, उनमे अभय चद्र, ब्रह्मसागर, धर्मसागर, सयमसागर, जयसागर एव गणेशसागर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी शिष्य हिन्दी एव सस्कृत के भारी विद्वान थे और इनकी बहुत सी रचनाए उपलब्ध हो चुकी हैं। अभयचन्द्र इनके पश्चात् भट्टारक बने। इनके एवं इनके शिष्य परिवार के विषय मे आगे प्रकाश डाला जावेगा।

कुमुदचन्द्र की अब तक २८ रचनाएँ एव पद उपलब्ध हो चुके है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

मूल्याकन

'भ० रत्नकीर्ति' ने जो साहित्य-निर्माण की पावन-परम्परा छोडी थी, उसे उनके उत्तराधिकारी 'भ० कुमुदचन्द्र' ने अच्छी तरह से निभाया। यही नही 'कुमुद चन्द्र' ने अपने गुरु से भी अधिक कृतिया लिखी और भारतीय समाज को अध्यात्म एव भक्ति के साथ साथ शृगार एव वीर रस का भी आस्वादन कराया। 'कुमुदचन्द्र' के समय देश पर मुगल शासन था, इसलिए जहा-तहा युद्ध होते रहते थे। जनता मे देश रक्षा के प्रति जागरूकता थी, इसलिए कवि ने भरत-बाहुबलि छन्द मे जो युद्ध-वर्णन किया है- वह तत्कालीन जनता की माग के अनुसार था। इससे उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि जैन-कवि यद्यपि साधारणत: आध्यात्म एव भक्ति परक कृतिया लिखने मे ही अधिक रुचि रखते हैं- लेकिन आवश्यकता हो तो ये वीर रस प्रधान रचना भी देश एवं समाज के समक्ष उपस्थित कर सकते हैं।

'कुमुदचन्द्र' के द्वारा निबद्ध 'पद-साहित्य' भी हिन्दी-साहित्य की उत्तम निधि है। उन्होंने "जो तुम दीनदयाल कहावत" पद में अपने हृदय को भगवान के समक्ष निकाल कर रख दिया है और वह अपने भक्तो के प्रति की जाने वाली उपेक्षा की ओर भी प्रभु का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है और फिर "प्रनाथनि हूं, चक्र दीजे" के रूप में प्रभु और भक्त के सम्बन्धों का बखान करता है। 'मैं तो नर भव

वादि गमायो"—पद में कवि ने उन मनुष्यो को चेतावनी दी है, जो जीवन का कोई सदुपयोग नही करते और यो ही जगत मे आकर चल देते हैं। यह पद अत्यधिक सुन्दर एव भावपूर्ण है। इसी तरह 'कुमुदचन्द्र' ने 'नेमिनाथ-राजुल' के जीवन पर जो पद-साहित्य लिखा है, वह भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। "सखी री अब तो रह्यो नहिं जात"—मे राजुल की मनोदशा का अच्छा चित्र उपस्थित किया है। इसी तरह "आली री अ विरखा ऋतु आजु आई"—मे राजुल के रूप में विरहिणीनारी के मन में उठने वाले भावो को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार 'कुमुदचन्द्र' ने अपने पद-साहित्य मे अध्यात्म, भक्ति एव वैराग्य परक पद रचना के अतिरिक्त 'राजुल-नेमि' के जीवन पर जो पद-साहित्य लिखा है, वह भी हिन्दी-पद-साहित्य एव विशेषत. जैन-साहित्य मे एक नई परम्परा को जन्म देने वाला रहा था। आगे होने वाले कवियो ने इन दोनो कवियो की इस शैली का पर्याप्त अनुसरण किया था।

कवि की अब तक उपलब्ध कृतियो के नाम निम्न प्रकार है—

१.	त्रेपन क्रिया विनती	१४ पद्य
२.	आदिनाथ विवाहलो	१४ ,,
३.	नेमिनाथ द्वादशमासा	१४ ,,
४.	नेमीश्वर हमची	८७ ,,
५.	त्रण्य रति गीत	१७ ,,
६	हिंदोला गीत	३१ ,,
७	वणजारा गीत	२१ ,,
८.	दश लक्षण धर्मव्रत गीत	११ ,,
९.	शील गीत	१० ,,
१०.	सप्त व्यसन गीत	१३ ,,
११.	अठाई गीत	१४ ,,
१२.	भरतेश्वर गीत	७ ,,
१३.	पार्श्वनाथ गीत	१९ ,,
१४.	अन्धोलडी गीत	१३ ,,
१५.	आरती गीत	७ ,,
१६.	जन्म कल्याणक गीत	८ ,,
१७.	चिंतामणि पार्श्वनाथ गीत	१३ ,,

१८.	दीपावली गीत	६	"
१६.	नेमि जिन गीत	११	"
२०.	चौबीस तीर्थंकर देह प्रमाण चौपई	१७	"
२१.	गौतम स्वामी चौपई	८	"
२२.	पार्श्वनाथ की विनती	१७	"
२३.	लोढण पार्श्वनाथ जी	३०	"
२४.	आदीश्वर विनती	१०	"
२५.	मुनिसुव्रत गीत	७	"
२६.	गीत	१०	"
२७.	जीवडा गीत	९	"
२८	भरत वाहुवलि छन्द		
२६.	परदारो परशील सज्झाय		
३०.	भरत वाहुवलि छन्द		

इनके अतिरिक्त उनके रचे हुए कितने ही पद मिले हैं। इन पदो मे से ३३६ वी प्रथम पक्ति निम्न प्रकार है—

पद

१. म करीस पर नारी को सग।
२. सघ जी नाग जी गीत।
३. जागो रे भवियण उ घ नवि करीजे।
४. जागि हो भवियण सफल विहाणु।
५. जागि हो भवियण उ घीये नही घणू।
६. उदित दिन राज रुचि राज सुवि भात।
७. आवो रे साहेली जइत यादव भणी।
८. जय जय आदि जिनेश्वर राय।
६. थेई थेई थेई नृत्यति भमरी।
१०. बिनज वदन रुचि र रदन काम।
११. श्याम वरण सुगति करण सर्व सौख्यकारी।
१२. आस्यु रे इम कोध माहरा नेमजी।

१३. वदेह शीतल चरणं ।

१४. अवसर आजू हेरे हवे दान पुण्य काइ कीजे ।

१५. लाला को मुझ चारित्र चूनडो ।

१६. ए ससार भमतडा रे व लहको धर्म विचार ।

१७. वालि वालि तु वालिय सजनी ।

१८ लाल लाल लाल तु मा जास रे ।

१९. सगति कीजे रे साधु तणी वली ।

२०. आज सबनि मे हूं वड भागी ।

२१. आजु मैं देखे पास जिनेंदा ।

२२ आली री अ बिरखा ऋतु आजु आई ।

२३. आवो रे सहिय सहिलडी सगे ।

२४ चेतन चेतन किउ बावरे ।

२५. जनम सफल भयो, भयो सुका जरे ।

२६. जागि हो, भोर भयो कहर सोवत ।

२७. जो तुम दीन दयाल कहावत ।

२८. नाथ अनाकनि कू कछु दीजे ।

२९. प्रभु मेरे तुमकु ऐसी न चाहिये ।

३०. मैं तो नर-भव वादि गमायो ।

३१. सखी री अब तो रह्यो नहिं जात ।

मुनि अभयचन्द्र

'अभयचन्द्र' नाम के दो भट्टारक हुए हैं । 'प्रथम अभयचन्द्र' भ० लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य थे, जिन्होंने एक स्वतत्र 'भट्टारक-सस्था' को जन्म दिया । उनका समय विक्रम की सोलहवी शताब्दि का द्वितीय चरण था । दूसरे 'अभयचन्द्र' इन्ही की परम्परा मे होने वाले 'भ० कुमुदचन्द्र' के शिष्य थे । यहा इन्ही दूसरे 'अभयचन्द्र' का परिचय दिया जा रहा है ।

'अभयचन्द्र' भट्टारक थे और 'कुमुदचन्द्र' की मृत्यु के पश्चात् भट्टारक गादी पर बैठे थे । यद्यपि 'अभयचन्द्र' का गुजरात से काफी निकट का सम्बन्ध था, लेकिन राजस्थान मे भी इनका बराबर विहार होता था और ये गाव-गाव, एव नगर-नगर मे भ्रमण करके जनता से सीधा सम्पर्क बनाये रखते थे । 'अभयचन्द्र' अपने गुरु के योग्यतम शिष्य थे । उन्होंने भ० रत्नकीर्त्ति एव भ० कुमुदचन्द्र का शासनकाल देखा था और देखी थी उनकी 'साहित्य-साधना' । इसलिए जब ये स्वय प्रमुख सन्त बने तो इन्होने भी उसी परम्परा को बनाये रखा । सवत् १६८५ की फाल्गुन सुदी ११ सोमवार के दिन बारडोली नगर मे इनका पट्टाभिषेक हुआ और इस पद पर सवत् १७२१ तक रहे ।

'अभयचन्द्र' का जन्म स० १६४० के लगभग 'हूबड' वश में हुआ था । इनके पिता का नाम 'श्रीपाल' एवं माता का नाम 'कोडमदे' था । बचपन से ही बालक 'अभयचन्द्र' को साधुओ की मडली मे रहने का सुअवसर मिल गया था । हेमजी-कुअरजी इनके भाई थे-ये सम्पन्न घराने के थे । युवावस्था के पहिले ही इन्होने पाचो महाव्रतो का पालन प्रारम्भ किया था ।[1] इसीके साथ इन्होंने संस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थो का उच्चाध्ययन किया । न्याय-शास्त्र मे पारगतता प्राप्त की तथा अलकार-शास्त्र एव नाटको का गहरा अध्ययन किया ।[2] अच्छे वक्ता तो ये प्रारम्भ से ही थे, किन्तु विद्वता के होने से सोने-सुगध का सा सुन्दर समन्वय होगया ।

जब उन्होने युवावस्था में पदार्पण किया, तो त्याग एव तपस्या के प्रभाव से

---

१. हूबड वंशे श्रीपाल साह तात, जनम्यो रूडी रतन कोडमदे मात ।
लघु परणें लीधो महाव्रत भार, मनवश करी जीत्यो दुर्द्धरभार ॥

२. तर्क नाटक आगम अलंकार, अनेक शास्त्र भण्या मनोहार ।
भट्टारक पद ए हने छाजे, जेहवे यश जग मां वास गाजे ॥

इनकी मुखाकृति स्वयमेव आकर्षक बन गई और जनता के लिए ये आध्यात्मिक जादूगर बन गये। इनके सैंकड़ो शिष्य थे—जो स्थान-स्थान पर ज्ञान-दान किया करते थे। इनके प्रमुख शिष्यो मे गणेश, दामोदर, धर्मसागर, देवजी व रामदेव के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। जितनी अधिक प्रशसा शिष्यो द्वारा इनकी (भ० अभयचन्द्र) की गई, सभवत अन्य भट्टारको की उतनी अधिक प्रशसा देखने मे अभी नही आयी। एक बार 'भ० अभयचन्द्र' का 'सूरत नगर' मे पदार्पण हुआ-वह सवत् १७०६ का समय था। सूरत-नगर-निवासियों ने उस समय इनका भारी स्वागत किया। घर-घर उत्सव किये गये, कु कुम छिडका गया और अ ग—पूजा का आयोजन किया गया। इन्ही के एक शिष्य 'देवजी'—जो उस समय स्वयं वहा उपस्थित थे, ने निम्न प्रकार इनके सूरत नगर-आगमन का वर्णन किया है —

राग धन्यासी :

आज आणद मन अति घणो ए, काई वरत यो जय जयकार।
अभयचन्द्र मुनि आवया ए, काई सुरत नगर मझार रे ॥ आज आणद ॥१॥

घरे घरे उछव अति घणाए, काई माननी मगल गाय रे।
अ ग पूजा ने उवराणा ए, काई कु कुम छडादेवडाय रे ॥२॥ आज० ॥

श्लोक वखाणें गोर सोभता रे, वाणी मीठी अपार साल रे।
धर्मकथा ये प्राणी ने प्रतिबोधे ए, काई कुमति करे परिहार रे ॥३॥

सवत् सतर छलोतरे, कांई हीरजी प्रेमजीनी पूगी आस रे।
रामजी ने श्रीपाल हरखीया ए, काई वेलजी कुअरजी मोहनदास रे ॥४॥

गौतम समगोर सोभतो ए, काई बूधे जयो अभयकुमार रे।
सकल कला गुण मडणो ए, काई 'देवजी' कहे उदयो उदार रे ॥ आज० ॥५॥

'श्रीपाल' १८ वीं शताब्दी के प्रमुख साहित्य—सेवी थे। इनकी कितनी ही हिन्दी रचनाए अभी लेखक को कुछ समय पूर्व प्राप्त हुई थी। स्वय कवि श्रीपाल 'भ० अभयचन्द्र' से अत्यधिक प्रभावित थे। इसलिए स्वय भट्टारकजी महाराज की प्रशसा मे लिखा गया कवि का एक पद देखिये। इस पद के अध्ययन से हमे 'अभयचन्द्र' के आकर्षक व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है। पद निम्न प्रकार है:—

राग धन्यासी :

चन्द्रवदनी मृग लोचनी नारि।
अभयचन्द्र गछ नायक वादो, सकल सघ जयकारि ॥१॥ चन्द्र० ॥

मदन माहामद मीडे ए मुनिवर, गोयम सम गुणधारी ।
क्षमावतवि गभिर विचक्षण, गरुयो गुण भण्डारी ।।चन्द्र०।।२।।

निखिलकला विधि विमल विद्या निधि विकटवादी हठहारी ।
रम्य रूप रजित नर नायक, सज्जन जन सुखकारी ।।चन्द्र०।।३।।

सरसति गछ श्रृ गार शिरोमणी, मूल सघ मनोहारी ।।
कुमुदचन्द्र पदकमल दिवाकर, 'श्रीपाल' तुम वलीहारी ।।चन्द्र० ।।४।।

'गणेश' भी अच्छे कवि थे । इनके कितने ही पद, स्तवन एव लघु कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं । 'भ० अभयचन्द्र' के आगमन पर कवि ने जो स्वागत गान लिखा था और जो उस समय सभवत गाया भी गया था, उसे पाठको के अवलोकनार्थ यहा दिया जा रहा है —

आजु भले आये जन दिन धन रयणी ।
शिवया नदा वदी रत तुम, कनक कुसुम वधावो मृगनयनी ।।१।।

उज्जल गिरि पाय पूजी परमगुरु सकल सघ सहित सग सयनी ।
मृदग बजावते गावते गुनगनी, अभयचन्द्र पटधर आयो गजगयनी ।।२।।

अब तुम आये भली करी, घरी घरी जय शब्द भविक सब कहेनी ।
ज्यो चकोरी चन्द्र कु इयत, कहत गणेश विशेषकर वयनी ।।३।।

इसी तरह कवि के एक और शिष्य 'दामोदर' ने भी अपने गुरु की भूरि २ प्रशसा की है । गीत मे कवि के माता–पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा लिखा है कि 'भ० अभयचन्द्र' ने कितने ही शास्त्रार्थों मे विजय प्राप्त की थी । पूरा गीत निम्न प्रकार है —

वादो वादो सखी री श्री अभयचन्द्र गोर वादो ।
मूल सग मडण दुरित निकदन, कुमुदचन्द्र पगी वदो ।।१।।

शास्त्र सिद्धान्त पूरण ए जाण, प्रतिबोधे भवियण अनेक ।
सकल कला करी विश्वने रजे, भजे वादि अनेक ।।२।।

हू बड वश विख्यात वसुधा श्रीपाल साधन तात ।
जायो जननीइ पतिय शवन्तो, कोडमदे धन मात ।।३।।

रतनचन्द पाटि कुमुदचन्दयति, प्रेमे पूजो पाय ।
तास पाटि श्री अभयचन्द्र गोर 'दामोदर' नित्य गुणगाय ।।४।।

उक्त प्रशसात्मक गीतो से यह तो निश्चित सा जान पडता है कि अभयचन्द्र की जैन-समाज मे काफी अधिक लोकप्रियता थी। उनके शिष्य साथ रहते थे और जनता को भी उनका स्तवन करने की प्रेरणा किया करते थे।

'अभयचन्द्र' प्रचारक के साथ-साथ साहित्य-निर्माता भी थे। यद्यपि अभी तक उनकी अधिक रचनाए उपलब्ध नही हो सकी हैं, लेकिन फिर भी उन प्राप्त रचनाओ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी कोई बडी रचना भी मिलनी चाहिए। कवि ने लघु गीत अधिक लिखे है। इसका प्रमुख कारण तत्कालीन साहित्यिक वातावरण ही था। अब तक इनकी निम्न कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं—

१	वासुपूज्यनी धमाल	१० पद्य
२.	चदागीत	२६ ,,
३.	सूखडी	३७ ,,
४.	चतुर्विशति तीर्थंकर लक्षण गीत	११ ,,
५.	पद्मावती गीत	११ पद्य
६.	गीत	
७.	गीत	
८.	नेमीश्वरनु ज्ञान कल्याणक गीत	
९.	आदीश्वरनाथनु पञ्चकल्याणक गीत	
१०,	बलभद्र गीत	

उक्त कृतियो के अतिरिक्त कवि के कुछ पद भी मिल चुके हैं। इन पदो की सख्या आठ है।

ये सभी रचनाए लघु कृतिया है। यद्यपि काव्यत्व, शैली एव भाषा की दृष्टि से ये उच्चस्तरीय रचनाए नही है, लेकिन तत्कालीन समय जनता की माग पर ये रचनाएं लिखी गई थी। इसलिए इनमे कवि का काव्य-वैभव एवं सौष्ठव प्रयुक्त होने की अपेक्षा प्रचार का लक्ष्य अधिक था। भाषा की दृष्टि से भी इनका अध्ययन आवश्यक है। राजस्थानी भाषा की ये रचनाए है तथा उसका प्रयोग कवि ने अत्यधिक सावधानी से किया हैं। गुजराती भाषा का प्रयोग तो स्वभावत ही हो गया है। कवि की कुछ प्रमुख कृतियो का परिचय निम्न प्रकार है—

१. चदागीत

इस गीत मे कालिदास के मेघदूत के विरही यक्ष की भाति स्वयं राजुल अपना सन्देश चन्द्रमा के माध्यम से नेमिनाथ के पास भेजती है। सर्व प्रथम चन्द्रमा से अपने उद्देश्य के बारे निम्न शब्दो मे वर्णन करती है—

विनयकरी राजुल कहे, चंदा वीनतड़ी अब धारो रे।
उज्ज्वल गिरि जई वीनवो, चदा जिहा दे प्राण आधार रे॥

गगने गमन ताहरु रुवडू, चदा अमीय वरषे अनन्त रे।
पर उपगारी तू भनो, चदा वलि वलि बीनवू सत रे॥

राजुल ने इसके पश्चात् भी चन्द्रमा के सामने अपनी यौवनावस्था की दुहाई दी तथा विरहाग्नि का उसके सामने वर्णन किया।

विरह तणा दुख दोहिला, चदा ते किम मे सहे वाय रे।
जल बिना जेम माछली, चदा ते दु ख मे वाप रे॥

राजुल अपने सन्देश-वाहक से कहती है कि यदि कदाचित नेमिकुमार वापिस चले आवें तो वह उनके आगमन पर वह पूर्ण शृंगार करेगी। इस वर्णन में कवि ने विभिन्न अगो में पहिने जाने वाले आभूषणो का अच्छा वर्णन किया है।

२. सूखड़ी :

यह ३७ पद्यो की लघु रचना है, जिसमें विविध व्यञ्जनो का उल्लेख किया गया है। कवि को पाकशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। 'सूखडी' से तत्कालीन प्रचलित मिठाइयो एव नमकीन खाद्य सामग्री का अच्छी तरह परिचय मिलता है। 'शान्तिनाथ के जन्मावसर पर कितने प्रकार की मिठाइया आदि बनायी गयी थी—इसी प्रसग को बतलाने के लिए इन व्यञ्जनो का नामोल्लेख किया गया है। एक वर्णन देखिए—

जलेबी खाजला पूरी, पतासा फीणा सजूरी।
दहीपरा फीणी माहि, साकर भरी ॥३॥

× × × ×

सकरपारा सु हाली, तल पापड़ी साकुली।
थापडास्यु थीणु घीय, आलू जीवली ॥५॥

मरकीने चादखानि, दोठाने दहीं वडा सोनी।
वावर घेवर श्रीसो, अनेक वानी ॥६॥

इस प्रकार 'कविवर अभयचन्द्र' ने अपनी लघु रचनाओ के माध्यम से हिन्दी साहित्य की जो महती सेवा की थी, वह सदा स्मरणीय रहेगी।

ब्रह्म जयसागर

जयसागर भ० रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्यो मे से थे। ये ब्रह्मचारी थे और जीवन भर इसी पद पर रहते हुए अपना आत्म विकास करते रहे थे। भ० रत्नकीर्ति जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है साहित्य के अनन्य उपासक थे इसलिए जयसागर भी अपने गुरु के समान ही साहित्याराधना मे लग गये। उस समय हिन्दी का विकास हो रहा था। विद्वानो एव जनसाधारण की रुचि हिन्दी ग्रन्थो को पढने मे अधिक हो रही थी इसलिए जयसागर ने अपना क्षेत्र हिन्दी रचनाओ तक ही सीमित रखा।

जयसागर के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक कोई विशेष जानकारी प्राप्त नही हो सकी है। इन्होने अपनी सभी रचनाओ मे भ० रत्नकीर्ति का उल्लेख किया है। रत्नकीर्ति के पश्चात होने वाले भ० कुमुदचन्द्र का कही भी नामोल्लेख नही किया है इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनका भ० रत्नकीर्ति के शासनकाल मे ही स्वर्गवास हो गया था। रत्नकीर्ति सवत् १६५६ तक भट्टारक रहे इसलिए ब्रह्म जयसागर का समय सवत् १५८० से १६५५ तक का माना जा सकता है। घोघा नगर इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था।

कवि की अब तक जितनी रचनाओ की खोज हो सकी है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१ नेमिनाथ गीत
२. नेमिनाथ गीत
३. जसोघर गीत
४ पचकल्याणक गीत
५. चुनडी गीत
६. सघपति मल्लिदास नी गीत
७. सकट हर पार्श्वजिन गीत
८ क्षेत्रपाल गीत
९. भट्टारक रत्नकीर्ति पूजा गीत
१० शीतलनाथ नी विनती
११-२० विभिन्न पद एव गीत

जयसागर लघु कृतिया लिखने मे विशेष रुचि रखते थे। इनके गुरु स्वय रत्नकीर्ति भी लघु रचनाओ को ही अधिक पसन्द करते थे इसलिए इन्होने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। इनकी कुछ प्रमुख रचनाओ का परिचय निम्न प्रकार है।

१. पचकल्याणक गीत

यह कवि की सबसे बडी कृति है जो पाच कल्याणको की दृष्टि से पाच ढालो मे विभक्त है। इसमें शान्तिनाथ के पाचो कल्याणको का वर्णन है। जन्म कल्याणक ढाल मे सबसे अधिक पद्य हैं। जिनकी स ख्या २० है। पूरे गीत मे ७१ पद्य हैं। गीत की भाषा राजस्थानी है। तथा वर्णन सामान्य है। एक उदाहरण देखिए।

श्री शान्तिनाथ केवली रे, व्यावहार करे जिनराय।
समोवसरण सहित मल्या रे, वदित अमर सु पाय ॥

द्रुपद नरनारी सुख कर सेवियेरे, सोलमो श्री शान्तिनाथ।
अविचल पद जे पामयो रे, मुझ मन राखो तुझ साथ ॥१॥

सम्मेद सिखर जिन आवयोरे, समोसरण करी दूर।
ध्यानवनो क्रम क्षय करीरे, स्थानक गया सु प्रसीघ ॥२॥

श्री घोघा रूप पूरयलु रे, चन्द्रप्रम चैत्याल।
श्री मूलसघ मनोहर करे, लक्ष्मीचन्द्र गुणमाल ॥३॥

श्री अभेचन्द पदेशोहे रे, अभयसुनन्दि सुनन्द।
तस पाटे प्रगट हवोरे, सुरी रत्नकीरति मुनी चन्द ॥४॥

तेह तणा चरण कमलनयनिरे, पचकल्याणक किध।
ब्रह्म जयसागर इम कहे, नर नारी गाउ सु प्रसिद्ध ॥५॥

२. जसोधर गीत

इसमे यशोघर चरित की कथा का स क्षिप्त सार दिया गया है जिसमे केवल १८ पद्य हैं। गीत की भाषा राजस्थानी है।

जीव हिंसा हू नवि करु, प्राण जाय तो जाय।
हद देखी चन्द्र मती कहे, पीवनी करीये काय ॥६॥

मौन करी राजा रह्यो, पाठकु कडो कीघ।
माता सहित जसोधरे, देवीने वल दीध ॥७॥

३. गुर्वावलि गीत

यह एक ऐतिहासिक गीत है जिसमें सरस्वती गच्छ की वलात्कारगण शाखा के भ० देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा मे होने वाले भट्टारको का सक्षिप्त परिचय दिया गया हैं। गीत सरल एव सरस भाषा मे निवद्ध है।

तस पद कमल दिवाकर, मल्लिभूषण गुण सागर।
आगार विद्या विनय तणो भलो ए।

पद्मावती साधी एणें, ग्यासदीन रज्यो तेणें।
जग जेणें जिन शासुन सोहावीयो ए।।८।।

४. चुनडी गीत

यह एक रूपक गीत है जिसमे नेमिनाथ के वन चले जाने पर उन्होने अपने चारित्र रूपी चुनडी को किस रूप मे धारण किया इसका संक्षिप्त वर्णन है। वह चारित्र की चुनडी नव रग की थी। मूल गुणो का उसमे रग था, जिनवाणी का उसमे रस घोला गया था। तप रूपी तेज से जो सूख रही थी। जो उसमे से पानी टपक रहा था वह मानो उत्तर गुणो के कारण चौरासी लाख योनियो से छुटकारा मिल रहा था। पाच महाव्रत, पाच समिति एव तीन गुप्ति को जीवन मे उतारने के कारण उस चुनडी का रग ही एक दम बदल गया था। बारह प्रतिमा के धारण करने से वह फूल के समान लगने लगी थी। इसी चुनडी को ओढकर राजुल स्वर्ग गई। इस गीत को अविकल रूप से आगे दिया जा रहा है।

५ रत्नकीर्ति गीत

ब्रह्म जयसागर रत्नकीर्ति के कट्टर समर्थक थे। उनके प्रिय शिष्य तो थे ही लेकिन एक रूप मे उनके प्रचारक भी थे। इन्होने रत्नकीर्ति के जीवन के सम्बन्ध मे कई गीत लिखे और उनका जनता मे प्रचार किया। रत्नकीर्ति जहा भी कही जाते उनके अनुयायी जयसागर द्वारा लिखे हुए गीतो को गाते। इसके अतिरिक्त इन गीतो मे कवि ने रत्नकीर्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओ को छन्दोबद्ध कर दिया है। यह सभी गीत सरल भाषा मे लिखे हुए हैं जो गुजराती से बहुत दूर एव राजस्थानी के अधिक निकट हैं।

मलय देश भव चदन, देवदास केरो नदन।
श्री रत्नकीर्ति पद पूजियेए।

अक्षत शोभन साल ए, सहेजलदे सुत गुणमाल रे विशाल।
श्री रत्नकीर्ति पद पूजियेए।

इस प्रकार जयसागर ने जीवन पर्यन्त साहित्य के विकास मे जो अपना अपूर्व योग दिया वह इतिहास मे सदा स्मरणीय रहेगा।

ग्राचार्य चन्द्रकीर्त्ति

'भ० रत्नकीर्ति' ने साहित्य-निर्माण का जो वातावरण बनाया था तथा अपने शिष्य-प्रशिष्यो को इस ओर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था, इसी के फल-स्वरूप ब्रह्म-जयसागर, कुमुदचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, सयमसागर, गरणेश और धर्म-सागर जैसे प्रसिद्ध सन्त, साहित्य-रचना की ग्रोर प्रवृत्त हुए। 'आ. चन्द्रकीर्ति' 'भ० रत्नकीर्ति' के प्रिय शिष्यो मे से थे। ये मेधावी एव योग्यतम शिष्य थे तथा अपने गुरु के प्रत्येक कार्यों मे सहयोग देते थे।

'चन्द्रकीर्ति' के गुजरात एव राजस्थान प्रदेश प्रमुख क्षेत्र थे। कभी-कभी ये ग्रपने गुरु के साथ ग्रौर कभी स्वतन्त्र रूप से इन प्रदेशो मे विहार करते थे। वैसे वारडोली, भडौच, डूगरपुर, सागवाडा आदि नगर इनके साहित्य निर्माण के स्थान थे। अब तक इनकी निम्न कृतिया उपलब्ध हुई हैं .—

१ सोलहकारण रास

२ जयकुमाराख्यान,

३ चारित्र-चुनडी,

४. चौरासी लाख जीवजोनि वीनती।

उक्त रचनाग्रो के अतिरिक्त इनके कुछ हिन्दी पद भी उपलब्ध हुए हैं।

१. सोलहकारण रास

यह कवि की लघु कृति है। इसमे षोडशकारण व्रत का महात्म्य वतलाया गया है। ४६ पद्यो वाले इस रास मे राग-गौडी देशी, दूहा, राग-देशाख, त्रोटक, चाल, राग-धन्यासी ग्रादि विभिन्न छन्दो का प्रयोग हुआ है। कवि ने रचनाकाल का उल्लेख तो नही किया है, किन्तु रचना-स्थान 'भडौच' का अवश्य निर्दिष्ट किया है। 'भडौच' नगर मे जो शातिनाथ का मन्दिर था- वही इस रचना का समाप्ति -स्थान था। रास के अन्त मे कवि ने अपना एव ग्रपने पूर्व गुरुओ का स्मरण किया है। अन्तिम दो पद्य निम्न प्रकार है—

श्री भरुयच नगरे सोहामणु श्री शातिनाथ जिनराय रे।
प्रासादे रचना रचि, श्री चन्द्रकीरति गुण गायरे ॥४४॥

ए व्रत फल गिरना जो जो, श्री जीवन्धर जिनराय जो।
भवियण तिहा जई भाविज्ये, पातिग दुरे पालाय रे ॥४५॥

पूर्व छापो

चौतीस अतिस अतिसय भला, प्रतिहार्य वसू होय।
चार चतुष्टय जिनवरा, ए छेतालीस पद जोय ॥४६॥

२. जयकुमार आख्यान

यह कवि का सबसे बडा काव्य है जो ४ सर्गो मे विभक्त है। 'जयकुमार' प्रथम तीर्थकर 'भ० ऋषभदेव' के पुत्र सम्राट भरत के सेनाध्यक्ष थे। इन्ही जय कुमार का इसमे पूरा चरित्र वर्णित है। आख्यान वीर-रस प्रधान है। इसकी रचना बारडोली नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे सवत् १६५५ की चैत्र शुक्ला दसमी के दिन समाप्त हुई थी।

'जयकुमार' को सम्राट भरत सेनाध्यक्ष पद पर नियुक्त करके शाति पूर्वक जीवन विताने लगे। जयकुमार ने अपने युद्ध-कौशल से सारे साम्राज्य पर अखण्ड शासन स्थापित किया। वे सौन्दर्य के खजाने थे। एक बार वाराणसी के राजा 'अकम्पन' ने अपनी पुत्री 'सुलोचना' के विवाह के लिए स्वयम्बर का आयोजन किया। स्वयम्बर मे जयकुमार भी सम्मिलित हुए। इसी स्वयम्बर मे 'सम्राट भरत' के एक राजकुमार 'अर्ककीर्ति' भी गये थे, लेकिन जब 'सुलोचना' ने जयकुमार के गले मे माला पहिना दी, तो वह अत्यन्त क्रोधित हुये। अर्ककीर्ति एव जयकुमार मे युद्ध हुआ और अन्त मे जयकुमार का सुलोचना के साथ विवाह हो गया।

इस 'आख्यान' के प्रथम अधिकार मे 'जयकुमार–सुलोचना–विवाह' का वर्णन है। दूसरे और तीसरे अधिकार मे जयकुमार के पूर्व भवो का वर्णन और चतुर्थ एव अन्तिम अधिकार मे जयकुमार के निर्वाण-प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

'आख्यान' मे वीर-रस, शृगार-रस एवं शान्त रस का प्राधान्य है। इसकी भाषा राजस्थानी डिंगल है। यद्यपि रचना-स्थान बारडोली नगर है, लेकिन गुजराती शब्दो का बहुत ही कम प्रयोग किया गया है– इससे कवि का राजस्थानी प्रेम झल-कता है।

'सुलोचना' स्वयम्बर मे वरमाला हाथ मे लेकर जब आती है, तो उस समय उसकी कितनी सुन्दरता थी, इसका कवि के शब्दो मे ही अवलोकन कीजिए—

जाणिए सोल कला शीश, मुखचन्द्र सोमासी कहु ।
अधर विद्रुम राजतारा, दन्त मुक्ताफल लहु ॥

कमल पत्र विशाल नेत्रा, नाशिका सुक चच ।
अष्टमी चन्द्रज भाल सोहे, वेणी नाग प्रपच ॥

सुन्दरी देखी तेह राजा, चिन्तमें मन माहि ।
ए सुन्दरी सूर सू दरी, किन्नरी किम केह वाम ॥

सुलोचना एक एक राजकुमार के पास आती और फिर आगे चल देती । उस समय वहा उपस्थित राजकुमारो के हृदय में क्या-क्या कल्पनाए उठ रही थी- इसको भी देखिये :—

एक हसता एक खीजे, एक रग करे नवा ।
एक जाणे मुझ वरसे, प्रेम धरता जुज वा ॥

एक कहे जो नही करे, तो अम्यो तपवन जायसु ।
एक कहतो पुण्य थो भी, एय वलयथासू ॥

एक कहे जो आवयातो, विमासण सहु परहरो ।
पुण्य फल ने बातणोए, ठाम सूम हे थडे घरै ॥

लेकिन जब 'सुलोचना' ने 'अर्ककीर्ति' के गले मे वरमाला न_.ी डाली, तो जयकुमार एव अर्ककीर्ति मे युद्ध भडक उठा । इसी प्रसग मे वर्णित युद्ध का दृश्य भी देखिए —

मला कटक विकट कबहू सुभट सू,
धीर धीर हमीर हठ विकट सू ।

करी कोप कूटे चूटे सरवहू,
चक्र तो ममर खडग मू के सहु ॥

गयो गम गोला गणनागणे,
अ गो अ ग आवे वीर इम भणे ।

मोहो माहि मूके मोटा महीपती,
चोट खोट न आवे ध्यमरती ॥

वथो थवा करी वेहदू डसू,
कोपे करता कूटे अखड सूं ।

धरी धीर धरणी ढोली नांखता,
कोपि कडकडी लाजन राखता ॥

हस्ती हस्ती सघाते आथडे,
रथो रथ सूभट सहू इम भडे ।

हय हयारव जब छजयो,
नीसाण नादें जग गज्जयो ॥

कवि ने अन्त मे जो अपना वर्णन किया है, वह निम्न प्रकार है :—

श्री मूल संघ सरस्वती गछे रे, मुनीवर श्री पदमनन्द रे ।
देवेन्द्रकीरति विद्यानंदी जयो रे, मल्लीभूपण पुण्य क द रे ॥

श्री लक्ष्मीचद्र पाटे थापया रे, अभय सुचद्र मुनीन्द्र रे ।
तस कुल कमलें रवि समोरे, अभयनदी नमे नरचन्द्र रे ॥

तेह तणे पाटें सोहावयो रे, श्री रत्नकीरति सुगुण भडार रे ।
तास शीष सुरी गुणे मडयो रे, चन्द्रकीरति कहे सार रे ।

एक मनां एह भणें सामले रे, लखे भलु एह आख्यान रे ॥
मन रे वाछति फलते लहे रे, नव भवें लहे वहु मान रे ।

सवत सोल पचावने रे, उजाली दशमी चैत्र मास रे ॥
वाडोरली नयरे रचना रची रे, चन्द्रप्रभ सुभ आवास रे ।

नित्य नित्य केवली जे जपे रे, जय-जयनाम प्रसीधरे ॥
गणधर आदिनाथ केर डोरे, एकत्तरमो वहु रिध रे ।

विस्तार आदि पुराण पाडवे भणोरे, एह सक्षेपे कही सार रे ॥
भणे सुणे भवि ते सुख लहे रे, चन्द्रकीरति कहे सार रे ।

समय :

कवि ने इसे सवत् १६५५ मे समाप्त किया था। इसे यदि अन्तिम रचना भी माना जावे तो इसका समय सवत् १६६० तक का निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने अपने गुरु के रूप मे केवल 'रत्नकीर्ति' का ही नामोल्लेख किया है, जबकि सवत् १६६० तक तो रत्नकीर्ति के पश्चात् कुमुदचन्द्र भी भट्टारक हो गए थे, इसलिए यह भी निश्चित सा है कि कवि ने रत्नकीर्ति से ही दीक्षा ली थी और उनकी मृत्यु के पश्चात् वे सघ से अलग ही रहने लगे थे। ऐसी अवस्था में

कवि का समय यदि संवत् १६०० से १६६० तक मान लिया जावे तो कोई आश्चर्य नही होगा।

अन्य कृतिया :

जयकुमाराख्यान एव सोलह कारण रास के अलावा अन्य सभी रचनाए लघु रचनाए है। किन्तु भाव एव भाषा की दृष्टि से वे सभी उल्लेखनीय हैं। कवि का एक पद देखिए :—

राग प्रभाति :

जागता जिनवर जे दिन निरख्यो,
घन्य ते दिवस चिन्तामणि सरिखो।

सुप्रभाति मुख कमल जु दीठु,
वचन अमृत थकी अधिकजु मीठु ॥१॥

सफल जनम हुवो जिनवर दीठा,
करण सफल सुण्या तुम्ह गुण मीठा ॥२॥

घन्य ते जे जिनवर पद पूजे,
श्री जिन तुम्ह विन देव न दूजो ॥३॥

स्वर्ग मुगति जिन दरसनि पामे,
'चन्द्रकीरति' सूरि सीसज नामे ॥४॥

—

भट्टारक शुभचन्द्र (द्वितीय)

'शुभचन्द्र' के नाम से कितने ही भट्टारक हुए है। 'भट्टारक-सम्प्रदाय' मे '४ शुभचन्द्र' गिनाये गये है—

१ 'कमल कीर्त्ति' के शिष्य 'भ० शुभचन्द्र'
२ 'पद्मनन्दि' के शिष्य- ,,
३ 'विजयकीर्त्ति' के शिष्य- ,,
४ 'हर्षचन्द' के शिष्य- ,,

इनमे प्रथम काष्ठा सघ के माथुर गच्छ और पुष्कर गण मे होने वाले 'भ० कमलकीर्त्ति' के शिष्य थे। इनका समय १६वी शताब्दि का प्रथम-द्वितीय चरण था। 'दूसरे शुभचन्द्र' भ० पद्मनन्दि के शिष्य थे, जिनका भ० काल स १४५० मे १५०७ तक था। तीसरे 'भ० शुभचन्द्र' भ० विजयकीर्त्ति के शिष्य थे-जिनका हम पूर्व पृष्ठो मे परिचय दे चुके है। 'चोथे शुभचन्द्र' भ० हर्षचन्द के शिष्य बताये गये है- इनका समय १७२३ से १७४६ माना गया है। ये भट्टारक भुवन कीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भ० हर्षचन्द (स १६९८-१७२३) के शिष्य थे। लेकिन 'आलोच्य भट्टारक शुभचन्द्र' 'भ०-अभयचन्द्र' के शिष्य थे-जो भ० रत्नकीर्त्ति के प्रशिष्य एवं 'भ० कुमुदचन्द्र' के शिष्य थे जिनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है-—

'भट्टारक अभयचन्द्र' के पश्चात् सवत् १७२१ की ज्येष्ठ बुदी प्रतिपदा के दिन पोरबन्दर मे एक विशेष उत्सव किया गया। देश के विभिन्न भागो मे अनेक साधु-सन्त एवं प्रतिष्ठित श्रावक उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए नगर मे आये। शुभ मुहूर्त मे 'शुभचन्द्र' का 'भट्टारक गादी' पर अभिषेक किया गया। सभी उपस्थित श्रावको ने 'शुभचन्द्र' की जयकार के नारे लगाये। स्त्रियो ने उनकी दीर्घायु के लिए मगल गीत गाये। विविध वाद्य यन्त्रो से सभा-स्थल गूंज उठा और उपस्थित जन-समुदाय ने गुरु के प्रति हार्दिक श्रद्धाजलियाँ अर्पित की।[2]

'शुभचन्द्र' ने भट्टारक बनते ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया।

---

१. देखिये-'भट्टारक सम्प्रदाय'-पृ. सं०....२०६

२ सब सज्जन उसट अंग धरे, मधुरे स्वरे माननी गान करे ॥११॥
ताहा बहु विध वाजित्र वाजंता, सुर नर मन मोहे निरखंता ॥१२॥

यद्यपि अभी वे पूर्णतः युवा थे।[3] उनके अ ग प्रत्यग से सुन्दरता टपक रही थी, लेकिन उन्होने अपने आत्म–उद्धार के साथ-साथ समाज के अज्ञानान्धकार को दूर करने का वीडा उठाया और उन्हें अपने इस मिशन मे पर्याप्त सफलता भी मिली। उन्होने स्थान-स्थान पर विहार किया। राजस्थान से उन्हे अत्यधिक प्रेम था इसलिए इस प्रदेश मे उन्होने बहुत भ्रमण किया और अपने प्रवचनो द्वारा जन-साधारण के नैतिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय विकास मे महत्वपूर्ण योग दान दिया।

'शुभचन्द्र' नाम के ये पाचवे भट्टारक थे, जिन्होने साहित्यिक एव सास्कृतिक कार्यो मे विशेप रुचि ली। 'शुभचन्द्र' गुजरात प्रदेश के जलसेन नगर मे उत्पन्न हुए। यह नगर जैन समाज का प्रमुख केन्द्र था तथा हूवड जाति के श्रावको का वहाँ प्रभुत्व था। इन्ही श्रावको मे 'हीरा' भी एक श्रावक थे जो धन धान्य से पूर्ण तथा समाज द्वारा सम्मानित व्यक्ति थे। उनकी पत्नी का नाम 'माणिक दे' था। इन्हीं की कोख से एक सुन्दर वालक का जन्म हुआ, जिसका नाम 'नवल राम' रखा गया। 'वालक नवल' अत्यधिक व्युत्पन्न-मति थे–इसलिए उसने अल्पायु मे ही व्याकरण, न्याय, पुराण, छन्द–शास्त्र, अष्टसहस्री एव चारो वेदो का अध्ययन कर लिया।[1] १८ वी शताब्दी मे भी गुजरात एव राजस्थान मे भट्टारक साधुओ का अच्छा प्रभाव था। इसलिए नवल राम को वचपन से ही इनकी सगति मे रहने का अवसर मिला। 'भ० अभयचन्द्र' के सरल जीवन से ये अत्यधिक प्रभावित थे इसलिए उन्होने भी गृहस्थ जीवन के चक्कर मे न पडकर आजन्म साधु-जीवन का परिपलन करने का निश्चय कर लिया। प्रारम्भ मे 'अभयचन्द्र' से 'ब्रह्मचारी पद' की शपथ ली और इसके पश्चात् वे भट्टारक वन गए।

'शुभचन्द्र' के शिष्यो मे प श्रीपाल, गणेश, विद्यासागर, जयसागर, आन्नदसागर आदि के नाम विशेपत उल्लेखनीय हैं। 'श्रीपाल' ने तो शुभचन्द्र के

---

३. छण रजनी कर वदन विलोकित, अर्द्ध ससी सम भाल।
पकज पत्र समान सुलोचन, ग्रीवा कबु विशाल रे ॥८॥

नाशा शुक–चची सम सुन्दर, अधर प्रवाली वृ द।
रक्त वर्ण द्विज पंक्ति विराजित नीरखता आनन्द रे ॥९॥

दिम दिम मद्दन तवलन फेरी, तत्ताथेई करत।
पच शवद वाजित्र ते वाजे, नादे नभ गज्जत रे ॥२१॥

१ व्याकर्ण तर्क वितर्क अनोपम, पुराण पिंगल भेद।
अष्टसहस्री आदि ग्रंथ अनेक जु चहों विद जाणो वेद रे ॥

—श्रीपाल कृत एक गीत

कितने ही पदो मे प्रशसात्मक गीत लिखे हैं –जो साहित्यिक एव ऐतिहासिक दोनो प्रकार के हैं।

'भ० शुभचन्द्र' साहित्य-निर्माण मे अत्यधिक रूचि रखते थे। यद्यपि उनकी कोई बडी रचना उपलब्ध नही हो सकी है, लेकिन जो पद साहित्य के रूप मे इनकी कृतियाँ मिली हैं, वे इनकी साहित्य-रसिकता की ओर पर्याप्त प्रकाश डालने वाली हैं। अब तक इनके निम्न पद प्राप्त हुए हैं:—

१. पेखो सखी चन्द्रसम मुख चन्द्र
२ आदि पुरुष भजो आदि जिनेन्दा
३. कोन सखी सुध ल्यावे श्याम की
४. जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार
५ पावन मति मात पद्मावति पेखता
६. प्रात समये शुभ ध्यान धरीजे
७. वासु पूज्य जिन विनती–सुणो वासु पूज्य मेरी विनती
८ श्री सारदा स्वामिनी प्रणमि पाय, स्तवू वीर जिनेश्वर विवुध राय।
९. अज्झारा पार्श्वनाथनी वीनती

उक्त पदो एव विनतियो के अतिरिक्त अभी 'भ० शुभचन्द्र' की और भी रचनाएँ होगी, जो किसी गुटके के पृष्ठो पर अथवा किसी शास्त्र–भण्डार मे स्वतत्र ग्रन्थ के रूप मे अज्ञातावस्था मे हुए पडी अपने उद्धार की बाट जोह रही होगी।

पदो मे कवि ने उत्तम भावो को रखने का प्रयास किया है। ऐसा मालूम होता है कि 'शुभचन्द्र' अपने पूर्ववर्ती कवियो के समान 'नेमि-राजुल' की जीवन-घटनाओ से अत्यधिक प्रभावित थे इसलिए एक पद मे उन्होने "कौन सखी सुध-ल्यावे श्याम की" मार्मिक भाव भरा। इस पद से स्पष्ट है कि कवि के जीवन पर मीरा एव सूरदास के पदो का प्रभाव भी पडा है:—

कौन सखी सुध ल्यावे श्याम की।
मधुरी धुनी मुखचद विराजित, राजमति गुण गावे ॥श्याम.॥१॥

अ ग विभूषण मणीमय मेरे, मनोहर माननी पाव।
करो कछू तत मत मेरी सजनी, मोहि प्रान नाथ मीलावे ॥श्याम.॥२॥

गज गमनी गुण मन्दिर स्यामा, मनमथ मान सतावे।
कहा अवगुन अब दीन दयाल छोरि मुगति मन भावे ॥श्याम.॥३॥

सब सखी मिली मन मोहन के ढिग, जाई कथा जु सुनावे ।
सुनो प्रभु श्री शुभचन्द्र के साहिब, कामिनी कुल क्यो लजावे ।।श्याम.।।४।।

कवि ने अपने प्रायः सभी पद भक्ति-रस प्रधान लिखे हैं । उनमे विभिन्न तीर्थ-करो का स्तवन किया गया है ' आदिनाथ स्तवन का एक पद देखिए—

आदि पुरुष भजो आदि जिनेंदा ।।टेक।।
सकल सुरासुर शेष सु व्यत्तर, नर खग दिनपनि सेवित चदा ।।१।।

जुग आदि जिनपति भये पावन, पतित उदारण नाभि के नदा ।
दीन दयाल कृपा निधि सागर, पार करो अध-तिमिर दिनेंदा ।।२।।

केवल ग्यान थे सब कछु जानत, काह कहू प्रभु मो मति मदा ।
देखत दिन-दिन चरण सरणते, विनती करत यो सूरि शुभ चदा ।।३।।

समय

'शुभचन्द्र' सवत् १७४५ तक भट्टारक रहे । इसके पश्चात् 'रत्न-चन्द्र' को भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया । 'भ० रत्नचन्द्र' का एक लेख स १७४८ का मिला है, जिसमे एक गीत की प्रतिलिपि प श्रीपाल के परिवार के सदस्यो के लिए की गई थी-ऐसा उल्लेख किया गया है । इस तरह 'भ० शुभचन्द्र' ने २४-२५ वर्ष तक देश के एक कौने से दूसरे कौने तक भ्रमण करके साहित्य एव संस्कृति के पुनरुत्थान का जो अलख जगाया था-वह सदैव स्मरणीय रहेगा ।

भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति

१७ वी शताब्दि मे राजस्थान मे 'आमेर-राज्य' का महत्व बढ रहा था। आमेर के शासको का मुगल बादशाहो से घनिष्ट सम्बन्ध के कारण यहा अपेक्षाकृत शान्ति थी। इसके अतिरिक्त आमेर के शासन मे भी जैन दीवानो का प्रमुख हाथ था। वहा जैनो की अच्छी बस्ती थी और पुरातत्व एव कला की दृष्टि से भी आमेर एव सागानेर के मन्दिर राजस्थान-भर मे प्रसिद्धि पा चुके थे। इसलिए देहली के भट्टारको ने भी अपनी गादी को दिल्ली से आमेर स्थानान्तरित करना उचित समझा और इसमे प्रमुख भाग लिया 'भ० देवेन्द्रकीर्त्ति' ने, जिनका पट्टाभिषेक सवत् १६६२ मे चाटसू मे हुआ था। इसके पश्चात् तो आमेर, सागानेर, चाटसू और टोडारायसिंह आदि नगरो के प्रदेश इन भट्टारको की गतिविधियो के प्रमुख केन्द्र बन गये। इन सन्तो की कृपा से यहा सस्कृत एव हिन्दी-ग्रन्थो का पठन-पाठन ही प्रारम्भ नही हुआ, किन्तु इन भाषाओ मे ग्रन्थ रचना भी होने लगी और आमेर, सागानेर, टोडारायसिंह और फिर जयपुर मे विद्वानो की मानों एक कतार ही खडी होगयी। १७ वी शताब्दी तक प्राय सभी विद्वान् 'सन्त' हुआ करते थे, लेकिन १८ वी श० से गृहस्थ भी साहित्य-निर्माता बन गये। अजयराज पाटणी, खुशालचन्दकाला, जोधराज गोदीका, दौलतराम कासलीवाल, महा प० टोडरमलजी व जयचन्दजी छाबडा जैसे उच्चस्तरीय विद्वानो को जन्म देने का गर्व इसी भूमि को है।

'आमेर-शास्त्र-भण्डार' जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ-सग्रहालय की स्थापना एवं उसमे अपभ्र श, सस्कृत एव हिन्दी-ग्रन्थो की प्राचीनतम प्रतिलिपियो का सग्रह इन्ही सन्तो की देन है। आमेर शास्त्र भण्डार मे अपभ्र श का जो महत्वपूर्ण सग्रह है, वैसा सग्रह नागौर के भट्टारकीय शास्त्र-भण्डार को छोडकर राजस्थान के किसी भी ग्रन्थ-सग्रहालय मे नही है। वास्तव मे इन सन्तो ने अपने जीवन का लक्ष्य आत्म-विकास की ओर निहित किया। उनका यह लक्ष्य साहित्य-सग्रह एव उसके प्रचार की ओर भी था। इन्ही सन्तो की दूरदर्शिता के कारण देश का अमूल्य साहित्य नष्ट होने से बच सका। अब यहा आमेर गादी से सम्बन्धित तीन सन्तो का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है:—

१ भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति

'नरेन्द्रकीर्त्ति' अपने समय के जबरदस्त भट्टारक थे। ये शुद्ध 'बीस पंथ' को मानने वाले थे। ये खण्डेलवाल श्रावक थे और 'सौगाणी' इनका गोत्र था। एक

भट्टारक पट्टावली के अनुसार ये सवत् १६९१ मे भट्टारक बने थे। इनका पट्टाभिषेक सागानेर मे हुआ था। इसकी पुष्टि बख्तराम साह ने अपने बुद्धि-विलास' मे निम्न पद्य से की है:—

नरेन्द्र कीरति नाम, पट इक सागानेरि मैं।
भये महागुन धाम, सौलह सै इक्याणवै ॥६६८॥

ये 'भ० देवेन्द्रकीर्त्ति' के शिष्य थे, जो ग्रामेर गादी के सस्थापक थे। सम्पूर्ण राजस्थान मे ये प्रभावशाली थे। मालवा, मेवात तथा दिल्ली आदि के प्रदेशो मे इनके भक्त रहते थे और जब वे जाते, तब उनका खूब स्वागत किया जाता। एक भट्टारक पट्टावली[1] मे नरेन्द्रकीर्त्ति की आम्नायका—जहा २ प्रचार था, उसका निम्न पद्यो मे नामोल्लेख किया है:—

ग्रामनाइ ढिलीय मडल मुनिवर, अवर मरहट देसय।
व्रणीए बत्तीसी विख्यात, वदि वैराठस वेसय॥

मेवात मडल सवै सुणीए, धरम तिण बाधै धरा।
परसिध पचवारीस मुणिए, खलक बदे अतिखरा ॥११८॥

धर प्रकट दु ढा इडर ढाढी, अवर अजमेरी भणा।
मुरधर सदेश करै महोछा, मड चवरासी घणा॥

साभरि सुथान सुद्रग सुणीजै, जुगत इहरै जाण ए।
अधिकार ऐती धरा वोपै, विरुद अधिक बखाणए ॥११९॥

नरसाह नागरचाल निसचल वहीत खैराडा वरै।
मेवाड देस चीतौड़ मोटी, महैपति मगल करै॥

मालवै देसि वडा महाजन, परम सुखकारी सुणा।
आग्या सुवाल सुधुम सब विधि, भाव अंगि मोटा भणा॥१२०॥

माडौर माडिल अजव, बून्दी, परसि पाटण थानय।
सीलौर कोटी ब्रह्मवार, मही रिणथभ मानय॥

दीरघ चदेरी चाव निस्चल, महत धरम सुमडणा।
विडदंत लाखैहैरी विराजै, अधिक उणियारा तणा॥१२१॥

१ इसकी एक प्रति महावीर भवन, जयपुर के संग्रहालय मे है।

दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध तेरह पथ की उत्पत्ति भी इन्ही के समय मे हुई थी। यह पथ सुधारवादी था और उसके द्वारा अनेक कुरीतियो का जोरदार विरोध किया था। बख्तराम साह ने अपने मिथ्यात्व खण्डन मे इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

भट्टारक आवैंरिके, नरेन्द्र कीरति नाम।
यह कुपथ तिनकैं समैं, नयो चल्यो अध धाम ॥२४॥

इस पद्य से ज्ञात होता है कि 'नरेन्द्रकीर्त्ति' का अपने समय ही से विरोध होने लगा था और इनकी मान्यताओ का विरोध करने के लिए कुछ सुधारको ने तेरहपथ नाम से एक पथ को जन्म दिया। लेकिन विरोध होते हुए भी नरेन्द्रकीर्त्ति अपने मिशन के पक्के थे और स्थान २ पर घूमकर साहित्य एव सस्कृति का प्रचार किया करते थे। यह अवश्य था कि ये सन्त अपने आध्यात्मिक उत्थान की ओर कम ध्यान देने लगे थे तथा लौकिक रूढियो मे फसते जा रहे थे। इसलिए उनका धीरे-धीरे विरोध बढ रहा था, जिसने महापडित टोडरमल के समय मे उग्र रूप धारण कर लिया और इन सन्तो के महत्व को ही सदा के लिए समाप्त कर दिया।

'नरेन्द्रकीर्त्ति' ने अपने समय मे आमेर के प्रसिद्ध भट्टारकीय शास्त्र भण्डार को सुरक्षित रखा और उसमे नयी २ प्रतिया, लिखवाकर विराजमान कराई गई।

"तीर्थंकर चौबीसना छप्पय" नाम से एक रचना मिली है, जो सभवत इन्ही नरेन्द्रकीर्त्ति की मालूम होती है। इस रचना का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

एकादश वर अ ग, चउद पूरव सहु जाणउ।
चउद प्रकीर्णक शुद्ध, पच चूलिका वखाणु ॥

अरि पच परिकर्म सूत्र, प्रथमहु दिनि योगहु।
तिहना पद शत एक, अधकि द्वादश कोटिगहु ॥

आसी लक्ष अधिक वली, सहस्र अठावन पच पद।
इम आचार्य नरेन्द्रकीरति कहइ, श्रीश्रुत ज्ञान पठधरीय मुद ॥

सवत् १७२२ तक ये भट्टारक रहे और इसी वर्ष महापडित–'आशाधर' कृत प्रतिष्ठा पाठ की एक हस्त लिखित प्रति इनके शिष्य आचार्य श्रीचन्द्रकीर्त्ति, घासीराम, पं० भीवसी एव मयाचन्द के पठनार्थ भेट की गई।

कितने ही स्तोत्रो की हिन्दी-गद्य टीका करने वाले 'अखयराज' इन्ही के शिष्य थे। सवत् १७१७ मे सस्कृत मजरी की प्रति इन्हे भेट की गई थी। टोडारायसिंह

के प्रसिद्ध पडित कवि जगन्नाथ इन्ही के शिष्य थे। प० परमानन्दजी ने नरेन्द्रकीर्ति के विषय मे लिखते हुए कहा है कि इनके समय मे टोडारायसिह मे सस्कृत पठन-पाठन का अच्छा कार्य चलता था। लोग शास्त्रो के अभ्यास द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करते थे। यहा शास्त्रो का भी अच्छा सग्रह था। लोगो को जैनधर्म से विशेष प्रेम था। अष्टसहस्री और प्रमाण-निर्णय आदि न्याय-ग्रन्थो का लेखन, प्रवचन, पञ्चास्तिकाय आदि सिद्धान्त ग्रन्थो आदि का प्रति लेखन काय तथा अनेक नूतन ग्रन्थो का निर्माण हुआ था। कवि जगन्नाथ ने श्वेताम्बर-पराजय मे नरेन्द्रकीर्ति का मगलाचरण मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

पदाबुज-मधुव्रतो भुवि नरेन्द्रकीर्त्तिगुरोः।
सुवादि पद भृद्बुध प्रकरण जगन्नाथ वाक् ।।२।।

'नरेन्द्रकीर्त्ति' ने कितनी ही प्रतिष्ठाओ का नेतृत्व भी किया था। पावापुर (स० १७००), गिरनार (१७०८), मालपुरा (१७१०), हस्तिनापुर (स० १७१६) मे होने वाली प्रतिष्ठाए इन्ही की देख-रेख मे सम्पन्न हुई थी।

सुरेन्द्रकीर्त्ति

सुरेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति के शिष्य थे। इनकी ग्रहस्थ अवस्था का नाम दामोदरदास था तथा ये कालागोत्रीय खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे। ये बडे भारी विद्वान् एव सयमी श्रावक थे। प्रारम्भ से ही उदासीन रहते एव शास्त्रो का पठन पाठन भी करते थे। एक बार भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति का सांगानेर मे आगमन हुआ तो उनका दामोदरदास से साक्षात्कार हुआ। प्रथम भेट मे ही ये दामोदरदास की विद्वत्ता एवं वाक् चातुर्य पर प्रभावित हो गये और उन्हे अपना प्रमुख शिष्य बनाने को उद्यत हो गये। जब इन्हे अपने स्वय के शेष जीवन पर अविश्वास होने लगा तो शीघ्र ही भट्टारक गादी पर दामोदरदास को बिठाने की योजना बनाई गई। एक भट्टारक पट्टावलि मे इस घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

श्रीय गुर सागानइरि मधि, आयो करण प्रकास।
मुझ काया तो एम गति, देखि दामोदरदास ॥१२५॥

हू भला कहौ तुम सभलौ, कथौ दोस मति कोई।
जो दिख्या मनि दिढ करौ, तो अवसि पाटि अव होइ ॥१२६॥

तव पडित समझावियो, तुम चिरजीव मुनिराज।
इसी बात किम उचरौ, श्री गछपति सिरताज ॥१२७॥

घणा दीह आरोगि घण, काया तुम अवीचार।
च्यारि मास पीछे ग्रहो, यौ जिण धरम आचार ॥१२८॥

इया वचन पडित कहै, आगम तणा अरथ।
तब गुर नरिंद सुजाणियो, इहै पाट समरथ ॥१२९॥

सागानेर एव आमेर के प्रमुख श्रावको ने एक स्वर से दामोदरदास को भट्टारक बनाने की अनुमति दे दी। वे उसके चरित्र एव विनय तथा पाडित्य की निम्न शब्दो मे प्रशसा करने लगे—

वडो जोग्य पडित सु अपरवल, सुन्दर सील काइ अतिनूमल।
यो जैनिधरम लाइक परमाण; ऐम कह्यौ सगपति कलियाण ॥१३७॥

दामोदररास को सागानेर से बडे ठाट वाट के साथ आमेर लाया गया और उन्हें संवतु १७२२ मे विधि-वत् भट्टारक बना दिया गया। अब दामोदररास से

उनका नाम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति हो गया। इनका पाटोत्सव बडी धूम धाम से हुआ। स्वर्ण कलश से स्नान कराया गया तथा सारे राजस्थान मे प्रतिष्ठित श्रावको ने इस महोत्सव मे भाग लिया। सुरेन्द्रकीर्त्ति की प्रशसा मे लिखा हुआ एक पद्य देखिये—

सत्रासै साल भए बाइसे सजम सावरण मधि ग्रह्यौ
सुभ आठै मगलवार सही जोतिग मिले पखि किसन कह्यौ।

मारयौ मद मोह मिथ्यातम हर भउ रुप महा वैराग धरयौ।
धर्मवत धरारत नागर सागर गोतम सौ गुण ग्यान भरयौ।

तप तेज सुकाइ अनत करे सवक तणी तिन माण हण,
थीर थभण पाट नरिंद तणौ सुरीयद भट्टारिक साध भए ॥१६६॥

सुरेन्द्रकीर्त्ति की योग्यता एव सयम की चारो ओर प्रशसा होने लगी और शीघ्र ही इन्होने सारे राजस्थान पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ये केवल ११ वर्ष भट्टारक रहे लेकिन इस अल्प समय मे ही इन्होने सब ओर विहार करके समाज सुधार एव साहित्य प्रचार का बडा भारी कार्य किया। इन्हें कितने ही स्थानो से निमन्त्रण मिलते। जब ये अहार के लिये जाते तो श्रावक इन पर सोने चादी का सिक्के न्योछावर करते और इनके आगमन से अपने घर को पवित्र समझते। वास्तव मे समाज मे इन्हे अत्यधिक आदर एव सत्कार मिला।

सुरेन्द्रकीर्त्ति साहित्यिक भी थे। इनके काल मे आमेर शास्त्र भण्डार की अच्छी प्रगति रही। कितनी ही नवीन प्रतिया लिखवायी गयी और कितने ही ग्र थो का जीर्णोद्धार किया गया।

———

भट्टारक जगत्कीर्त्ति

जगत्कीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध एवं लोक प्रिय भट्टारक रहे हैं। ये सवत् १७३३ मे सुरेन्द्रकीर्त्ति के पश्चात् भट्टारक बने। इनका पट्टाभिषेक आमेर मे हुआ था जहा आमेर और सागानेर एव अन्य नगरो के सैकडो हजारो श्रावको ने इन्हे अपना गुरु स्वीकार किया था। तत्कालीन पडित रत्नकीर्त्ति, महीचन्द, एव यशःकीर्त्ति ने इनका समर्थन किया। ये शास्त्रो के ज्ञाता एव सिद्धान्त ग्रथो के गम्भीर विद्वान थे। मन्त्र शास्त्र मे भी इनका अच्छा प्रवेश था। एक भट्टारक पट्टावली मे इनके पट्टाभिषेक का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

महो मूलसघ गछपति मारिण धारी, आतमक जीवइ राग धर।
आराध मन्त्र विद्या, बरवाइक, अमृत मुखि उचार कर।

सत सील धर्म सारी परिस कहय, वसुधा जस तिरण विसतरीय।
श्रीय जगतकीरति भट्टारिक जग गुर, श्रीय सुरियद पाट सउधरीय।।१४।

आवैरि नइरि नृप राम राज मधि, विमलदास विधि सहैत कीय।
परिमल भरि पच कलस अति कु दन पचमिलि कल्याण कीय।

अजलि काइसर दास झेलि करि, अति आनद उछव करीय।
श्री जगतकीरति भट्टारक जग गुर, श्रीय सुरिद द पाटिउ धरिय।।१५।।

साखौण्या वसि सिरोमरिण सब विधि, दुनीया ध्रम उपदेस दीय।
उपगार उदार वडो व्रद छाजत, लोभ्या मुखि मुखि सुजस लीय।

देवल पतिस्ट सग उपदेसैं, अमृत वारिण सउचरीय।
श्री जगतकीरति भट्टारक जगगुर, श्रीय सुरिद द पाटिउ धरिय।।१६।।

सवत सत्रासै अर तेतीसैं, सावरण वदि पचमी भरिण।
पदवी भट्टारक अचल विराजित, धरण दान धरण राजतरण।

महिमा महा सवै करै मिलि श्रावक, सीख साखा आनद धरीय।
श्री जगतकीरति भट्टारिक जगतगुर, श्रीसुरिंद्द पाट सउ धरीय।।१७।।

जगतकीर्त्ति एक लम्बे समय तक भट्टारक रहे और इन्होने अपने इस काल को राजस्थान मे स्थान स्थान मे विहार करके जन साधारण के जीवन को सास्कृतिक, साहित्यिक एव धार्मिक दृष्टि से ऊचा उठाया। सवत् १७४१ मे आपने

लवाण (जयपुर) ग्राम मे बिहार लिया। उस अवसर पर यहा के एक श्रावक हरनाम ने सोलहकारण व्रतोद्यापन के समय भट्टारक सोमसेन कृत रामपुराण ग्र थ की प्रति इनके शिष्य शुभचन्द्र को भेंट दी थी, इसी तरह एक अन्य अवसर पर सवत् १७४५ मे श्रावको ने मिल कर इनके शिष्य नाथूराम को सकलभूषण के उपदेश रत्न माला की प्रति भेंट की थी।

इनका एक शिष्य नेमिचन्द्र अच्छा विद्वान् था। उसने सवत् १७६९ मे हरिवशपुराण की रचना समाप्त की थी। इसकी ग्र थ प्रशस्ति मे भट्टारक जगत कीर्ति की प्रशसा मे कवि ने निम्न छन्द लिखा है—

भट्टारक सब उपरै, जगतकीरती जगत जोति अपारतो।
कीरति चहु दिसि विस्तरी, पाच आचार पालै सुभ सारतो।

प्रमत्त मैं जीतै नही, चहु दिसि मैं ताकी आणतो।
खिमा खडग स्यौं जीतिया, चोराणवै पटनायक माणतो ॥२०॥

पूर्व भट्टारको के समान इन्होने भी कितनी ही प्रतिष्ठाओ मे भाग लिया। सवत् १७४१ मे नरवर मे प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। इसी वर्ष तक्षकगढ (टोडारायसिंह) मे भी प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ। सवत् १७४६ मे चादखेडी मे जो विशाल प्रतिष्ठा हुई उसका सञ्चालन इन्ही के द्वारा सम्पन्न हुआ था। इस प्रतिष्ठा समारोह मे हजारो मूर्तियो की प्रतिष्ठा हुई थी और आज वे राजस्थान के विभिन्न मन्दिरो मे उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार सवत् १७७० तक भट्टारक जगतकीर्त्ति ने जो साहित्य एव सस्कृति की जो साधना की वह चिरस्मरणीय रहेगी।

अवशिष्ट संत

राजस्थान मे हमारे आलोच्य समय (सवत् १४५० से १७५० तक) मे सैकडो ही जैन सत हुए जिन्होने अपने महान् व्यक्तित्व द्वारा देश,समाज एव साहित्य की बडी भारी सेवायें की थी। मुस्लिम शासन काल मे भारत के प्रत्येक भू भाग पर युद्ध एव अशान्ति के बादल सदैव छाये रहते थे। शासन द्वारा यहा के साहित्य एव सस्कृति के विकास मे कोई रुचि नही ली जाती थी ऐसे सक्रमण काल मे इन सन्तो ने देश के जीवन को सदा ऊंचा उठाये रखा एव यहा की सस्कृति एव साहित्य को विनाश होने से बचाया ऐसे २० सन्तो का हम पहिले विस्तृत परिचय दे चुके हैं लेकिन अभी तो सैंकडो ऐसे महान् सन्त हैं जिनकी सेवाओ का स्मरण करना वास्तव मे भारतीय संस्कृति को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना है। ऐसे ही कुछ सन्तो का सक्षिप्त परिचय यहा दिया जा रहा है—

---

१. मुनि महनन्दि

मुनि महनदि भ० वीरचन्द के शिष्य थे इनकी एक कृति बारक्खडी दोहा मिली है। इसका अपर नाम पाहुडदोहा भी है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सवंत् १६०२ की संग्रहीत है जो चपावती (चाटसू) के पार्श्व-नाथ चैत्यालय मे लिखी गई थी। प्रति शुद्ध एव सुपाठ्य है। लिपि के अनुसार रचना १५ वी शताब्दी की मालूम होती है। कवि की यद्यपि अभी तक एक ही कृति मिली है लेकिन वही उच्च कृति है। भाषा अपभ्र श प्रभावित है तथा काव्यगत गुणो से पूर्णत. युक्त है।

कवि ने रचना मे के आदि अन्त भाग मे अपना निम्न प्रकार नामोल्लेख किया है—

वारह विउणा जिण णवेमि किय वारह अक्खरकक्क।
महयदिण भवियायण हो, णिसुणहु थिरमण थक्क ॥२॥

भवदुक्खह निव्विणएण, वीरचन्द सिस्सेण।
भवियह पडिवोहण कया, दोहा कव्व मिसेण ॥३॥

वारहखडी में य प, श, ड, ञ और ण इन वर्णों पर कोई दोहा नही है। इसमें ३३३ दोहा है जिनकी विभिन्न रूप से कवि ने निम्न प्रकार संख्या दी है।

एक्कु या रु ष शारदुइ ड ण तिन्निवि मिल्लि।
चउवीस गल तिण्णिसय, विरइए दोहा वेल्लि ॥४॥

तेतीसह छह छडिया, विरइय सत्तावीस।
वारह गुणिया त्तिण्णिसय, हुअ दोहा चउवीस ॥५॥

सो दोहा अप्पाणयहु, दोहो जोण मुणेइ।
मुणि महयदिण भासियउ, सुणिवि ण चित्ति धरेइ ॥६॥

प्रारम्भ मे कवि ने अहिंसा की महत्ता वतलाते हुये लिखा है कि अहिंसा ही धर्म का सार है—

किजइ जिणवर भासियऊ, धम्मु अहिंसा सारु।
जिम छिजइ रे जीव तुहु, अवलीढउ ससारु ॥६॥

रचना वहुत सुन्दर है। इसे हम उपदेशात्मक, अध्यात्मिक एवं नीति रसात्मक कह सकते है। कवि ने छोटे छोटे दोहो मे सुन्दर भावो को भरा है। वह कहता है कि जिस प्रकार दूध मे घी तिल से तेल तथा लकडी मे अग्नि रहती है उसी प्रकार शरीर मे आत्मा निवास करती है—

खीरह मज्झह जेम घिउ, तिलह मज्झि जिम तिलु।
कट्ठिहु वासणु जिम वसइ, तिम देहहि देहिल्लु ॥२२॥

कृति मे से कुछ चुने हुये दोहो को पाठको के अवलोकनार्थ दिये जा रहे हैं—

दमु दय नजमु णियमु तउ, आज मुवि किउ जेण।
तासु मर तह कवण भऊ, कहियउ महइ देण ॥१७५॥

दाणु चउविहु जिणवरह, कहियउ सावय दिज्ज।
दय जीवह चउसघहवि, भोयणु ऊसह विज्ज ॥१७६॥

पीडहि काउ परीसहहिं, जइ ण वियभइ चित्तु।
मरणयालि असि आउसा, दिढ चित्तडइ धरनु ॥२१४॥

फिरइ फिरकहिं चक्कु जिम, गुण उणलद्धुम लोहु।
णरय तिरिक्खहि जीवडउ, अमु चतउ तिय मोहु ॥२२५॥

बाल मरण मुणि परिहरहिं, पडिय मरणु मरेहि ।
बारह जिण सासणि कहिय, अणु वेक्खउ सुमरेहि ।।२२६।।

× × × × ×

रूव गध रस फसडा, सद् लिग गुण हीण ।
अछइसी देहडि यसउ, घिउ जिम खीरह लोणु ।।२७६।।

अन्तिम पद्य—

जो पढइ पढावइ सभलइ, देविणु दवि लिहावइ ।
महयदु भणइ सो नित्तुलउ, अक्खइ सोक्खु परावइ ।।३३३।।

इति दोहा पाहुड समाप्त ।।शुभ भवतु।।

---

२. भुवनकीर्ति

भुवनकीर्त्ति भ० सकलकीर्त्ति के शिष्य थे ।[1] सकलकीर्त्ति की मृत्यु के पश्चात् ये भट्टारक बने लेकिन ये भट्टारक किस सवत् मे बने इसका कोई उल्लेख नही मिलता है। भट्टारक सम्प्रदाय मे इन्हें सवत् १५०८ मे भट्टारक होना लिखा है ।[2] लेकिन अन्य भट्टारक पट्टावलियो[3] मे सकलकीर्ति के पश्चात् धर्मकीर्त्ति एव विमलेन्द्रकीर्त्ति के भट्टारक होने का उल्लेख आता हैं। इन्ही पट्टावलियो के अनुसार धर्मकीर्त्ति २४ वर्ष तथा विमलेन्द्रकीर्त्ति १८ वर्ष भट्टारक रहे। इस तरह सकलकीर्त्ति के ३३ वर्ष के पश्चात् भुवनकीर्त्ति को अर्थात् सवत् १५३२ मे भट्टारक होना चाहिए, लेकिन भुवनकीर्त्ति के पश्चात् होने वाले सभी विद्वानो एव भट्टारको ने उक्त दोनो भट्टारको का कही भी उल्लेख नही किया इसलिये यही मान लिया जाना

---

१. आदि शिष्य आचारि जूहि गुरि दीखियाभूतलिभुवनकीर्त्ति—

सकलकीर्त्ति रास

२. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या १५८

३. त्यारपुठे सकलकीर्त्ति ने पाटै श्री धर्मकीर्ति आचार्य हुआ ते सागवाडा हता तेणे श्री सागवाडो जुने देहरे आदिनाथ नो प्रासाद करावीनै । पाछे नोगामो नै संघै पर स्थापना करि है। पाछै सागवाडे जाई ने पिता ने पुत्रकने प्रतिष्ठा करावी पौतोपुर मत्र दीधो ते धर्मकीर्त्ति ये वर्ष २४ पाट भोग्यो पछै परोक्ष थया । पुठे पोताने दी करे ।

चाहिए कि इन भट्टारको को भट्टारक सकलकीर्त्ति की परम्परा के भट्टारक स्वीकार नही किया गया और भुवनकीर्त्ति को ही सकलकीर्त्ति का प्रथम शिष्य एव प्रथम भट्टारक घोषित कर दिया गया। इन्हे भट्टारक पद पर सवत् १४९९ के पश्चात् किया भी समय अभिषिक्त कर दिया होगा।

भुवनकीर्त्ति को भ्रातरी ग्राम मे भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया। इस कार्य में सघवी सोमदास का प्रमुख हाथ था।

> "पाछँ गाम आत्रीये सघवी सोमजी ने समस्त सघ मिली नैं भट्टारक भुवनकीर्त्ति थाप्या"
>
> भट्टारक पट्टावलि डूँगरपुर शास्त्र भडार।

× + × ×

> "पछे समस्त श्री सघ मली ने भ्रातरी नगर मध्ये सघवी सोमदास भट्टारक पदवी भुवनकीर्त्ति स्वामी थाप्या।
>
> भट्टारक पट्टावलि ऋषभदेव शास्त्र भडार।

जूना देहरानैं सन्मुखनि सही करावी। पछैं धर्मकीर्त्ति नैं पाटैं नोगामाने सघ श्री विमलेन्द्रकीर्त्ति स्थापना करी तेणे वर्ष १२ पाट भोगव्यो।

भट्टारक पट्टावली–डूगरपुर शास्त्र भडार

\+ + + +

स्वामी सकलकीर्त्ति ने पाटे धर्म्मकीर्त्ति स्वामी नौतनपुर सघे थाप्या। सागवाडा नाहाता अंगारी आ कहावे हेता प्रथम प्रथम प्रासाद करावीने श्री आश्ननाथनो। पीछे दीक्षा लीधी हती ते वर्ष २४ पाट भोगव्यो पोताने हाथी प्रतिष्टाचार करि प्रासादानी पछे अंत समे समाधीमरण करता देहरा सामीनसि करावी दी करे करानो सागवाडे। पछे स्वामी धर्मकीर्ति ने पाटे नौतनपुर ने संघ समस्त मिली ने वीमलेन्द्रकीर्ति आचार्य पद थाप्या ते गोलालारनी न्यात हती। ते स्वामी वीमलेन्द्रकीर्त्ति दक्षण पोहता कुदणपुर प्रतिष्ठा करावा सारु ते वीमलेन्द्रकीर्त्ति स्वामीदक्षण जे परो जे परोक्ष थपा। स्वामी प्रष्टा प्रसादा बवनी ४ तथा ५ बागड मध्ये करि वर्ष १२ पाट भोगव्यो। एतला लगेण आचारय षाट चाल्या।

भ० पट्टावली भ० यशःकीर्त्ति शास्त्र भंडार (ऋषभदेव)

व्यक्तित्व—

सत भुवनकीर्त्ति विविध शास्त्रो के ज्ञाता एव प्राकृत, सस्कृत तथा राजस्थानी के प्रबल विद्वान थे। शास्त्रार्थ करने मे वे अति चतुर थे। वे सम्पूर्ण कलाओ मे पारगत तथा पूर्ण अहिंसक थे। जिधर भी आपका विहार होता था, वहा आपका अपूर्व स्वागत होता। ब्रह्म जिनदास के शब्दो मे इनकी कीर्त्ति विश्व विख्यात हो गयी थी। वे अनेक साधुओ के अधिपति एव मुक्ति-मार्ग उपदेष्टा थे। विद्वानो से पूजनीय एव पूर्ण सयमी थे। वे अनेक काव्यो के रचयिता एव उत्कृष्ट गुणो के मदिर थे।[1]

ब्रह्मजिनदास ने अपने रामचरित्र काव्य मे इन्ही भट्टारक भुवनकीर्त्ति का गुणानुवाद करते हुये लिखा है कि वे अगाध ज्ञान के वेत्ता तथा कामदेव को चूर्ण करने वाले थे। ससार पाश को त्यागने वाले एव स्वच्छ गुणो के धारक थे। अनेक साधुओ के पूजनीय होने से वे यतिराज कहलाते थे।[2]

भुवनकीर्त्ति के बाद होने वाले सभी भट्टारको ने इनका विविध रूप से

---

१. जयति भुवनकीर्त्ति विश्वविख्यातकीर्त्ति

बहुयतिजनयुक्तो, मुक्तिमार्गप्रणेता।
कुसमशरविजेता, भव्यसन्मार्गनेता ॥३॥

विवुधजननिषेव्य सत्कृतानेककाव्य।
परमगुणनिवासः, सद्कृताली विलास

विजितकरणमारः प्राप्तससारपारः
सभवतु गतदोषः शर्म्मणे वा सतोष. ॥४॥

जम्बूस्वामी चरित्र (ब्र० जिनदास)

२. पट्टे तदीये गुणावान् मनीषी क्षमानिधाने भुवनादिकीर्त्ति।
जीयाच्चिरं भव्यसमूहवंद्यो नानायतिव्रातनिषेवणीयः ॥१८५॥

जगति भुवनकीर्तिभूर्तलख्यातकीर्त्ति.,
श्रुतजलनिधिवेत्ता अनगमानप्रभेता।

विमलगुणनिवासः छिन्नसंसारपाश
सजयति यतिराज. साधुराजि समाजः ॥१८६॥

रामचरित्र (ब्र० जिनदास)

गुणानुवाद गया है। इनके व्यक्तित्व एव पाडित्य से सभी प्रभावित थे। भट्टारक शुभचन्द्र ने इनका निम्न शब्दो मे स्मरण किया है।

तत्पट्टधारी भुवनादिकीर्त्ति, जीयाच्चिर धर्मधुरीणदक्ष.।
चन्द्रप्रभचरित्र

शास्त्रार्थकारी खलु तस्य पट्टे भट्टारकभुवनादिकीर्ति.।
पार्श्वकाव्यपजिका

भट्टारक सकलभूषण ने अपनी उपदेशरत्न माला मे आपका निम्न शब्दो मे उल्लेख किया है।

भुवनकीर्त्तिगुरुस्तत उर्ज्जितो भुवनभासनशासनमडन ।
अजनि तीव्रतपश्चरणक्षमो, विविधधर्म्मसमृद्धिसुदेशक ॥३॥

भट्टारक रत्नचद्र ने भुवनकीर्त्ति को सकलकीर्त्ति की आम्नाय का सूर्य मानते हुये उन्हे महा तपस्वी एव वनवासी शब्द से सम्बोधित किया है —

गुरुभुवनकीर्त्याख्यस्तत्पट्टोदयभानुमान् ।
जातवान् जनितानन्दो वनवासी महातप ॥४॥

इसी तरह भ० ज्ञानकीर्त्ति ने अपने यशोधर चरित्र में इनका कठोर तपस्या के कारण उत्कृष्ट कीर्ति वाले साधु के रूप मे स्तवन किया है—

पट्टे तदीये भुवनादिकीर्त्ति
तपो विधानाप्तसुकीर्त्तिमूर्त्तिम्

भुवनकीर्त्ति पहिले मुनि रहे और भट्टारक सकलकीर्त्ति की मृत्यु के पश्चात् किसी समय भट्टारक वने। भट्टारक वनने के पश्चात् इनके पाडित्य एव तपस्या की चर्चा चारो ओर फैल गयी। इन्होने अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य जनता को सास्कृतिक एव साहित्यिक दृष्टि से जाग्रत करने का वनाया और इसमे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली। इन्होने अपने शिष्यो को उत्कृष्ट विद्वान एव साहित्य–सेवी के रूप मे तैयार किया।

भ० भुवनकीर्त्ति की अब तक जितनी रचनायें उपलब्ध हुई हैं उनमे जीवन्धररास, जम्बूस्वामीरास, अजनाचरित्र आपको उत्तम रचनाये हैं। साहित्य रचना के अतिरिक्त इन्होने कितने ही स्थानो पर प्रतिष्ठा विधान सम्पन्न कराये तथा प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया।

१. सवत् १५११ मे इनके उपदेश से हूबड जातीय श्रावक करमण एव उसके परिवार ने चौबीसी की प्रतिमा (मूल नायक प्रतिमा शातिनाथ स्वामी) स्थापित की थी।

२. सवत् १५१३ मे इनकी देखरेख मे चतुर्विशति प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई गयी।

३. सवत् १५१५ मे गधारपुर मे प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई तथा फिर इन्ही के उपदेश से जूनागढ मे एक शिखर वाले मदिर का निर्माण करवाया गया और उसमे धातु पीतल) की आदिनाथ की प्रतिमा की स्थापना की गई। इस उत्सव मे सौराष्ट्र के छोटे बडे राजा महाराजा भी सम्मिलित हुये थे। भ० भुवनकीर्ति इसमे मुख्य अतिथि थे।

४. सवत् १५२५ मे नागद्रहा ज्ञातीय श्रावक पूजा एव उसके परिवार वालो ने इन्ही के उपदेश से आदिनाथ स्वामी की धातु की प्रतिमा स्थापित की।

---

१. सवत् १५११ वर्षे वैशाख बुदी ५ तिथौ श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ० सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति उपदेशात् हूबड जातीय श्री करमण भार्या सूल्ही सुत हरपाल भार्या खाडी सुत आसाधर एते श्री शांतिनाथ नित्यं प्रणमति।

२. संवत् १५१३ वर्षे वंशाख बुदि ४ गुरौ श्री मूलसघे भ० सकलकीर्ति तत्पट्टे भुवनकीर्त्ति—देवड भार्या लाडी सुत जगपाल भार्या सुत जाइया जिणदास एते श्री चतुर्विंशतिका नित्यं प्रणमति। शुभभवतु।

३. प्रतख्य पनर पनरोत्तरिइं गुरु श्री गधारपुरी' प्रतिष्ठा सघवइ रागरिए॥१९॥
जूनीगढ गुरु उपदेसइ सिखरबंध अतिसव।
सखि ठाकर अदराज्यस्सघ राजिप्रासाद मांडीउए॥२०॥
मडलिक राइ बहू मानीउ देश व देशी ज व्यापीसु।
पतीलमइ आदिनाथ थिर थापीया ए॥२१॥

सकलकीर्त्तिनुरास

४ सवत् १५२५ वर्षे ज्येष्ठ बदी ८ शुक्रे श्रीमूलसघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये श्री सकलकीर्त्तिदेवा तत् पट्टे भ० भुवनकीर्त्ति गुरूपदेशात् नागद्रहा ज्ञातीयश्रेष्ठि पूजा भार्या वाछू सुत तोल्हा भार्या वारु सुत काला, तोल्हा सुत वेला-एते श्री आदिनाथ नित्य प्रणमति।

५. सवत् १५२७ वैशाख बुदि ११ को आपने एक और प्रतिष्ठा करवाई। इस अवसर पर हूबड जातीय जयसिंह आदि श्रावको ने धातु की रत्नत्रय चौवीसी की प्रतिष्ठा करवाई।

३. भट्टारक जिनचन्द्र

भट्टारक जिनचन्द्र १६ वी शताब्दी के प्रसिद्ध भट्टारक एव जैन सन्त थे। भारत की राजधानी देहली मे भट्टारको की प्रतिष्ठा बढाने मे इनका प्रमुख हाथ रहा था। यद्यपि देहली मे ही इनकी भट्टारक गादी थी लेकिन वहा से ही ये सारे राजस्थान का भ्रमण करते और साहित्य एव सस्कृति का प्रचार करते। इनके गुरू का नाम शुभचन्द्र था और उन्ही के स्वर्गवास के पश्चात् सवत् १५०७ की जेष्ठ कृष्णा ५ को इनका बडी धूम-धाम से पट्टाभिषेक हुआ। एक भट्टारक पट्टावली के अनुसार इन्होने १२ वर्ष की आयु मे ही घर बार छोड दिया और भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य बन गये। १५ वर्ष तक इन्होने शास्त्रो का खूब अध्ययन किया। भाषण देने एवं वाद विवाद करने की कला सीखी तथा २७ वें वर्ष मे इन्हें भट्टारक पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। जिनचन्द्र ६४ वर्ष तक इस महत्वपूर्ण पद पर आसीन रहे। इतने लम्बे समय तक भट्टारक पद पर रहना बहुत कम सन्तो को मिल सका है। ये जाति से बघेरवाल जाति के श्रावक थे।

जिनचन्द्र राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पजाब एव देहली प्रदेश मे खूब विहार करते। जनता को वास्तविक धर्म का उपदेश देते। प्राचीन ग्रन्थो की नयी नयी प्रतिया लिखवा कर मन्दिरो मे विराजमान करवाते, नये २ ग्रथो का स्वय निर्माण करते तथा दूसरो को इस ओर प्रोत्साहित करते। पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाते तथा स्थान स्थान पर नयी २ प्रतिष्ठायें करवा कर जैन धर्म एव सस्कृति का प्रचार करते। आज राजस्थान के प्रत्येक दि० जैन मन्दिर मे इनके द्वारा प्रतिष्ठित एक दो मूर्त्तिया अवश्य ही मिलेंगी। सवत् १६४८ मे जीवराज पापडीवाल ने जो बडी भारी प्रतिष्ठा करवायी थी वह सब इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई थी। उस प्रतिष्ठा में सैकडो ही नही हजारो मूर्त्तिया प्रतिष्ठापित करवा कर राजस्थान के अधिकाश मन्दिरो मे विराजमान की गयी थी।

---

५ सवत् १५२७ वर्षे वैशाख बदी ११ बुधे श्री मूलसघे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति उपदेशात् हूंबड ब्र० जयसिग भार्या भूरी सुत धर्मा भार्या हीरु भ्राता वीरा भार्या मरगदी सुत माड्या भूधर खीमा एते श्री रत्नत्रयचतुर्विंशतिका नित्यं प्रणमंति ।

आवां (टोक, राजस्थान) मे एक मील पश्चिम की ओर एक छोटी सी पहाडी पर नासियां हैं जिसमे भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एवं प्रभाचन्द्र की निषेधिकाये स्थापित की हुई हैं ये तीनों निषेधिकाए सवत् १५९३ ज्येष्ठ सुदी ३ सोमवार के दिन भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य मंडलाचार्य धर्मचन्द्र ने साह कालू एव इसके चार पुत्र एव पौत्रो के द्वारा स्थापित करायी थी। भट्टारक जिनचन्द्र की निषेधिका की ऊंचाई एव चौडाई १४½ फीट × ९ इंच है।

इसी समय आवा मे एक बडी भारी प्रतिष्ठा भी हुई थी जिसका ऐतिहासिक लेख वही के एक शांतिनाथ के मन्दिर मे लगा हुआ है। लेख सस्कृत मे है और उसमे भ० जिनचन्द का निम्न शब्दो मे यशोगान किया गया है—

तत्पट्टस्थपरो धीमान् जिनचन्द्र सुतत्ववित्।
अभूतो ऽस्मिन् च विख्यातो ध्यानार्थी दग्धकर्मक ॥

साहित्य सेवा—

जिनचन्द्र का प्राचीन ग्रथो का नवीनीकरण की ओर विशेष ध्यान था इसलिये इनके द्वारा लिखवायी गयी कितनी ही हस्तलिखित प्रतिया राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होती है। सवत् १५१२ की अषाढ कृष्ण १२ को नेमिनाथ चरित की एक प्रति लिखी गयी थी जिसे इन्हें घोघा बन्दगाह मे नयनन्दि मुनि ने समर्पित की थी।[1] सवत् १५१५ मे नैणवा नगर मे इनके शिष्य अनन्तकीर्त्ति द्वारा नरसेनदेव की सिद्धचक्र कथा (अपभ्रंश) की प्रतिलिपि श्रावक नाराइण के पठनार्थ करवायी। इसी तरह सवत् १५२१ मे ग्वालियर मे पउमचरिउ की प्रतिलिपि करवा कार नेत्रनन्दि मुनि को अर्पण की गयी।[2] सवत् १५५८ की श्रावण शुक्ल १२ को इनकी आम्नाय मे ग्वालियर मे महाराजा मानसिंह के शासन काल मे नागकुमार चरित की प्रति लिखवायी गयी।

मूलाचार की एक लेखक प्रशस्ति से भट्टारक जिनचन्द्र की निम्न शब्दो मे प्रशसा की गयी है—

तदीयपट्टाबरभानुमाली क्षमादिनानागुणरत्नशाली।
भट्टारकश्रीजिनचन्द्रनामा सैद्धान्तिकाना भुवि योस्ति सीमा ॥

इसकी प्रति को सवत् १५१६ मे झुंझुनु (राजस्थान) मे साह पार्श्व के पुत्रो

१. देखिये भट्टारक पट्टावली पृष्ठ संख्या १०८
२. वहीं

ने श्रुतपचमी उद्यापन पर लिखवायी थी। सं. १५१७ मे झुझुणु मे ही तिलोयपण्णत्ति की प्रति लिखवायी गयी थी। प० मेघावी इनका एक प्रमुख शिष्य था जो साहित्य रचना में विशेप रुचि रखता था। इन्होने नागौर मे धर्मसग्रहश्रावकाचार की सवत् १५४१ मे रचना समाप्त की थी इसकी प्रशस्ति मे विद्वान् लेखक ने जिनचद्र की निम्न शब्दो मे स्तुति की है—

तस्मान्नीरनिधेरिवेंदुरभवच्छ्रीमज्जिनेंद्रगणी ।
स्याद्वादावरमडलैः कृतगतिर्दिगवाससा मडनः ॥

यो व्याख्यानमरीचिभि कुवलये प्रल्हादन चक्रिवान् ।
सद्वृत्तः सकलकलकविकल पट्तर्कनिष्णातधी ॥१२॥

स्वय भट्टारक जिनचन्द्र की अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण रचना उपलब्ध नही हो सकी है लेकिन देहली, हिसार, आगरा आदि के शास्त्र भण्डारो की खोज के पश्चात् सभवत कोई इनकी बडी रचना भी उपलब्ध हो सकें। अब तक इनकी जो दो रचनायें उपलब्ध हुई हैं उनके नाम है सिद्धान्तसार और जिनचतुर्विशतिस्तोत्र। सिद्धान्तसार एक प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है और उसमे जिनचन्द्र के नाम से निम्न प्रकार उल्लेख हुआ है—

पवयणपमाणलक्खण छदालकार रहियहियएण ।
जिणइ देण पउत्त इणमागमभत्तिजुत्तेण ॥७८॥

(माणिकचन्द्र ग्रथमाला बम्बई)

जिनचतुर्विशति स्तोत्र की एक प्रति जयपुर के विजयराम पाड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है। रचना सस्कृत मे है और उसमे चौवीस तीर्थंकरो की स्तुति की गयी है।

साहित्य प्रचार के अतिरिक्त इन्होने प्राचीन मन्दिरो का खूब जीर्णोद्वार करवाया एव नवीन प्रतिमाओ की प्रतिष्ठायें करवा कर उन्हे मन्दिरो मे विराजमान किया गया। जिनचन्द्र के समय मे भारत पर मुसलमानो का राज्य था इसलिये वे प्राय मन्दिरो एव मूर्त्तियो को तोडते रहते थे। किन्तु भट्टारक जिनचन्द्र प्रतिवर्ष नयी नयी प्रतिष्ठायें करवाते और नये नये मन्दिरो का निर्माण कराने के लिये श्रावको को प्रोत्साहित करते रहते। सवत् १५०९ मे समवतः उन्होने भट्टारक बनने के पश्चात् प्रथम बार धौपे ग्राम मे शान्तिनाथ की मूर्त्ति स्थापित की थी। स. १५१७ मंगसिर शुल्क १० को उन्होने चौबीसी की प्रतिमा स्थापित की। इसी तरह १५२३ मे भी चौवीसी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करके स्थापना की गयी। सवत् १५४२,

१५४३, १५४८ आदि वर्षो मे प्रतिष्ठापित की हुई कितनी ही मूर्त्तिया उपलब्ध होती हैं। सवत् १५४८ मे जो इनकी द्वारा शहर मु डासा (राजस्थान) मे प्रतिष्ठा की गयी थी। उसमे सैंकडो ही नही किन्तु हजारो की सख्या मे मूर्त्तिया प्रतिष्ठापित की गयी थी। यह प्रतिष्ठा जीवराज पापडीवाल द्वारा करवायी गयी थी। भट्टारक जिनचन्द्र प्रतिष्ठाचार्य थे।

भ० जिनचन्द्र के शिष्यो मे रत्नकीर्त्ति, सिंहकीर्त्ति, प्रभाचन्द्र, जगतकीर्त्ति, चारुकीर्त्ति, जयकीर्त्ति, भीमसेन, मेघावी के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। रत्नकीर्त्ति ने सवत् १५७२ मे नागौर (राजस्थान) मे भट्टारक गादी स्थापित की तथा सिंहकीर्त्ति ने अटेर मे स्वतन्त्र भट्टारक गादी की स्थापना की।

इस प्रकार भट्टारक जिनचन्द्र ने अपने समय मे साहित्य एव पुरातत्व की जो सेवा की थी वह सदा ही स्वर्णाक्षरो मे लिपिवद्ध रहेगी।

४. भट्टारक प्रभाचन्द्र

प्रभाचन्द्र के नाम से चार प्रसिद्ध भट्टारक हुये। प्रथम भट्टारक प्रभाचन्द्र बालचन्द के शिष्य थे जो सेनगरण के भट्टारक थे तथा जो १२ वी शताब्दी मे हुये थे। दूसरे प्रभाचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्त्ति के शिष्य थे जो गुजरात की बलात्कारगण-उत्तर शाखा के भट्टारक बने थे। ये चमत्कारिक भट्टारक थे और एक बार इन्होने अमावस्या को पूर्णिमा कर दिखायी थी। देहली मे राघो चेतन मे जो विवाद हुआ था उसमे इन्होने विजय प्राप्त की थी। अपनी मन्त्र शक्ति के कारण ये पालकी सहित आकाश मे उड गये थे। इनकी मन्त्र शक्ति के प्रभाव से बादशाह फिरोजशाह की मलिका इतनी अधिक प्रभावित हुई कि उन्हे उसको राजमहल मे जाकर दर्शन देने पडे। तीसरे प्रभाचन्द्र भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य थे और चौथे प्रभाचन्द्र भ० ज्ञानभूषण के शिष्य थे। यहा भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र के जीवन पर प्रकाश डाला जावेगा।

एक भट्टारक पट्टावली के अनुसार प्रभाचन्द्र खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे और वैद इनका गोत्र था। ये १५ वर्ष तक ग्रहस्थ रहे। एक बार भ० जिनचन्द्र विहार कर रहे थे कि उनकी दृष्टि प्रभाचन्द्र पर पडी। इनकी अपूर्व सूझ-बूझ एव गम्भीर ज्ञान को देख कर जिनचन्द ने इन्हे अपना शिष्य बना लिया। यह कोई सवत् १५५१ की घटना होगी। २० वर्ष तक इन्हे अपने पास रख कर खूब विद्याध्यन कराया और अपने से भी अधिक शास्त्रो का ज्ञाता तथा वादविवाद मे पटु बना दिया। संवत् १५७१ की फाल्गुण कृष्णा २ को इनका दिल्ली मे धूमधाम से पट्टाभिषेक हुआ। उस समय ये पूर्ण युवा थे। और अपनी अलौकिक वाक् शक्ति

एव साधु स्वभाव से बरबस हृदय को स्वतः ही आकृष्ट कर लेते थे। एक भट्टारक पट्टावलि के अनुसार ये २५ वर्ष तक भट्टारक रहे। श्री वी० पी० जोहरापुरकर ने इन्हे केवल ९ वर्ष तक भट्टारक पद पर रहना लिखा है।[1] भट्टारक बनने के पश्चात् इन्होने अपनी गद्दी को दिल्ली से चित्तौड (राजस्थान) मे स्थानान्तरित कर लिया और इस प्रकार से भट्टारक सकलकीर्त्ति की शिष्य परम्परा के भट्टारको के सामने कार्यक्षेत्र मे जा डटे। इन्होने अपने समय मे ही मडलाचार्यो की नियुक्ति की इनमे धर्मचन्द को प्रथम मडलाचार्य बनने का सौभाग्य मिला। सवत् १५९३ मे मडलाचार्य धर्मचन्द द्वारा प्रतिष्ठित कितनी ही मूर्त्तियाँ मिलती है। इन्होने ने आवा नगर मे अपने तीन गुरुओ की निषेधिकायें स्थापित की जिससे यह भी ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्र का इसके पूर्व ही स्वर्गवास हो गया था।

प्रभाचन्द्र अपने समय के प्रसिद्ध एव समर्थ भट्टारक थे। एक लेख प्रशस्ति मे इनके नाम के पूर्व पूर्वाचलदिनमणि, षड्तर्कतार्किकचूडामणि, वादिमदकुद्दल, अबुध-प्रतिबोधक आदि विशेषण लगाये हैं जिससे इनकी विद्वत्ता एव तर्कशक्ति का परिज्ञान होता है।

साहित्य सेवा

प्रभाचन्द्र ने सारे राजस्थान मे विहार किया। शास्त्र-भण्डारो का अवलोकन किया और उनमे नयी-नयी प्रतिया लिखवा कर प्रतिष्ठापित की। राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे इनके समय मे लिखी हुई सैकडो प्रतिया सग्रहीत है और इनका यशोगान गाती है। सवत् १५७५ की मागशीर्ष शुक्ला ४ को बाई पार्वती ने पुष्पदन्त कृत जसहर चरिउ की प्रति लिखवायी और भट्टारक प्रभाचन्द्र को भेंट स्वरूप दी।[2]

सवत् १५७९ के मगसिर मास में इनका टोक नगर में विहार हुआ। चारो ओर आनन्द एव उत्साह का वातावरण छा गया। इसी विहार की स्मृति मे पडित नरसेनकृत "सिद्धचक्रकथा" की प्रतिलिपि खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न टोग्या गोत्र वाले साह धरमसी एव उनकी भार्या खातू ने अपने पुत्र पौत्रादि सहित करवायी और उसे बाई पदमसिरी को स्वाध्याय के लिये भेंट दी।

सवत् १५८० मे सिकन्दराबाद नगर में इन्ही के एक शिष्य ब्र० बीडा को खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न साह दौदू ने पुष्पदन्त कृत जसहर चरिउ की प्रतिलिपि लिखवा कर भेंट की। उस समय भारत पर बादशाह इब्राहीम लोदी का शासन

---

१. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ ११०.

२. देखिये लेखक द्वारा सम्पादित प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ सख्या १८३

था। उसके दो वर्ष पश्चात् संवत् १५८२ मे घटियालीपुर मे इन्ही के आम्नाय के एक मुनि हेमकीर्त्ति को श्रीचन्दकृत रत्नकरण्ड की प्रति भेंट की गयी। भेंट करने वाली थी बाई भोली। इसी वर्ष जब इनका चपावती (चाटसू) नगर मे विहार हुआ तो वहा के साह गोत्रीय श्रावको द्वारा सम्यक्त्व-कौमुदी की एक प्रति ब्रह्म बूचा (बूचराज) को भेंट दी गयी। ब्रह्म बूचराज भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। सवत् १५८३ की अषाढ शुक्ला तृतीया के दिन इन्ही के प्रमुख शिष्य मंडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से महाकवि श्री यशःकीर्त्ति विरचित 'चन्दप्पहचरित' की प्रतिलिपि की गयी जो जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है।

सवत् १५८४ मे महाकवि धनपाल कृत बाहुबलि चरित की बघेरवाल जाति मे उत्पन्न साह माधो द्वारा प्रतिलिपि करवायी गयी और प्रभाचन्द्र के शिष्य ब्र० रत्नकीर्त्ति को स्वाध्याय के लिये भेंट दी गयी। इस प्रकार भ० प्रभाचन्द्र ने राजस्थान मे स्थान-स्थान मे विहार करके अनेक जीर्ण ग्रन्थो का उद्धार किया और उनकी प्रतिया करवा कर शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत की। वास्तव मे यह उनकी सच्ची साहित्य सेवा थी जिसके कारण सैंकडो ग्रन्थो की प्रतिया सुरक्षित रह सकी अन्यथा न जाने कब ही काल के गाल मे समा जाती।

प्रतिष्ठा कार्य

भट्टारक प्रभाचन्द्र ने प्रतिष्ठा कार्यों में भी पूरी दिलचस्पी ली। भट्टारक गादी पर बैठने के पश्चात् कितनी ही प्रतिष्ठाओ का नेतृत्व किया एव जनता को मन्दिर निर्माण की ओर आकृष्ट किया। सवत् १५७१ की ज्येष्ठ शुक्ला २ को षोडश-कारण यन्त्र एव दशलक्षण यन्त्र की स्थापना की। इसके दो वर्ष पश्चात् सवत् १५७३ की फाल्गुन कृष्णा ३ को एक दशलक्षण यन्त्र स्थापित किया। सवत् १५७८ की फालगुण सुदी ९ के दिन तीन चौवीसी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी और इसी तरह सवत् १५८३ मे भी चौबीसी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई। राजस्थान के कितने ही मन्दिरो मे इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्तिया मिलती हैं।

सवत् १५९३ मे मडलाचार्य धर्मचन्द्र ने आवा नगर मे होने वाले बडे प्रतिष्ठा महोत्सव का नेतृत्व किया था उसमे शान्तिनाथ स्वामी की एक विशाल एव मनोज्ञ मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की गयी थी। चार फीट ऊंची एव ३॥ फीट चौडी श्वेत पाषाण की इतनी मनोज्ञ मूर्त्ति इने गिने स्थानो मे ही मिलती हैं। इसी समय के एक लेख मे धर्मचन्द्र ने प्रभाचन्द्र का निम्न शब्दो मे स्मरण किया है—

तत्पट्टस्थ श्रुताधारी प्रभाचन्द्रः श्रियानिधिः ।
दीक्षितो योलसत्कीर्त्ति प्रचडः पडिताग्रणी ।

प्रभाचन्द्र ने राजस्थान मे साहित्य तथा पुरातत्व के प्रति जो जन साधारण मे आकर्षण पैदा किया था वह इतिहास मे सदा चिरस्मरणीय रहेगा । ऐसे सन्त को शतश. प्रणाम ।

५. ब्र० गुणकीर्त्ति

गुणकीर्त्ति ब्रह्म जिनदास के शिष्य थे । ये स्वय भी अच्छे विद्वान् थे और ग्र थ रचना मे रुचि लिया करते थे। अभी तक इनकी रामसीतारास की नाम एक राजस्थानी कृति उपलब्ध हुई है जिनके अध्ययन के पश्चात् इनकी विद्वत्ता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

श्री ब्रह्मचार जिणदास तु, परसाद तेह तणोए ।
मन वाछित फल होइ तु, बोलीइ किस्यु घणुए ॥३६॥

गुणकीरति कृत रास तु, विस्तारु मनि रलीए ।
बाई धनश्री ज्ञानदास नु, पुण्यमती निरमलीए ॥३७॥

गावउ रली रमि रास तु, पावउ रिद्धि वृद्धिए ।
मन वाछित फल होइ तु, सपजि नव निधिए ॥३८॥

'रामसीतारास' एक प्रवन्ध काव्य है जिसमे काव्यगत सभी गुण मिलते है । यह रास अपने समय में काफी लोकप्रिय रहा था इसलिये इसकी कितनी ही प्रतिया राजस्थान के शास्त्र भण्डारों मे उपलब्ध होती है । ब्रह्म जिनदास की रचनाओ की समकक्ष की यह रचना निश्चय हो राजस्थानी साहित्य के इतिहास मे एक अमूल्य निधि है ।

६. आचार्य जिनसेन

आचार्य जिनसेन भ० यश'कीर्त्ति के शिष्य थे। इनकी अभी एक कृति नेमिनाथ रास मिली है जिसे इन्होने सवत् १५५८ में जवाछ नगर मे समाप्त की थी। उस नगर मे १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चैत्यालय था उसी पावन स्थान पर रास की रचना समाप्त हुई थी ।

नेमिनाथ रास मे भगवान नेमिनाथ के जीवन का ९३ छन्दो मे वर्णन किया गया है । जन्म, बरात, विवाह ककण को तोडकर वैराग्य लेने की घटना, कैवल्य प्राप्ति

एवं निर्वाण इन सभी घटनाओ का कवि ने सक्षिप्त परिचय दिया है। रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव झलकता है।

रास एक प्रबन्ध काव्य है लेकिन इसमे काव्यत्व के इतने दर्शन नही होते जितने जीवन की घटनाओ के होते है, इसलिये इसे कथा कृति का नाम भी दिया जा सकता है। इसकी एक प्रति जयपुर के दि० जैन बडा मदिर तेहरपथी के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है। प्रति मे १०½"×४½" आकार वाले ११ पत्र हैं। यह प्रति सवत् १६१३ पौष सुदि १५ की लिखी हुई है।

ग्र थ का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है —

आदि भाग—

सारद सामिणि मागु माने, तुझ चलणे चित लागू ध्याने।
अविरल अक्षर आलु दाने, मुझ मूरख मनि अविशात रे।

गाउ राजा रलीयामणु रे, यादवना कुल मडणसार रे।
नामि नेमीश्वर जाणि ज्यो रे, तसु गुण पुहुवि न लाभि पार रे।

राजमती वर रुयडू रे, नवह भवतर मगीय भू तरे।
दशमि दुरधर तप लीउ रे, आठ कर्म चउमी आणु अंत रे॥

अन्तिम भाग—

श्री यशकिरति सूरीनि सूरीश्वर कहीइ, महीपलि महिमा पार न लही रे।
तात रूपवर वरसि नित वाणी, सरस सकोमल अमीय सयाणी रे।

तास चलणे चित लाइउ रे, गाइउ राइ अपूरव रास रे।
जिनसेन युगति करी दे, तेह ना वयण तणउ वली वास रे॥९१॥

जा लगि जलनिधि नवसिनी रे, जा लगि अचल मेरि गिरि धी रे।
जा गयण गणि चदनि सूर, ता लगि रास रहू भर करि रे।

प्रगति सहित यादव तणु रे, भाव सहित भणसि नर नारि रे।
तेहनि प्रणय होसि घणो रे, पाप तणु करसि परिहार रे॥९२॥

चद्र वाण सवच्छर कीजि, पचाणु पुण्य पासि दीजि।
माघ सुदि पचमी भणीजि, गुरुवारि सिद्ध योग ठवीजिरे।

जावछ नयर जगि जाणीइ रे, तीर्थंकर वली कहीइ सार रे।
शातिनाथ तिहां सोलमु रे, कस्यु रास तेह भवण मझार रे॥९३॥

७. ब्रह्म जीवन्धर

ब्रह्म जीवधर भ० सोमकीर्त्ति के प्रशिष्य एव भ० यश.कीर्त्ति के शिष्य थे। सोमकीर्त्ति का परिचय पूर्व पृष्ठो मे दिया जा चुका है। इसके अनुसार ब्र० जीवधर का समय १६ वी शताब्दि होना चाहिए। अभी तक इनकी एक 'गुणठाणा वेलि' कृति ही प्राप्त हो सकी है अन्य रचनाओ की खोज की अत्यधिक आवश्यकता है। गुणठाणा वेलि मे २८ छन्द है जिसका अन्तिम चरण निम्न प्रकार है,—

चौदि गुणठाणा सुण्या जे भण्या श्रीजिनराइ जी,
सुरनर विद्याधर समा पूजीय वदीय पाय जी।

पाय पूजी मनहर जी भरत राजा सचर्या,
अयोध्यापुरी राज करवा सयल सज्जन परवर्या।

विद्या गणवर उदय भूधर नित्य प्रकटन भास्कर,
भट्टारक यशकीरति सेवक भणिय ब्रह्म जीवधर ॥२२॥

वेलि की भाषा राजस्थानी है तथा इसकी एक प्रति महावीर भवन जयपुर के सग्रह मे है।

८. ब्रह्मधर्म रुचि

भ० लक्ष्मीचन्द्र की परम्परा मे दो अभयचन्द्र भट्टारक हुए। एक अभयचन्द्र (स० १५४८) अभयनन्दि के गुरु थे तथा दूसरे अभयचन्द्र भ० कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। दूसरे अभयचन्द्र का पूर्व पृष्ठो मे परिचय दिया जा चुका है किन्तु ब्रह्म धर्मरुचि प्रथम अभयचन्द्र के शिष्य थे। जिनका समय १६ वी शताब्दि का दूसरा चरण था। इनकी अब तक ६ कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं जिनमे सुकुमालस्वामीनो रास'[1] सबसे बडी रचना है। इसमे विभिन्न छन्दो मे सुकुमाल स्वामी का चरित्र वर्णित है। यह एक प्रबन्ध काव्य है। यद्यपि काव्य सर्गो मे विभक्त नही है लेकिन विभिन्न भास छन्दो मे विभक्त होने के कारण सर्गों मे विभक्त नही होना खटकता नही है। रास की भाषा एव वर्णन शैली अच्छी है। भाषा की दृष्टि मे रचना गुजराती प्रभावित राजस्थानी भाषा मे निबद्ध है।

ते देखी भयभीत हवी, नागश्री कहे तात।
कवण पातिग एणे कीया, परिपरि पामइ छे घात।

---

१. रास की एक प्रति महावीर भवन जयपुर के सग्रह मे है।

तव ब्राह्मण कहे सुन्दरी सुणो तह्मो एणी वात ।
जिम आनद वहु उपजे जग माहे छे विख्यात ॥२॥

रास की रचना घोघा नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे प्रारम्भ की गयी थी और उसी नगर के आदिनाथ चैत्यालय मे पूर्ण हुई थी । कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है:—

श्रीमूलसघ महिमा निलो हो, सरस्वती गच्छ सणगार ।
वलात्कार गण निर्मलो हो, श्री पद्मनन्दि भवतार रे जी० ॥२३॥

तेह पाटि युक गुणनिलो हो, श्री देवेन्द्रकीर्त्ति दातार ।
श्री विद्यानन्दि विद्यानिलो हो, तस पट्टोहर सार रे जी०॥२४॥

श्री मल्लिभूषण महिमानिनो हो, तेह कुल कमल विकास ।
भास्कर समपट तेह तणो हो, श्री लक्ष्मीचद्र रिछरु वासर जी० ॥२५॥

तस गच्छपति जगि जाणियो हो, गौतम सम अवतार ।
श्री अभयचन्द्र वखाणीये हो, ज्ञान तणे मडार रे जीवडा ॥२६॥

तास शिष्य भणि रुवडो हो, रास कियो मे सार ।
सुकुमाल नो भावइ जट्टो हो, सुणता पुण्य अपार रे जी० ॥२७॥

ख्याति पूजानि नवि कीयु हो, नवि कीयु कविताभिमान ।
कर्मक्षय कारणइ कीयु हो, पामवा वलि रूडू ज्ञान रे जी० ॥२८॥

स्वर पदाक्षर व्यजन हीनो हो, मइ कीयु होयि परमादि ।
साधु तम्हो सोधि लेना हो, क्षमितवि कर जो आदि रे जी० ॥२९॥

श्री घोघा नगर सोहामणू हो, श्रीसघव से दातार ।
चैत्याला दोइ भामणा हो, महोत्सव दिन दिन सार रे जी० ॥३०॥

कवि की अन्य कृतियो के नाम निम्न प्रकार है—

१. पीहरसासडा गीत,
२. वणिजडा गीत
३. मीणारे गीत
४. अरहत गीत
५. जिनवर वीनती
६. आदिजिन विनती
७. पट एव गीत

९. भट्टारक अभयनन्दि

भट्टारक अभयचन्द्र के पश्चात् अभयनन्दि भट्टारक पद पर अभिषिक्त हुए। ये भी अपने गुरु के समान ही लोकप्रिय भट्टारक थे, शास्त्रो के ज्ञाता थे, विद्वान् थे और उपदेष्टा थे। साहित्य के प्रेमी थे। यद्यपि अभी तक उनकी कोई महत्त्वपूर्ण रचना नही उपलब्ध हो सकी है लेकिन सागवाडा, सूरत एवं राजस्थान एव गुजरात के अन्य शास्त्र भण्डारो मे सभवत इनकी अन्य रचना भी मिल सके। एक गीत मे इन्होंने अपना परिचय निम्न प्रकार किया है—

अभयचन्द्र वादेन्द्र इह ;अनंत गुण निधान्।
तास पाट प्रयोज प्रकासन, अभयनन्दि सुरि भाण।
अभयनदी व्याख्यान करता, अभेमति ये थल पासु।
चरित्र श्री वाई तणे उपदेशे ज्ञान कल्याणक गाउ ॥

उनके एक शिष्य सयमसागर ने इनके सम्बन्ध मे दो गीत लिखे हैं। गीतो के अनुसार जालणपुर के प्रसिद्ध बघेरवाल श्रावक सघवी आसवा एव सघवी ीराम ने सवत् १६३० में इनको भट्टारक पद पर अभिषिक्त किया। वे गौर वर्ण एव शुभ देह वाले यति थे—

कनक काति शोभित तस गात, मधुर समान सुवाणि जी।
मदन मान मर्दन पचानन, भारती गच्छ सन्मान जी।
श्री अभयनन्दिसूरी पट्ट धुरंधर, सकल सघ जयकार जी।
सुमतिसागर तस पाय प्रणमे, निर्मल सयम धारी जी ॥१॥

१०. ब्रह्म जयराज

ब्रह्म जयराज भ० सुमतिकीर्त्ति के प्रशिष्य एव भ० गुणकीर्त्ति के शिष्य थे। सवत् १६३२ मे भ० गुणकीर्त्ति का पट्टाभिषेक डूगरपुर नगर मे बडे उत्साह के साथ किया गया था। गुरु छन्द[1] मे इसी का वर्णन किया गया है। पट्टाभिषेक मे देश के सभी प्रान्तो से श्रावक गण सम्मिलित हुए थे क्योकि उस समय भ० सुमतिकीर्त्ति का देश मे अच्छा सम्मान था।

सवत् सोल बत्रीसमि, वैशाख कृष्णा सुपक्ष।
दशमी सुर गुरु जाणिय, लगन लक्ष सुभ दक्ष।

---

१. इसकी प्रति माहवीर भवन जयपुर के रजिस्टर सख्या ५ पृष्ठ १४५ पर लिखी हुई है।

सिंहासणरूपा तणि; बिसाड्या गुरु सत ।
श्री सुमतिकीर्त्ति सूरि रिग भरी, ढाल्या कुभ महत ।

× × × ×

श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र चरण सेवि नर नारि,
श्री गुणकीर्त्ति यतीद्र पाप तापादिक हारी ।

श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र ज्ञानदानादिक दायक,
श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र, चार सघाष्टक नायक ।

सकल यतीश्वर मडणो, श्रीसुमतिकीर्त्ति पट्टोधरण ।
जयराज ब्रह्म एव वदति श्रीसकलसघ मगल करण ।।

इति गुरु छन्द

११. सुमतिसागर

सुमतिसागर भ० अभयनन्दि के शिष्य थे। ये ब्रह्मचारी थे तथा अपने गुरु के सघ मे ही रहा करते थे। अभयनन्दि के स्वर्गवास के पश्चात् ये भ० रत्नकीर्त्ति के सघ मे रहने लगे। इन्होने अभयनन्दि एव रत्नकीर्त्ति दोनो भट्टारको के स्तवन मे गीत लिखे हैं। इनके एक गीत के अनुसार अभयनन्दि स० १६३० मे भट्टारक गादी पर बैठे थे। ये आगम काव्य, पुराण, नाटक एव छद शास्त्र के वेत्ता थे।

सवत् सोलसा त्रिस सवच्छर, वैशाख सुदी त्रीज सार जी ।
अभयनन्दि गोर पाट थाप्या, रोहिणी नक्षत्र शनिवार जी ।।६।।
आगम काव्य पुराण सुलक्षण, तर्क न्याय गुरु जाणे जी ।
छद नाटिक पिंगल सिद्धान्त, पृथक पृथक बखाणे जी ।।७।।

सुमतिसागर अच्छे कवि थे। इनकी अब तक १० लघु रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार है—

१. साधरमी गीत	७. गणधर वीनती
२-३ हरियाल वेलि	८. अझारा पार्श्वनाथ गीत
४-५ रत्नकीर्त्ति गीत	९. नेमिवदना
६. अभयनन्दि गीत	१०. गीत

उक्त सभी रचनायें काव्य एव भाषा की दृष्टि से अच्छी कृतिया है एक उदाहरण देखिये—

ऊजल पूनिम चद्र सम, जस राजीमती जगि होई।
ऊजलु सोहइ अवला, रूप रामा जोइ।

ऊजल मुखेवर भामिनी, खाय मुख तबोल।
ऊजल केवल न्यान जानू, जीव भव कलोल।

ऊजलु रुपानु भल्लु, कटि सूत्र राजुल धार।
ऊजल दर्शन पालती, दुख नास जय सुखकार।

नेमिवदना

समय—सुमतिसागर ने अभयनन्दि एव रत्नकीर्त्ति दोनो का शासन काल देखा था इसलिये इनका समय समवत, १६०० से १६६५ तक होना चाहिए।

१२. ब्रह्म गणेश

गणेश ने तीन सन्तो का भ० रत्नकीर्त्ति, भ० कुमुदचन्द व भ० अभयचन्द का शासनकाल देखा था। ये तीनो ही भट्टारको के प्रिय शिष्य थे इसलिये इन्होने भी इन भट्टारको के स्तवन के रूप मे पर्याप्त गीत लिखे हैं। वास्तव मे ब्रह्म गणेश जैसे साहित्यिको ने इतिहास को नया मोड दिया और उनमे अपने गुरुजनो का परिचय प्रस्तुत करके एक बडी भारी कमी को पूरा किया। ब्र० गणेश के अब तक करीब २० गीत एव पद प्राप्त हो चुके हैं और सभी पद एव गीत इन्ही सन्तो की प्रशसा मे लिखे गये हैं। दो पद 'तेजाबाई' की प्रशसा मे भी लिखे हैं। तेजाबाई उस समय की अच्छी श्राविका थी तथा इन सन्तो को सघ निकालने मे विशेष सहायता देती थी।

१३. संयमसागर

ये भट्टारक कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। ये ब्रह्मचारी थे और अपने गुरु को साहित्य निर्माण मे योग दिया करते थे। ये स्वंय भी कवि थे। इनके अब तक कितने ही पद एवं गीत उपलब्ध हो चुके है। इनमे नेमिगीत, शीतलनाथगीत, गुणावलि गीत के नाम विशेषत. उल्लेखनीय है। अपने अन्य साथियो के समान इन्होने भी कुमुदचन्द्र के स्तवन एव प्रशसा के रुप मे गीत एव पद लिखे हैं। ये सभी गीत एवं पद इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

१. भ० कुमुदचन्द्र गीत
२. पद (आवो साहेलडीरे सहू मिलि सगे)
३ ,, (सकल जिन प्रणमी भारती समरी)

४. नेमिगीत
५ शीतलनाथ गीत
६. गीत ।
७ गुरावली गीत

१४. त्रिभुवनकीर्त्ति

त्रिभुवनकीर्त्ति भट्टारक उदयसेन के शिष्य थे। उदयसेन रामसेनान्वय तथा सोमकीर्त्ति कमलकीर्त्ति तथा यश.कीर्त्ति की परम्परा मे से थे। इनकी अब तक जीवंधररास एवं जम्बूस्वामीरास ये दो रचनायें मिली है । जीवधररास को कवि ने कल्पवल्ली नगर मे सवत् १६०६ मे समाप्त किया था। इस सम्बन्ध मे ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति देखिये—

नदीयड गछ मझार, राम सेनान्वयि हवा ।
श्री सोमकीरति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हवउ ।।५०।।

तेह पाटि प्रसिद्ध, चारित्र भार धुरधुरो ।
वादीय भजन वीर, श्री उदयसेन सूरीश्वरो ।।५१।।

प्रणमीय हो गुरु पाय, त्रिभुवनकीरति इस वीनवइ ।
देयो तह्म गुणग्राम, अनेरो काई वाछा नही ।।५२।।

कल्पवल्ली मझार, सवत् सोल छहोत्तरि ।
रास रचउ मनोहारि, रिद्धि ह्यो सघह धरि ।।५३।।

दुहा

जीवधर मुनि तप करी, पुहुतु सिव पद ठाम ।
त्रिभुवनकीरति इस वीनवइ, देयो तह्म गुणग्राम ।।६४।।
।।व।।

उक्त रास की प्रति जयपुर के तेरहपथी वडा मन्दिर के शास्त्र भंडार के एक गुटके मे सग्रहीत है। रास गुटके के पत्र १२९ से १५१ तक सग्रहीत है। प्रत्येक पत्र मे १९ पक्तिया तथा प्रति पक्ति मे ३२ अक्षर हैं। प्रति सवत. १६४३ पौष वदि ११ के दिन आसपुर के शान्तिनाथ चैत्यालय मे लिखी गयी थी। प्रति शुद्ध एव स्पष्ट है।

विषय—

प्रस्तुत रास मे जीवधर का चरित वर्णित है। जो पूर्णत रोमाञ्चक घटनाओ

से युक्त है। जीवन्धर अन्त मे मुनि बनकर घोर तपस्या करते हैं और निर्वाण प्राप्त करते हैं।

भाषा—

रचना की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव है। रास मे दूहा, चौपई, वस्तुबन्ध, छद ढाल एव रागो का प्रयोग किया गया है।

जम्बूस्वामीरास त्रिभुवनकीर्ति की दूसरी रचना है। कवि ने इसे सवत् १६२५ मे जवाछनगर के शान्तिनाथ चैत्यालय मे पूर्ण किया था जैसा कि निम्न अन्तिम पद्य मे दिया हुआ है—

> सवत् सोल पचवीसि जवाछ नयर मझार।
> भुवन शाति जिनवर तरिण, रच्यु रास मनोहार ॥१६॥

प्रस्तुत रास भी उसी गुटके के १६२ से १९० तक पत्रो मे लिपि बद्ध है।

विषय—

रास मे जम्बूस्वामी का जीवन चरित वर्णित है ये महावीर स्वामी के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली हैं। इनका पूरा जीवन आकर्षक है। ये श्रेष्ठि पुत्र थे अपार वैभव के स्वामी एवं चार सुन्दर स्त्रियो के पति थे। माता ने जितना अधिक ससार मे इन्हे फसाना चाहा उतना ही ये ससार से विरक्त होते गये और अन्त में एक दिन सबको छोड कर मुनि हो गये तथा घोर तपस्या करके निर्वाण लाभ लिया।

भाषा—

रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव है। वर्णन शैली अच्छी एव प्रभावक है। राजग्रही का वर्णन देखिये—

> देश मध्य मनोहर ग्राम, नगर राजग्रह उत्तम ठाम।
> गढ मढ मन्दिर पोल पगार, चउहटा हाट तणु नहिं पार ॥१३॥
>
> धनवत लोक दीसि तिहा घणा, सज्जन लोक तणी नही मणा।
> दुर्ज्जन लोक न दीसि ठाम, चोर उचट नही तिहा ताम ॥१४॥
>
> घरि घरि वाजित वाजि भग, घिर घिर नारी धरि मनि रग।
> घरि घरि उछव दीसि सार, एह सहू पुण्य तणु विस्तार ॥१५॥

१५. भट्टारक रत्नचन्द (प्रथम)

ये भ० सकलचन्द्र के शिष्य थे । इनकी अभी एक रचना 'चौबीसी' प्राप्त हुई है जो संवत् १६७६ की रचना है। इसमे २४ तीर्थंकर का गुणानुवाद है तथा अन्तिम २५ वें पद्य मे अपना परिचय दिया हुआ है । रचना सामान्यत अच्छी है—

अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है·—

सवत् सोल छोत्तरे कवित्त रच्या सघारे,
पचमीशु शुक्रवारे ज्येष्ठ वदि जान रे ।

मूलसघ गुणचन्द्र जिनेंन्द्र सकलचन्द्र,
भट्टारक रत्नचन्द्र बुद्धि गछ भाणरे ।

त्रिपुरो पुरो पि राज स्वतो ने तो अम्रराज,
भामोस्यो मोलखराज त्रिपुरो बखाणरे ।

पीछो छाजु ताराचद, छीतरवचद,
ताउ खेतो देवचद एहु की कल्याण रे ।।२५।।

१६. ब्रह्म अजित

ब्रह्म अजित सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। ये गोलशृंगार जाति के श्रावक थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह एव माता का नाम पीथा था। ब्रह्म अजित भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति के प्रशिष्य एव भट्टारक विद्यानन्दि के शिष्य थे।[1] ये ब्रह्मचारी थे और इसी अवस्था मे रहते हुए इन्होंने भृगुकच्छपुर (भडौच) के नेमिनाथ चैत्यालय मे हनुमच्चरित की समाप्ति की थी। इस चरित की एक प्राचीन प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सग्रहीत है। हनुमच्चरित मे १२ सर्ग हैं और यह अपने समय का काफी लोक प्रिय काव्य रहा है।

ब्रह्म अजित एक हिन्दी रचना 'हसागीत' भी प्राप्त हुई है। यह एक उपदेशात्मक अथवा शिक्षाप्रद कृति है जिसमे 'हस' (आत्मा) को संबोधित करते हुए ३७ पद्य हैं। गीत की समाप्ति निम्न प्रकार की है—

१. सुरेंद्रकीर्त्तिशिष्यविद्यानंद्यनगमदनैकपडित: कलाघर ।
स्तदीय देशनामवाप्यबोधमाश्रित्तो जितेंद्रियस्य भक्तित: ।।

रास हस तिलक एह, जो भावइ दढ चित्त रे हसा ।
श्री विद्यानदि उपदेसिउ, बोलि ब्रह्म अजित रे हसा ॥३७॥

हसा तू करि सयम, जेम न पडि ससार रे हसा ॥

ब्रह्म अजित १७ वी शताब्दि के विद्वान् सन्त थे ।

१७. आचार्य नरेन्द्रकीर्ति

ये १७ वीं शताब्दि के सन्त थे । भ० वादिभूषण एव भ० सकलभूषण दोनो ही सन्तो के ये शिष्य थे और दोनो की ही इन पर विशेष कृपा थी । एक बार वादिभूषण के प्रिय शिष्य ब्रह्म नेमिदास ने जब इनसे 'सगरप्रबन्ध' लिखने की प्रार्थना की तो इन्होने उनकी इच्छानुसार 'सगर प्रबन्ध' कृति को निबद्ध किया । प्रबन्ध का रचनाकाल स० १६४६ आसोज सुदी दशमी है । यह कवि की एक अच्छी रचना है । आचार्य नरेन्द्रकीर्त्ति की ही दूसरी रचना 'तीर्थंकर चौबीसना छप्पय' है । इसमे कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई परिचय नही दिया है । दोनो ही कृतिया उदयपुर के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत है ।

गोलशृंगार वशे नभसि दिनमणि र्वीरसिंहो विपश्चित् ।
भार्या पीथा प्रतीता तनुरूहविदितो ब्रह्म दीक्षाश्रितोऽभूत ॥

२ भट्टारक विद्यानन्दि वलात्कारगण—सूरत शाखा के भट्टारक थे ।

भट्टारक सम्प्रदाय पत्र स० १९४

तेह भवन माहि रह्या चोमास, महा महोत्सव पूगी आस ।
श्री वादिभूषण देशना सुधा पान, कीरति शुभमना ॥१९॥

शिष्य ब्रह्म नेमिदासज तणो, विनय प्रार्थना देखी घणी ।
सूरि नरेन्द्रकीरति शुभ रूप, सागर प्रबन्ध रचि रस कूप ॥२०॥

मूलसघ मडन मुनिराय, कलिकालि जे गणधर पाय ।
सुमतिकीरति गछपति अवदात,, तस गुरू बोधव जग विख्यात ॥२१॥

सकलभूषण सूरीश्वर जेह, कलि माहि जंगम तीरथ तेह ।
ते दोए गुरू पद कज मन धरि, नरेन्द्रकीरति शुभ रचना करी ॥२२॥

सवत सोलाछितालि सार,-आसोज सुदि दशमी बुधवार ।
सगर प्रबन्ध रच्यो मनरग, चिर नदो जा सायर गग ॥२३॥

१८. कल्याणकीर्ति

कल्याणकीर्त्ति १७ वी शताब्दी के प्रमुख जैन सन्त देवकीर्ति मुनि के शिष्य थे। कल्याणकीर्त्ति भीलोडा ग्राम के निवासी थे। वहा एक विशाल जैन मन्दिर था। जिसके ५२ शिखर थे और उन पर स्वर्ण कलश सुशोभित थे। मन्दिर के प्रागण मे एक विशाल मानस्तभ था। इसी मन्दिर मे बैठकर कवि ने चारुदत्त प्रबन्ध की रचना की थी। रचना सवत् १६९२ आसोज शुक्ला पचमी को समाप्त हुई थी। कवि ने उक्त वर्णन निम्न प्रकार किया है।

> चारूदत्त राजानि पुन्यि भट्टारक सुखकर सुखकर सोभागि अति विचक्षण।
> वादिवारण केशरी भट्टारक श्री पद्मनदि चरण रज सेवि हारि ॥१०॥
>
> ए सहु रे गछ नायक प्रणमि करि, देवकीरति मुनि निज गुरु मन्य धरी।
> धरि चित्त चरणे नमि 'कल्याण कीरति' इम भणि।
> चारूदत्त कुमर प्रबध रचना रचिमि आदर घणि ॥११॥
>
> राय देश मध्यि रे भिलोडउ वसि, निज रचनासि रे हरिपुरिनि हसी।
> हस अमर कुमारनि, तिहा धनपति वित्त विलसए।
> प्राशाद प्रतिमा जिन मति करि सुकृत साचए ॥१२॥
>
> सुकृत सचिरे व्रत बहु आचरि, दान महोछव रे जिन पूजा करि।
> करि उछव गान गध्रव चद्र जिन प्रसादए।
> बावन सिखर सोहामणा ध्वज कनक कलश विमालए ॥१३॥
>
> मडप मध्यि रे समवसरण सोहि, श्री जिनबिंव रे मनोहर मन मोहि।
> मोहि जन मन अति उन्नत मानस्थभ विसालए।
> तिहा विजयभद्र विख्यात सुन्दर जिन सासन रक्ष पायलये ॥१४॥
>
> तिहा चोमासि के रचना करि सोलवाणुगिरे १६९२: आसो अनुसरि।
> अनुसरि आसो शुक्ल पचमी श्री गुरुचरण हृदयधरि।
> कल्याणकीरति कहि सज्जन भणो सुणो आदर करि ॥१५॥

दूहा

> आदर ब्रह्म सघजीतणि विनयसहित सुखकार।
> ते देखि चारूदत्तनो प्रबध रच्यो मनोहर ॥१॥

कवि ने रचना का नाम 'चारुदत्तरास' भी दिया है। इसकी एक प्रति

जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है। प्रति सवत् १७३३ की लिखी हुई है।

कवि को एक और रचना 'लघु वाहुबलि वेल' तथा कुछ स्फुट पद भी मिले हैं। इसमे कवि ने अपने गुरु के रूप मे शान्तिदास के नाम का उल्लेख किया है। यह रचना भी अच्छी है तथा इसमे त्रोटक छन्द का उपयोग हुआ है। रचना का अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

भरतेस्वर आवीया नाम्यु निज वर शीस जी।
स्तवन करी इम जंपए, हूं किंकर तु ईस जी।

ईश तुमनि छोडी राज मझनि आपीउ।
इम कहीइ मदिर गया सुन्दर ज्ञान भुवने व्यापीउ।

श्री कल्याणकीरति सोममूरति चरण सेवक इम भणि।
शातिदास स्वामी बाहुबलि सरण राखु मझ तह्म तणि ॥९॥

१९. भट्टारक महीचन्द्र

भट्टारक महीचन्द्र नाम के तीन भट्टारक हो चुके हैं। इनमे से प्रथम विशालकीर्त्ति के शिष्य थे जिनकी कितनी ही रचनायें उपलब्ध होती है। दूसरे महीचद्र भट्टारक वादिचन्द्र के शिष्य थे तथा तीसरे भ० सहस्रकीर्त्ति के शिष्य थे। लवाकुश छप्पय के कवि भी सभवत: वादिचन्द्र के ही शिष्य थे। 'नेमिनाथ समवशरण विधि' उदयपुर के खन्डेलवाल मदिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है उसमे उन्होंने अपने को भ० वादिचन्द्र का शिष्य लिखा है।

श्री मूलसघे सरस्वती गच्छ जाणो,
वलातकार गण वखाणो।

श्री वादिचन्द्र मने आणो,
श्री नेमीश्वर चरण नमेसू ॥३२॥

तस पाटे महीचन्द्र गुरु थाप्यो,
देश विदेश जग वहु व्याप्यो।
श्री नेमीश्वर चरण नमेसू ॥३३॥

उक्त रचना के अतिरिक्त आपकी 'आदिनाथविनति' 'आदित्यव्रत कथा' आदि रचनायें और भी उपलब्ध होती हैं।

'लवाकुश छप्पय' कवि की सबसे बडी रचना है। इसमे छप्पय छन्द के ७० पद्य हैं। जिनमे राम के पुत्र लव एव कुश की जीवन गाथा का वर्णन है। भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती एव मराठी का प्रभाव है। रचना साहित्यिक है तथा उसमे घटनाओ का अच्छा वर्णन मिलता है। इसे हम खन्डकाव्य का रूप दे सकते हैं। कथा राम के लका विजय एव अयोध्या आगमन के वाद से प्रारम्भ होती है। प्रथम पद्य मे कवि ने पूर्व कथा का साराश निम्न प्रकार दिया है।

के अक्षौहनि कटक मेलि रघुपति रण चल्यो।
रावण रण भूमीय पड्यो, सायर जल छल्यो।

जय निसान बजाय जानकी निज घर आणि।
दशरथ सुत कीरति भुवनत्रय माहि बखानी।

राम लक्ष्मण एम जीतिने, नयरी अयोध्या आवया।
महीचन्द्र कहे फल पुन्य थिएडा, वहु परे वामया ॥१॥

एक दिन राम सीता बैठे हुए विनोद पूर्ण बातें कर रहे थे। इतने मे सीता ने अपने स्वप्न का फल राम से पूछा। इसके उत्तर मे राम ने उसके दो पुत्र होगे, ऐमी भविष्यवाणी की। कुछ दिनो बाद सीता का दाहिना नेत्र फडकने लगा। इससे उन्हे वहुत चिन्ता हुई क्योकि यही नेत्र पहिले जव उन्हे राज्यभिषेक के स्थान पर वनवास मिला था तब भी फड़का था। एक दिन प्रजा के प्रतिनिधि ने आकर राम के सामने सीता के सम्वन्व मे नगर मे जो चर्चा थी उसके विषय मे निवेदन किया। इसको सुन कर लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और उसने तलवार निकाल ली लेकिन राम ने बडे ही धैर्य के साथ सारी बातो को सुनकर निम्न निर्णय किया।

रामे वार्यो सदा रहो भ्राता तह्म मे छाना।
केहनो नहि छे वाकलोक अपवाद जनाह्ना।

सावु हुवु लोक नही कोई निश्चय जाने।
यद्वा तद्वा कर्यु तेज खल जन सहु मानें।

एमविचार करी तदा निंज अपवाद निवारवा।
सेनापति रथ जोडिने लइ जावो वन घालवा ॥७॥

सीता घनघोर वन मे अकेली छोड दी गई। वह रोई चिल्लाई लेकिन किसी ने कुछ न सुना। इतने मे पुंडरीक युवराज 'वज्रसघ' वहा आया। सीता ने अपना परिचय पूछने पर निम्न शव्दो मे नम्र निवेदन किया।

सीता कहे-सुन भ्रात तात तो जनकज हमारो।
भामडल मुझ भ्रात दियर लक्ष्मण भट सारो।

तेह तणो बड भ्रात नाथ ते मुझनो जानो।
जगमा जे विक्षात तेहनी माननी मानो।

एहवु वचन साभली कहे, वैहीन आव जु मुझ परे।
वहु महोत्सव आनद करी सीता ने आने घरे ॥१०॥

कुछ दिनो के बाद सीता के दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम लव एव कुश रखा गया। वे सूर्य एव चन्द्रमा के समान थे। उन्होने विद्याध्ययन एव शास्त्र सचालन दोनो की शिक्षा प्राप्त की। एक दिन वे बैठे हुए थे कि नारद ऋषि का वहा आगमन हुआ। लव कुश द्वारा राम लक्ष्मण का वृत्तान्त जानने की इच्छा प्रकट करने पर नारद ने निम्न शब्दो मे वर्णन किया।

कोण गाम कुण ठाम पूज्यते कहो मुझ आगल।
तेव रुषि कहे छे वात देश नामे छे कोशल।

नगर अयोध्या धनीवश इश्वाक मनोहर।
राज्य करे दशरथ चार सुत तेहना सुन्दर।

राज्य आप्पु जब भरत ने वनवास जथ पोरा मने।
सती सीतल लक्ष्मण समो सोल वरस दडक बने ॥२५॥

तव दशवदनो हरी रामनी राणि सीता।
युद्ध करीस जथया राम लक्ष्मण दो भ्राता ॥

हणुमत सुग्रीव घणा सहकारी कीधा।
के विद्याधर तना धनी ते साथे लीधा ॥

युद्ध करी रावण हणी सीता लई घर आवया।
महीचन्द्र कहे तेह पुन्य थी जगमाहि, जस पामया ॥२६॥

सीता परघर रही तेह थी थयो अपवादह।
रामे मूकी वने कीधो ते महा प्रमादह ॥

रोदन करे विलाप एकली जंगल जेहवे।
वज्रजघ नृप एह पुन्य थि आव्यो ते हवे ॥

भगनि करि घर लाव्यो तेहथि तुम्ह दो सूत थया।
भाग्ये एह पद पामया वज्रजघ पद प्रणमया ॥२७॥

के वशीभूत होकर तप कर रहा है। तपस्वी के पास जाकर कुमार ने कहा तपस्वी महाराज ! आपने सम्यक्-तप एव मिथ्या तप के भेद को जाने विना ही तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया है। इस लकडी को आप जला तो रहे है, लेकिन इसमे एक सर्प का जोडा अन्दर-ही-अन्दर जल रहा है। तपस्वी यह सुनकर बडा क्रुद्ध हुआ और उसने कुल्हाडी लेकर लकडी काट दी। लकडी काटने पर उसमे से आधे जले हुए एव सिसकते हुए सर्प एवं सर्पिणी निकले। कवि ने इसका सरल भाषा मे वर्णन किया है—

सुणि विरतात बोलियो जी कुमार।
एहु तपयुगी नवि तारणहार।।

एहु अज्ञान तप निति करै।
सुणि तहा तापसी बोलियो एम।।

चित मे कोध्र उपनो घणो।
कहो जी अज्ञान तप हम तणो केम ।।श्री०।।१३९।।

सुणि जिणवर तहा वोलियो जाणि ।
लोक तिथि जाणो जी अवधि प्रमाणि ।।

सुणि रे अज्ञानी हो तापसी।
वलै छै जी काष्ट माझ सर्प्पणी सर्प।

ते तो जी भेद जाण्यो नही।
कर्यो जी वृथा मन मे तुम्ह दर्प ।।श्री०।।१४०।।

करि अति कोप करि ग्रहो जी कुठार।
काठ तहा छेदि कीयो तिण छार।।

सर्पणी सर्प तहा निसर्या।
अर्ध जी दग्ध तहा भयो जी सरीर।।

आकुला व्याकुला वहु करै।
करि कृपा भाव जीणवर वरवीर ।।श्री०।।१४१।।

पार्श्वकुमार के यौवन प्राप्त करने पर माता-पिता ने उनसे विवाह करने का आग्रह किया, लेकिन उन्हे तो आत्मकल्याण अभीष्ट था, इसलिए वे क्यो इस चक्कर मे फसते। आखिर उन्होने जिन-दीक्षा ग्रहण करली और मुनि हो गये। एक दिन जब वे ध्यानमग्न थे, सयोगवश उधर से ही वह देव भी विमान से जा

शब्दो का प्रयोग हुआ है। यद्यपि छप्पय का मुख्य रस शान्त रस है लेकिन आधे से अधिक छंद वीर रस प्रधान है। शब्दो को अधिक प्रभावशील बनाने के लिये चल्यो, छल्यो, पामया, लाज्या, आव्यो, पाव्यो, पाड्या, चल्यो,नम्या, उपसम्या, बोल्या आदि क्रियाओ का प्रयोग हुआ है। "तुम" "हम" के स्थान पर तुह्म, अह्म का प्रयोग करना कवि को प्रिय है। डिंगल शैली के कुछ पद्य निम्न प्रकार।

रण निसाण बजाय सकल सैन्या तब मेली।
चढ्यो दिवाजे करि कटक करि दश दिश भेली॥
हस्ति तुरग मसूर भार करि शेषज शको।
खडगादिक हथियार देखि रवि शशि पण कप्यो॥
पृथ्वी आदोलित थई छत्र चमर रवि छादयो।
पृथु राजा ने चरे कह्यो, व्याघ्र राम तवे आवयो॥१५॥

× × × × ×

रू ध्या के असवार हणीगय वरनि घटा।
रथ की धाच कूचर हणी वली हयनी थटा॥
लव अ कुश युद्ध देख दशो दिशि नाठा जावे।
पृथुराजा बहु बढे लोहि पण जुगति न पावे॥
वज्र जघ नृप देखतो बल साथे भागो यदा।
कुल सील हीन केतो जिते पृथु रा पगे पड्यो तदा॥२ ॥

२०. ब्रह्म कपूरचन्द

ब्रह्म कपूरचन्द मुनि गुणचन्द्र के शिष्य थे। ये १७ वी शताब्दि के अन्तिम चरण के विद्वान् थे। अब तक इनके पार्श्वनाथरास एव कुछ हिंदी पद उपलब्ध हुये हैं। इन्होंने रास के अन्त मे जो परिचय दिया है, उसमे अपनी गुरु-परम्परा के अतिरिक्त आनन्दपुर नगर का उल्लेख किया है, जिसके राजा जसवन्तसिंह थे तथा जो राठौड जाति के शिरोमणि थे। नगर में ३६ जातिया सुखपूर्वक निवास करती थी। उसी नगर मे ऊ चे-ऊ चे जैन मन्दिर थे। उनमे एक पार्श्वनाथ का मन्दिर था। सम्भवत उसी मन्दिर मे बैठकर कवि ने अपने इस रास की रचना की थी।

पार्श्वनाथरास की हस्तलिखित प्रति मालपुरा, जिला टोंक (राजस्थान) के चौधरियो के दि० जैन मन्दिर के शास्त्र-भण्डार मे उपलब्ध हुई है। यह रचना एक गुटके मे लिखी हुई है, जो उसके पत्र १४ से ३२ तक पूर्ण होती है। रचना राजस्थानी-भाषा मे निबद्ध है, जिसमे १६६ पद्य है। "रास" की प्रतिलिपि बाई

रत्नाई की शिष्या श्राविका पारवती गगवाल ने सवत् १७२२ मिती जेठ बुदी ५ को समाप्त की थी।

श्रीमूल जी सघ बहु सरस्वती गछि।
भयौ जी मुनिवर बहु चारित स्वछ ॥

तहा श्री नेमचन्द गछपति भयो।
तास कै पाट जिम सौमे जी भाण ॥

श्री जसकीरति मुनिपति भयो।
जाणौ जी तर्क अति शास्त्र पुराण ॥श्री०॥१५९॥

तास को शिष्य मुनि अधिक (प्रवीन)।
पच महाव्रत स्यो नित लीन ॥

तेरह विधि चारित धरै।
व्यजन कमल विकासन चन्द ॥

ज्ञान गौ इम जिसौ अवि ······ · · ·ले।
मुनिवर प्रगट सुमि श्री गुणचन्द ॥श्री०॥१६०॥

तासु तणु सिपि पडित कपुर जी चन्द।
कीयो रास चिति धरिवि आनद ॥

जिणगुण कहु मुझ अल्प जी मति।
जसि विधि देख्या जी शास्त्र-पुराण ॥

बुधजन देखि को मति हसै।
तैसी जी विधि मे कीयौ जी वखाण ॥श्री॥ १६१॥

सोलासै सत्ताणवै मासि वैसाखि।
पचमी तिथि सुभ उजल पाखि ॥

नाम नक्षत्र आद्रा भलो।
वार वृहस्पति अधिक प्रधान ॥

रास कीयो वामा सुत तणो।
स्वामी जी पारसनाथ के थान ॥श्री०॥१६२॥

अहो देस को राजा जी जाति राठोड।
सकल जी छत्री याके सिरिमोड ॥

किम रे तोरण तम्हें आविया, करि अमस्यु घणो नेहन रे।
पशुअ देखी ने पाछा वल्या, स्यु दे विमास्यु मन रोहन रे ॥२॥

इम नही कीजे रुडा न होला, तम्हे अति चतुर सुजाणन रे।
लोकह सार तन कीजीये, छेह न दीजिये निरवाणिन रे ॥३॥

नेमिगीत

कवि को अब तक जो ११ कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं उनमे से कुछ के नाम निम्न प्रकार है—

१. मरकलडागीत
२. नेमिगीत
३. नेमीश्वर गीत
४. लालपछेवडी गीत
५ गुरुगीत

२५. विद्यासागर

विद्यासागर भ० शुभचन्द्र के गुरु भ्राता थे जो भट्टारक अभयचन्द्र के शिष्य थे। ये बलात्कारगण एव सरस्वती गच्छ के साधु थे। विद्यासागर हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। इनकी अब तक (१) सोलह स्वप्न, (२) जिन जन्म महोत्सव, (३) सप्तव्यसनसवैय्या, (४) दर्शनाष्टाग, (५) विषापहार स्तोत्र भाषा, (६) भूपाल स्तोत्र भाषा, (७) रविव्रतकथा (८) पद्मावतीनीवीनति एव (९) चन्द्रप्रभनीवीनती ये ९ रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इन्होने कुछ पद भी लिखे हैं जो भाव एव भाषा की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। यहा दो रचनाओ का परिचय दिया जा रहा है।

जिन जन्म महोत्सव षट् पद मे तीर्थंकर के जन्म पर होने वाले महोत्सव का वर्णन किया गया है। रचना मे केवल १२ पद्य है जो सवैय्या छन्द मे हैं। रचनाकाल का कोई उल्लेख नही मिलता। रचना का प्रथम पद निम्न प्रकार है—

श्री जिनराज नो जन्म जाणी शुरराज ज आवे।
वात वयणे कीर सार श्वेत अैरावण ल्यावे ॥

प्रति वयणें वसुदत दत दंते अेक सरोवर।
सरोवर प्रति पचवीस कमलनि सोहे सुदर ॥

बिना अपराध ही राम द्वारा सीता को छोड देने की बात सुनकर लव कुश बडे क्रोधित हुए और उन्होने राम से युद्ध करने की घोषणा कर दी। सीता ने उन्हे बहुत समझाया कि राम लक्ष्मण बडे भारी योद्धा है, उनके साथ हनुमान, सुग्रीव एव विभीषण जैसे वीर हैं, उन्होने रावण जैसे महापराक्रमी योद्धा को मार दिया है इसलिये उनसे युद्ध करने की आवश्यकता नही है लेकिन उन्होने माता की एक बात न सुनी और युद्ध की तैयारी कर दी। लाखो सेना लेकर वे अयोध्या की ओर चले। साकेत नगरी के पास जाने पर पहिले उन्होने राम के दरबार मे अपने एक दूत को भेजा। लक्ष्मण और दूत मे खूब वादविवाद हुआ। कवि ने इसका अच्छा वर्णन किया है। इसका एक वर्णन देखिये।

दूत बात सामलि कोपे कप्यो ते लक्ष्मण,
एह बल आव्यो कोण लेखवे नहि हमने पण।
रावण मय मार्यो तेह थिये कुण अधिको,
वज्रजघते कोण कहे दूत ते छे को॥
दूत कहे रे सामलो लव कुश नो मातुलो,
जगमा जेहनो नाम छे जाने नहि केम वातुलो ॥३६॥

दोनो सेनाओ मे घनघोर युद्ध हुआ लेकिन लक्ष्मण की सेना उन पर विजय प्राप्त न कर सकी। अन्त मे लक्ष्मण ने चक्र आयुध चलाया लेकिन वह भी उनकी प्रदक्षिणा देकर वापिस लक्ष्मण के पास ही आ गया। इतने मे ही वहा नारद ऋषि आ गये और उन्होने आपसी गलत फहमी को दूर कर दिया। फिर तो लव कुश का अयोध्या मे शानदार स्वागत हुआ और सीता के चरित्र की अपूर्व प्रशसा होने लगी। विभीषण आदि सीता को लेने गये। सीता उन्हे देखकर पहिले तो बहुत क्रोधित हुई लेकिन क्षमा मागने के पश्चात् उन्होने उनके साथ अयोध्या लौटने की स्वीकृति दे दी। अयोध्या आने पर सीता को राम के आदेशानुसार फिर अग्नि परीक्षा देनी पडी जिसमे वह पूर्ण सफल हुई। आखिर राम ने सीता से क्षमा मागी और उससे घर चलने के लिये कहा लेकिन सीता ने साध्वी बनने का अपना निश्चय प्रकट किया और सत्यभूषण केवली के समीप आर्यिका बन गई तथा तपस्या करके स्वर्ग मे चली गई। राम ने भी निर्वाण प्राप्त किया तथा अन्त मे लव और कुश ने भी मोक्ष लाभ किया।

भाषा

महीचन्द्र की इस रचना को हम-राजस्थानी डिंगल भाषा की एक कृति कह सकते हैं। डिंगल की प्रमुख रचना कृष्ण रुक्मिणी वेलि के समान है इसमे भी

रहा था। पार्श्व को तपस्या करते हुए देखकर उससे पूर्व–भव का वैर स्मरण हो आया और उसने बदला लेने की दृष्टि से मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ कर दी। वे सर्प-सर्पिणी, जिन्हे बाल्यावस्था मे पार्श्वकुमार ने बचाने का प्रयत्न किया था, स्वर्ग मे देव–देवी हो गये थे। उन्होने जब पार्श्व पर उपसर्ग देखा, तब ध्यानस्थ पार्श्वनाथ पर सर्प का रूप धारण कर अपने फण फैला दिये। कवि ने इसका सक्षिप्त वर्णन किया किया है—

> वन मे जी आइ धर्यो जिण (ध्यान)।
> थम्यो जी गगनि सुर तणो जी विमान॥
>
> पूरव रिपु अधिक तहा कोपयो।
> करे जी उपसर्ग जिण नै बहु आइ॥
>
> की वृष्टि तहा अति करै।
> तहा कामनी सहित आयो अहिराइ॥श्री०॥१५३॥
>
> वेगि टाल्या उपसर्ग अस (जान)।
> जिण जी ने उपनो केवलज्ञान॥

२१. हर्षकीर्त्ति

हर्षकीर्त्ति १७ वी शताब्दि के कवि थे। राजस्थान इनका प्रमुख क्षेत्र था। इस प्रदेश मे स्थान स्थान पर विहार करके साहित्यिक एव सांस्कृतिक जागृति उत्पन्न किया करते थे। हिन्दी के ये अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी चतुर्गति वेलि, नेमिनाथ राजुल गीत, नेमीश्वरगीत, मोरडा, कर्महिंडोलना, की भाषा छहलेश्याकवित्त, आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इन सभी कृतियों राजस्थानी है। इनमें काव्यगत सभी गुण विद्यमान है। ये कविवर बनारसीदास के समकालीन थे। चतुर्गति वेलि को इन्होंने संवत् १६८३ मे समाप्त किया था। कवि की कृतियां राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में अच्छी संख्या में मिलती हैं जो इनकी लोकप्रियता का द्योतक है।

२२. भ० सकलभूषण

सकलभूषण भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य थे तथा भट्टारक सुमतिकीर्ति के गुरु भ्राता थे। इन्होंने संवत् १६२७ में उपदेशरत्नमाला की रचना की थी जो संस्कृत की अच्छी रचना मानी जाती है। भट्टारक शुभचन्द्र को इन्होंने पाण्डवपुराण एव करकण्डुचरित्र की रचना में पूर्ण सहयोग दिया था जिसका शुभचन्द्र ने स्वयं

ग्रन्थो मे वर्णन किया है। अभी तक इन्होने हिन्दी मे क्या क्या रचनाये लिखी थी, इसका कोई उल्लेख नही मिला था, लेकिन आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर के एक गुटके मे इनको लघु रचना 'सुदर्शन गीत,' 'नारी गीत' एव एक पद उपलब्ध हुये है। सुदर्शनगीत मे सेठ सुदर्शन के चरित्र की प्रशसा का गई है। नारी गीत मे स्त्री जाति से ससार मे विशेष अनुराग नही करने का परामर्श दिया गया है। सकलभूषण की भाषा पर गुजराती का प्रभाव है। रचनाए अच्छी है एव प्रथम बार हिन्दी जगत के सामने आ रही है।

२३. मुनि राजचन्द्र

राजचन्द्र मुनि थे लेकिन ये किसी भट्टारक के शिष्य थे अथवा स्वतन्त्र रूप से विहार करते थे इसकी अभी कोई जानकारी प्राप्त नही हो सकी है। ये १७वी शताब्दि के विद्वान थे । इनकी अभी तक एक रचना 'चपावती सील 'कल्याणक' ही उपलब्ध हुई है जो सवत् १६८४ मे समाप्त हुई थी। इस कृति की एक प्रति दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर उदयपुर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। रचना मे १३० पद्य हैं। इसके अन्तिम दो पद्य निम्न प्रकार है—

> सुविचार धरी तप करि, ते ससार समुद्र उत्तरि।
> नरनारी साभलि जे रास, ते सुख पामि स्वर्ग निवास ॥१२६॥
>
> सवत सोल चुरासीयि एह, करो प्रबन्ध श्रावण वदि तेह।
> तेरस दिन आदित्य सुद्ध वेलावही, मुनि राजचद्र कहि हरखज लहि ॥१३०॥
>
> इति चपावती सील कल्याणक समाप्त ॥

२४. ब्र० धर्मसागर

ये भ० अभयचन्द्र (द्वितीय) के शिष्य थे तथा कवि के साथ साथ सगीतज्ञ भी थे। अपने गुरु के साथ रहते और विहार के अवसर पर उनका विभिन्न गीतो के द्वारा प्रशसा एव स्तवन किया करते। अब तक इनके ११ से अधिक गीत उपलब्ध हो चुके है। जो मुख्यत नेमिनाथ एव भ० अभयचन्द्र के स्तवन मे लिखे गये है। नेमि एव राजुल के गीतो मे राजुल के विरह एव सुन्दरता का अच्छा वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिये—

> दूखडा लोउ रे ताहरा नामना, बलि वलि लागु छु पायनरे।
> वोलडो घोरे मुझने नेमजी, निठुर न थइये यादव रायनरे ॥१॥

नाम जसवतसिंघ तसु तणो ।
तास आनदपुर नगर प्रधान ।।

पोणि छत्तीस लीला करैं ।
सोभै जी जैसे हो इन्द्र विमान ।।श्री०।।१६३।।

सोभौ जी तहा जीण भवण उत्त ग ।
मडप वेदी जी अधिक अमग ।।

जिण तणा विब सोभै भला ।
जो नर वदे मन वचकाइ ।।

दुख कलेस न सचरे ।
तीस घरा नव निधि थिति पाइ ।।श्री०।।१६४।।

इस रास की रचना सवत् १६९७, वैशाख सुदी ५ के दिन समाप्त हुई थी, जैसा कि १६२ वें पद्य मे उल्लेख आया है ।

रास मे पार्श्वनाथ के जीवन का पद्य-कथा के रूप मे वर्णन है । कमठ ने पार्श्वनाथ पर क्यो उपसर्ग किया था, इसका कारण बताने के लिए कवि ने कमठ के पूर्व-भव का भी वर्णन कर दिया है । कथा में कोई चमत्कार नही है । कवि को उसे अति सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करना था सम्भवत , इसीलिए उसने किसी घटना का विशेष वर्णन नही किया ।

पार्श्वनाथ के जन्म के समय माता-पिता द्वारा उत्सव किया गया । मनुष्यों ने ही नही स्वर्ग से आये हुये देवताओ ने भी जन्मोत्सव मनाया—

अहो नगर मे लोक अति करे जी उछाह ।
खर्चे जी द्रव्य मनि अधिक उमाह ।।

घरि घरि मगल अति घणा,
घरि घरि गावे जी गीत सुचार ।।

सब जन अधिक आनदिया ।
धनि जननी तसु जिण अवतार ।।श्री०।।१२४।।

पार्श्वनाथ जब बालक ही थे । तभी एक दिन बन-क्रीडा के लिए अपने साथियों के साथ गये । वन मे जाने पर देखा कि एक तपस्वी पचाग्नि तप तप रहा है और अपनी देह को सुखा रहा है । बालक पार्श्व ने, जो मति, श्रुत एव अवधि-ज्ञान के धारी थे, कहा-यह तपस्वी मिथ्याज्ञान

कमलनि कमलनि प्रति भला कवल सवासो जाणीये।
प्रति कमले शुभ पाखडी वसुधिक सत वखाणीये ॥१॥

२६. भ० रत्नचन्द्र (द्वितीय)

भ० अभयचन्द्र की परम्परा मे होने वाले भ० शुभचन्द्र के ये शिष्य थे तथा ये अपने पूव गुरुओ के समान हिन्दी प्रेमी सन्त थे। अब तक इनकी चार रचनाये उपलब्ध हो चुकी है जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. आदिनाथगीत
२. बलिभद्रनुगीत
३. चितामणिगीत
४. बावनगजागीत

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त इनके कुछ स्फुट गीत एव पद भी उपलब्ध हुये हैं। 'बावनगजागीत' इनकी एक ऐतिहासिक कृति है जिसमे इनके द्वारा सम्पन्न चूलगिरि की ससघ यात्रा का वर्णन किया गया है। यह यात्रा सवत् १७५७ पौष सुदि २ मगलवार के दिन सम्पन्न हुई थी।

'सवत् सतर सतवनो पोस सुदि बीज भौमवार रे।
सिद्ध क्षेत्र अति सोभतो तेति महि मानो नहि पार रे ॥१४॥

श्री शुभचद्र पट्टे हवी, परखा वादि मद भंजे रे।
रत्नचन्द्र सुरिवर कहे भव्य जीव मन रंजे रे ॥१५॥

चितामणि गीत मे अकलेश्वर के मन्दिर मे विराजमान पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है।

रत्नचन्द्र साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। ये १८वी शताब्दि के द्वितीय-तृतीय चरण के सन्त थे।

२७. विद्याभूषण

विद्याभूषण भ० विश्वसेन के शिष्य थे। ये सवत् १६०० के पूर्व ही भट्टारक बन गये थे। हिन्दी एव सस्कृत दोनो के ही ये अच्छे विद्वान् थे। हिन्दी भाषा मे निबद्ध अब तक इनकी निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी है—

संस्कृत ग्र थ

१. लक्षण चौबीसी पद[1]
१. बारहसैचौतीसो विधान

---

१. देखिये ग्र थ सूची भाग—३ पृष्ठ संख्या २६४

२. द्वादशानुप्रेक्षा[२]
३. भविष्यदत्त रास

भविष्यदत्त रास इनको सबसे अच्छी रचना है जिसका परिचय निम्न प्रकार है—

भविष्यदत्त के रोमाञ्चक जीवन पर जैन विद्वानो ने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी राजस्थानी आदि सभी भाषाओं मे पचासो कृतिया लिखी है। इसकी कथा जनप्रिय रही है और उसके पढने एव लिखने मे विद्वानो एव जन साधारण ने विशेष रुचि ली है। रचना स्थान सोजत्रा नगर मे स्थित सुपार्श्वनाथ का मन्दिर था। रास का रचनाकाल सवत् १६०० श्रावण सुदी पञ्चमी है। कवि ने उक्त परिचय निम्न छन्दो मे दिया है—

काष्ठासघ नदी तट गच्छ, विद्या गुण विद्याइ स्वछ।
रामसेन वंसि गुणनिला, धरम सनेहू आगुर भला ॥४६७॥

विमलसेन तस पाटि जाणि, विशालकीर्त्ति हो आवुध जाण।
तस पट्टोधर महा मुनीश, विश्वसेन सूरिवर जगदीस ॥४६८॥

सकल शास्त्रु तणु भडार, सर्व दिगबरनु शृगार।
विश्वसेन सूरीश्वर जाण, गछ जेहनो मानि आण ॥४६९॥

तेह तणु दासानुदास, सूरि विद्याभूषण जिनदास।
आणी मन माँहि उल्हास, रचीन्द्र रास शिरोमणिदास ॥४७०॥

महानयर सोजत्रा ठाम, त्याह सुपास जिनवरनु धाम।
भट्टेरा ज्ञाति अभिराम, नित नित करि धर्मना काम ॥४७१॥

सवत सोलसि श्रावण मास, सुकल पचमी दिन उल्हास।
कहि विद्याभूषण सूरी सार, रास ए नदु कोड वरीस ॥४७२॥

भाषा

रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती भाषा का प्रभाव है।

छन्द

इसमें दूहा, चउपई, वस्तुवध, एव विभिन्न ढाल है।

२. भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या—२७१

प्राप्ति स्थान—रास की प्रति दि० जैन मन्दिर बडा तेरह पथियो के शास्त्र भडार के एक गुटके मे सग्रहीत है। गुटका का लेखन काल स० १६४३ से १६६१ तक है। रास का लेखनकाल स० १६४३ है।

२८. ज्ञानकीर्ति

ये वादिभूषण के शिष्य थे। आमेर के महाराजा मानसिह (प्रथम) के मत्री नानू गोधा की प्रार्थना पर इन्होने 'यशोधर चरित्र' काव्य की रचना की थी।[1] इस कृति का रचनाकाल सवत् १६५९ है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भडार मे सग्रहीत है।

श्वेताम्बर जैन संत

अब तक जितने भी सन्तो की साहित्य-सेवाओं का परिचय दिया गया है, वे सब दिगम्बर सन्त थे, किन्तु राजस्थान मे दिगम्बर सन्तो के समान श्वेताम्बर सन्त भी सैंकडो की सख्या मे हुए हैं—जिन्होने संस्कृत, हिन्दी एव राजस्थानो कृतियो के माध्यम से साहित्य की महती सेवा की थी। श्वेताम्बर कवियो की साहित्य सेवा पर विस्तृत प्रकाश कितनी ही पुस्तको मे डाला जा चुका है। राजस्थान के इन सन्तो की साहित्य सेवाओ पर प्रकाश डालने का मुख्य श्रेय श्री अगरचन्द जी नाहटा, डा० हीरालाल जी माहेश्वरी प्रभृति विद्वानो को है जिन्होने अपनी पुस्तकों एवं लेखो के माध्यम से उनकी विभिन्न कृतियो का परिचय दिया है। प्रस्तुत पृष्ठो मे श्वेताम्बर समाज के कतिपय सन्तो का परिचय उपस्थित किया जा रहा है.—

२९. मुनि सुन्दरसूरि

ये तपागच्छीय साधु थे। संवत् १५०१ मे इन्होने 'सुदर्शनश्रेष्ठिरास' की रचना की थी। कवि की अब तक १८ से भी अधिक रचनायें प्राप्त हो चुकी है। जिनमे 'रोहिणीय प्रबन्धरास', जम्बूस्वामी चौपई', 'वज्रस्वामी चौपई', अभय-

---

1. इति श्री यशोधरमहाराजचरित्रे भट्टारकश्रीवादिभूषण शिष्याचार्य श्री ज्ञानकीतिविरचिते राजाधिराज महाराज मानसिह प्रधानसाह श्री नानूनामाकिते भट्टारकश्रीअभयरुच्यादि दीक्षाग्रहण स्वर्गादि प्राप्त वर्णनो नाम नवमः सर्गः।

कुमार श्रेणिकरास' के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं। श्री अगरचन्द जी नाहटा के अनुसार मुनि सुन्दर सूरि के स्थान पर मुनिचन्द्रप्रभ सूरि का नाम मिलता है।[1]

३०. महोपाध्याय जयसागर

जयसागर खरतरगच्छाचार्य मुनि राजसूरि के शिष्य थे। डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने इनका सवत् १४५० से १५१० तक का समय माना है[2] जब कि डा० प्रेमसागरजी ने इन्हे सवत् १४७८-१४९५ तक का विद्वान माना है।[3] ये अपने समय के अच्छे साहित्य निर्माता थे। राजस्थानी भाषा मे निबद्ध कोई ३२ छोटी बडी कृतिया अब तक इनकी उपलब्ध हो चुकी है। जो प्राय: स्तवन, वीनती एव स्तोत्र के रूप मे है। सस्कृत एव प्राकृत के भी ये प्रतिष्ठित विद्वान थे। 'सन्देह दोहावाली पर लघुवृत्ति', उपसर्गहरस्तोत्रवृत्ति, विज्ञप्ति त्रिवेणी, पर्वरत्नावलि कथा एव पृथ्वीचन्दचरित्र इनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

३१. वाचक मतिशेखर

१६वी शताब्दि के प्रथम चरण के श्वेताम्बर जैन सन्तो मे मतिशेखर अपना विशेष स्थान रखते हैं।[4] ये उपकेशगच्छीय शीलसुन्दर के शिष्य थे। इनकी अब तक सात रचनायें खोजी जा चुकी है जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. धन्नारास (स० १५१४)
२. मयणरेहारास (स० १५३७)
३ नेमिनाथ बसत फुलडा
४. कुरगडु महर्षिरास
५ इलापुत्र चरित्र गाथा
६ नेमिगीत
७ बावनी

३२. हीरानन्दसूरि

ये पिप्पलगच्छ के श्री वीरप्रभसूरि के शिष्य थे।[5] हिन्दी के ये अच्छे कवि थे।

---

१ परम्परा—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ सख्या ५६
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ सख्या २४८
३. हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि—पृष्ठ सख्या ५२
४. राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ स० २५१
५ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ संख्या ५४

अब तक इनकी वस्तुपाल तेजपाल रास (सं० १४८४) विद्याविलास पवाडो (वि०स० १४८५) कलिकाल रास (वि० स० १४८६) दशार्णभद्ररास, जबूस्वामी-वीवाहला (१४९५)और स्थूलिभद्र बारहमासा आदि महत्वपूर्ण रचनाये उपलब्ध हो चुकी हैं। विद्याविलास का मंगलाचरण देखिये जिसमे ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्व नाथ, महावीर एव देवी सरस्वती को नमस्कार किया गया है—

> पहिलु प्रणमीय पढम जिणेसर सत्तु जय अवतार।
> हथिणाउरि श्रीं शांति जिणेसर उज्जति निमिकुमार।
>
> जीराउलिपुरि पास जिणेसर, साचउरे वर्द्धमान।
> कासमीर पुरि सरसति सामिणि, दिउ मुझ नईं वरदान॥

३३. वाचक विनयसमुद्र

ये उपकेशीयगच्छ वाचक हर्ष समुद्र के शिष्य थे। इनका रचना काल सवत् १५८३ से १६१४ तक का है। इनकी बीस रचनाओ की खोज की जा चुकी है। इनके नाम निम्न प्रकार है—

१	विक्रम पचदंड चौपई	(स० १५८३)	पद्य संख्या ५९३
२.	आराम शोभा चौपई	,,	पद्य सख्या २४८
३.	अम्बड चौपई	१५९९	
४.	मृगावती चौपई	१६०२	
५	चित्रसेन पद्मावतीरास	१६०४	पद्य संख्या २४७
६	पद्मचरित्र	१६०४	
७	शीलरास	१६०४	पद्य सख्या ४४
८	रोहिणीरास	१६०५	
९.	सिंहासनबत्तीसी	१६११	
१०.	पार्श्वनाथस्तवन	,,	पद्य सख्या ३९
११.	नलदमयन्तीरास	१६१४	,, ३०५
१२.	सग्राम सूरि चौपई	,,	
१३.	चन्दनबालारास	,,	
१४	नमिराजर्षिसधि	,,	पद्य सख्या ६९
१५.	साधु वन्दना	,,	,, १०२
१६	ब्रह्मचरी गाथा	,,	५५

१. देखिये परम्परा—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ स० ६६–७६

१७	सीमधरस्तवन	,,	४१
१८.	शत्रुंजय आदिदेवस्तवन		२७
१९	पार्श्वनाथरास		,,
२०	इलापुत्र रास		,,

३४. महोपाध्याय समयसुन्दर

'समयसुन्दर' का जन्म साचोर मे हुआ था। इनका जन्म संवत् १६१० के लगभग माना जाता है। डा० माहेश्वरी ने इसे सं० १६२० का माना है। इनकी माता का नाम लीलादे था। युवावस्था मे इन्होंने दीक्षा ग्रहण करली और फिर काव्य, चरित, पुराण, व्याकरण छन्द, ज्योतिष आदि विषयक साहित्य का पहिले तो अध्ययन किया और फिर विविध विषयो पर रचनाएँ लिखी। संवत् १६४१ से आपने लिखना प्रारम्भ किया और संवत् १७०० तक लिखते ही रहे। इस दीर्घकाल मे इन्होने छोटी–बड़ी सैकडो ही कृतियां लिखी थीं। समय सुन्दर राजस्थानी साहित्य के अभूतपूर्व विद्वान् थे, जिनकी कहावतो में भी प्रशंसा वर्णित है।

उक्त कुछ सन्तो के अतिरिक्त संघकलश, ऋषिवर्द्धनसूरि, पुण्यनन्दि, कल्याणतिलक, क्षमा कलश, राजशील, वाचक धर्मसमुद्र, पार्श्वचन्द्र सूरि, वाचक विनयसमुद्र, पुण्य सागर, साधुकीर्त्ति, विमलकीर्त्ति, वाचक गुणरत्न, हेमनन्दि सूरि, उपाध्याय गुण विनय, सहजकीर्त्ति, जिनहर्ष, व जिन समुद्रसूरि प्रभृति पचासों विद्वान् हुए हैं जो महान् व्यक्तित्व के धनी थे, तथा अपनी विभिन्न कृतियों के माध्यम से जिन्होने साहित्य की महती सेवा की थी। देश मे साहित्यिक जागरूकता उत्पन्न करने मे एवं विद्वानो को एक निश्चित दिशा पर चलने के लिए भी उन्होंने प्रशस्त मार्ग का निर्देश किया था।

कतिपय लघु कृतियां और उद्धरण

भट्टारक सकलकीर्त्ति (स० १४४३-१४९९)

सार सीखामणि रास (पृष्ठ सख्या १-२१/१७)

प्रणमवि जिणवर वीर, सीखामणि कहिसु ।
समरवि गोतम धीर, जिणवाणी पभणेसु ।।१।।

लाख चुरासी माहि फिर तु, मानव भव लीधु कुलवतु ।
इन्द्री आयु निरामय देह, बुधि बिना विफल सहु एह ।।२।।

एक मना गुरु वाणि सुणीजि, बुद्धि विवेक सही पामीजि ।
पढउ पढावु आगम सार, सात तत्व सीखु सविचार ।।
पढउ कुशास्त्र म काने सुणु, नमोकार दिन रयणीय गुणु ।।३।।

एक मना जिनवर आराधु, स्वर्ग मुगति जिन हेला साधु ।
जाख सेष जे बीजा देव तिह तणी नवि कीजे सेव ।।४।।

गुरु निर्ग्रथ एक प्रणमीजि, कुगुरु तणी नवि सेवा कीजि ।
धर्मवंत नी सगति करु, पापी सगति तम्हे परिहरु ।।५।।

जीव दया एक धर्म करीजि, तु निश्चि ससार तरीजि ।
श्रावक धर्म करु जगिसार, नहि भुल्यु तम्हे सयम भार ।।६।।

धर्म प्रपच रहित तम्हे करु, कुधर्म सवे दूरि परिहरु ।
जीवत माइ बाप सु नेह, धर्म करावु रहित सदेह ।।७।।

मूया पूठि जै काई कीजि, ते सहूइ फोकि हारीजि ।
दृढ समकित पालु जगिसार, मूढ पणु मूकु सविचार ।।८।

रोग क्लेश उप्पना जाणी, धर्म करावु शकति प्रमाणी ।
मडल पूछ कहि नवि कीजि, करम तणा फल नवि छूटीजि ।।९।।

आव्यइ मरण तम्हे दृढ होज्यो, दीक्ष्या अणसण वन्हि लेयो ।
धर्म करी निर्फल मनमागु, मारगि मुगति तणि तम्हे लागु ।।१०।।

कुलि आव्यइ मथ्यात न कीजइ सका सवि टाली घालीजि ।
जे समकित पालि नरनार, ते निश्चि तिरसि ससार ॥११॥
ये मिथ्यात घणेरु करेसि, ते ससार घणु बूडेसि ॥

—वस्तु—

जीव राखु जीव राखु काय छह भेद ।
असीय लक्ष चिहु अगली एक चित्त परणाम आणीइ ।
चालत बिसत सूयता जीव जतु सठाण जाणीय ॥
जे नर मन कोमल करी, पालि दया अपार ।
सार सौख सवि भोगवी, ते तिरसि संसार ॥

—ढाल बीजी—

जीव दया दृढ पालीइए, मन कोमल कीजि ।
आप सरीखा जीव सवे, मन माहि धरीजइ ॥

नाहण धोयण काज सवे, पाणी गली करु ।
अणगल नीर न जडीलीइए दातण मन मोडु ॥

गाढि घाइ न मारीइए सवि चुपद जाणु ।
कणसल कण मन वणज करु, मन जिम वा आणु ॥

पसूय गाढू नवि बांधीइए, नवि छेदि करीजि ।
मानउ पहिरु लोभ करी, नवि भार करीजि ॥

लहिणि देवि काज करी, लाघणि म करावु ।
च्यार हाथ जोईय भूमि, तम्हे जाउ आवु ॥

फासू आहार जामिलु, मन आफणी रांधु ।
अणीठु मन तम्हे करु मन आयुध साधु ॥

लाकड न विकयावीइए नाह्लाम चडावु ।
सगा तणा वीवाह सही, म करु म करावु ॥

लोह मधु विप लाख ढोर विवसो छाडवु ।
मिण महूजा कद मूल माखण मत वावु ॥

कंटोल सावू पान धाहि घाणी नवि कीजइ ।
खटकसाल हथीयार आगि माग्या नवि दीजि ॥

नारी बालक रीस करी कातर मन मारु ।
तिल विट जल नवि घालीइए मूया मन सारु ।।

झूठा वचन न बोलीइए करकस परिहरु ।
मरम म बोलु किहि तणा ए चाडी मन करु ।।

धर्म करता न वारीइए नवि पर नदीजि ।
परगुण ढाकी आप तणा गुण नवि बोलीजइ ।।

नालजथाई न बोलीइए हासु मन करु ।
आलन दीजि काणी परि नवि दूषण धरु ।।

अप्रीछय नवि बोलिइए नवि बात करीजइ ।
गाल न दीजि वचन सार मीठु बोलीजि ।।

परिधन सवि तम्हे परिहरु ए चोरी नावे कीजइ ।
चोरी आणी वस्तु सही मूलि नवि लीजि ।

अधिक लेई निकीणीय परि उछु मन आलु ।
सखर विसाणा माहि सही निखर मन घालु ।।

थापणि मोसु परिहरुए पडीउ मन लेयो ।
कूडुं लेखुं मन करुए मन परत्यह कीयो ।।

घरनारी विण नारि सवे माता सभी जाणु ।
परनारी सोभाग रूप मन हीयडु आणु ।।

परनारी सु बात गोठि सगति मन करु ।
रूप नरीक्षण नारि तणु वेश्या परिहरू ।।

परिग्रह संख्या तम्हे करुए मन पसर निवारु ।
नाम विना नवि पुण्य हुइ हुइ पाप अपारु ।

—वस्तु—

तप तपीजइ तप तपीजइ भेद छि बार ।
करम रासि इंधण अग्नि स्वर्ग मुगति पग थीय जाणु ।
तप चिंतामणि कलपतरु वस्य पंच इंद्रीय आणु ।
जे मुनिवर सकति करी तप करेसि घोर ।
मुगति नारि वरसि सही करम हणीय कठोर ।।

—अथ ढाल त्रीजी—

देश दिशानी संख्या करु, दूर देश गमन परिहरु ।
जिरिण नयर धर्म्म नवि कीजि, तिरिण नयर वासु न वसीजि ।

देश वत्त तम्हे उठी लेयो, गमन तणी मरयाद करेयो ।
दूषण सहित भोग तम्हे टालु, कदमूल अथाणां टालु ॥

सेलर फूल सवे बीली फल, पत्र साक विगण कोलीगड ॥
बोर महूजा अण जाण्या फल, नीम करेयो तम्हे जाबू फल ।

धानसाल ना घोल कहीजि, दिज बिहु पूंठि नीम करोजि ।
स्वाद चल्या जे फूल्या धान, नाम नही ते माणस खान ॥

दीन सहित तम्हे व्यालू करु, राति आहार सवि परिहरु ॥
उपवास अवलु फल पामीजइ, आणु फल दंतेन धरीजि ॥

एक वार विवार जमीजइ, अरता फिरता नवि खाईजइ ।
वस्तु पाननी संख्या कीजि, फूल सचित्त टाली धालीजि ॥

त्रण काल सामायक लेयो, मन रुंधानि ध्यान करेयो ।
आठमि चौदिश पोसु धरु, घरंह तणा पातिक परिहरु ॥

उत्तम पात्र मुनीश्वर जाणु, श्रावक मध्यम पात्र वखाणु ॥
आहार ऊपध पोथी दीजइ, अभयदान जिन पूजा कीजइ ॥

थोडु दान सुपात्रा दीजि, परिभवि फल अनंत लहीजइ ।
दान कुपात्रा फल नवि पावि, ऊसर भूमि बीज व आवि ।

दया दान तम्हे देयोसार, जिणवर बिंब करुं उद्धार ॥
जिणवर भवननी सार करेज्यो, लक्ष्मीनु फल तम्हे लेज्यो ॥

—वस्तु—

दमु इन्द्री दमु इन्द्री पच छि चोर
धर्म रत्न चोरी करीय नरग माहि लेईय मूकि ।
सवहु दुःखनी खाण जीय रोग सोक भडार ढूकि ।
जे तप खडग धरीय पुरुष इन्द्री करि सधार ।
देवलोक सुख भोगवी ते तिरसि ससार ॥

--अथ ढाल चुथी--

योवन रे कुटब हरिधि लक्ष्मीय चचल जाणीइए।
जीवंहुरे सरण न कोई धर्म विना सोई आणीइए।।

ससार रे काल अनादि जीव आगि घणु फिरयु ए।
एकलु रे आवि जाइ कर्म आठे गलि धरयुए।

काय धीरे जू जूउ होइ कुटब परिवारि वेगलुए।
शरीर रे नरग भडार मूकीय जासि एकलु ए।

खिमा रे खडग धरेवि क्रोध विरी सघारीइए।
मार्द्दव रे पालीइ सार मान पापी परु टालीइए।

सरलु रे चित्तकरेवि माया सवि दूरि करुए।
सतोष रे आयुध लेवि लोभविरी सघारीइए।

वेराग रे पालीइ सार, राग टालु सकलकीर्त्ति कहिए।
जे भणिए रास ज "सार सीखा मणि" पढते लहिए।

इति सीखामणिरास समाप्त·

ब्रह्म जिनदास (समय १४४५-१५१५)

सम्यक्त्व-मिथ्यात्वरास[1]

ॐ नमः सिद्धेभ्य

[१]

ढाल वीनतीनी

सरगति स्वामिणि वीनवउ मांगू एक पसाउ ।
तम्ह परसादेइ गाइस्यु, रूवडो जिणवर राउ ॥१॥

सहीए समाणीए तम्हे सुणो मुणउ अम्हारीए बात ।
जिण चैत्यालइ जाइस्यु छाडि परकीय तात ॥२॥

अ ंग पखालीसुं आपणो, पहिरीसुं निरमल चीर ।
जिन चैत्यालेइ पैसता निरमल होइ सरीर ॥३॥

जिणवर स्वामिइ पूजीए वादीए सहु गुरु पाय ।
तत्व पदारथ सांभलि निरमल कीजिए काय ॥४॥

सहगुरु स्वामि तम्हे कहु, श्रावक धर्म वीचार ।
उतीम धरम जगि जाणिए उतीम कुलि अवतार ॥५॥

सहगुरु स्वामिय बोलीया मधुरीय सुललीत वाणि ।
श्रावक धरम सुणो निरमलो जीम होइ सुखनीय खाणि ॥६॥

समिकित निरमल पालीए, टालि मिथातह कंद ।
जिणवर स्वामिय ध्याइए, जैसो पूनिम चंद ॥७॥

वस्त्राभरण थाए वेगला जयमालि करी नवि होइ ।
नारी आयुध थका वेगला, जिन तोलैं अवर न कोइ ॥८॥

सोम मूरति रलीयावणा वीकार एक न अंगि ।
दीसता सोहावणा, ते पूजो मनरंगि ॥९॥

इन्द्र नरेन्द्रइ पुजीया न जिणवर मुगति दातार ।
निरदोष देव एह्वा ध्याइये, जीम णमो भवपार ॥१०॥

अवर देव नवी मानीइ दूखण सहीत वीचार ।
मोहि करमि जे मोहीया ते अजू भमिसी ससारि ॥११॥

---

१. ब्रह्म जिनदास कृत-विशेष परिचय देखिये पृष्ठ सख्या ३८-३९ तक

वस्त्राभरणइ मडीया, सरसीय दीसे ए नारी ।
आयुध हाथि बीहावणो, अजीय नमु कीय मारी ॥१२॥

जे आगलि जीव मारेए ते, कीम कहीय ए देव ।
युजें धरमन पामीइ, इणी करो तेहनीय सेव ॥१३॥

दीसता वीहावणा देवदेवी तेह जाणी ।
रौद्रध्यान दीठें उपजे इणीकरो तेह ' ' ॥१४॥

बडपीपल नवि पुजीए, तुलसी मरोय उबारि ।
द्रोव छाड नवि पूजिए, एह वीचारउ नारि ॥१५॥

उबर थामन पूजीए, काजिणी चूल्हउ आगि ।
घागरि मडका पूजी करी, ते कान्ह फल मन मागि ॥१६॥

सागर नदीयन पुजीए, वावि कूवा अडसोइ ।
जलवा एन जुहारीय ए, सवे देव न होइ ॥१७॥

गजघोडा नवि पुजीए, पसुव गाइ सवे मोर ।
काग वास जे नाखि से, माणस नही ते ढोर ॥१८॥

खीचड पीतर न पुजीए, एकल तिडम घालो ।
मूआ पुठे नवि कलपीए, कुदान की हानम आलो ॥१९॥

उकरडी नवि पुजीए, होलीय तम्हे म जुहारो ।
गणगउरि नवि मानीइ, भवा मिथ्यात नी वारो ॥२०॥

[२]

ढाल बीजी

मिथ्यात सयल नीवारीए, जाग म रोपउ नारि ।
माटी कोराउतु करीए, पछे किम मोडीए गवारि ॥१॥

तामटे धान बोवावीए कहीए रना देवि तेह ।
सात दीवस लागें यूजीए, पछे किम बोलीए तेह ॥२॥

जोरनादेवि पुत्र देइ, तो कोई वाझीयो न होइ ।
पुत्र धरम फल पामीइ, एह वीचार मु जोइ ॥३॥

धरमइ पुत्र सोहावणाए, धरमइ लाछि भण्डार ।
धरमइ घरि वधावणा, धरमइ रूप अपार ॥४॥

केवली भास्यु धरम करोए, श्रावक तुम्हे इसु जाणतो।
निग्रयगुरु उपदेसीयाए तेहनी करउ वखाणतो ॥२॥

जीव दया व्रत पालीयए, सत्य वयण बोलो सारतो।
परधन सयल निवारीयए, जीम पामो भवपारतो ॥३॥

शीयल वरत प्रतिपालीयए, त्रिभुवन माहि जे सारतो।
परनारी सवे परहरीए, जीम पामो भव ए पारतो ॥४॥

परिग्रह सक्षा (ख्या) तम्हे करो ए, मन पसरंनो निवारितो।
नीम घणा प्रतिपालीयए, जीम पामो भव पारतो ॥५॥

दान पुजा नित निरमनए, माहा मत्र गणो णवकारतो।
जिणवर भुवन करावीयए, जीम पामो भव पारतो ॥६॥

चरम पात्र घृत उदकए, छोती सयल नीवारि तो।
आचार पालो निरमलोए, जीम पामो भव पारतो ॥७॥

सोलकारण व्रत तम्हें करोए, दश लक्षण भव पारतो।
पुण्याजनि रत्नत्रयह, जीम पामो भव पारतो ॥८॥

अक्षयनिधि व्रत तम्हे करो, सुगध दशमि भव पारतो।
आकासपाचमि निभरपाचमीय, जीय जीम पामो भवपारतो ॥९।

चादन छठी व्रत तम्हे करो ए, अनतवरत भव तारतो।
निर्दोष सातमि मोड सातमिह, जीम पामो भव पारतो ॥१०॥

मुगतावलि व्रत तम्हे करोए, रतनावलि भव तारतो।
कनकावलि एकावलिए, जीम पामो भवपारतो ॥११॥

लवधवीधान व्रत तम्हे करोए, श्रुतकद भव तारतो।
नक्षत्रमाला कर्म निर्जणीय, जीम पामो भव पारतो ॥१२॥

नदीस्वर पगति तम्हे करोए, मेर पगति भव तारतो।
विमान पगति लक्षण पगतीय, जीम पामो भवपारतो ॥१३॥

शीलकल्याण व्रत तम्हे करोए, पाच ज्ञान भव तारतो।
सुख सपति जिणगुण सपतीय,जीम पामो भव पारतो ॥१४॥

चोवीस तीर्थंकर तम्हे करोए, भावना चौत्रीसी भव तारतो।
पल्योपम कल्याणक तम्हे करोए, जीम पामो भव पारतो ॥१५॥

चारित्र सुधि तप तम्हे करोए, धरम चक्र भव तारतो ।
जतिय वरत सवे निरमलाए, जीम पामो भवपारतो ॥१६॥

दीवाली अब तम्हे करोए, आखातीज भव तारतो ।
वीजय दशमि बलि राखीडी ए, जीम पामो भव पारतो ॥१७॥

आठमि चोदसि परब तीथि, उजालि पाचमि भव तारतो ।
पुरदरविधान तम्हे करोए,जीम पामो भव पारतो ॥१८॥

जीण सासण अनत गुण कहो, कीम लाभ ए पारतो ।
केवल भाक्षो (ख्यो) धर्म करोए, जीम पामो भव पारतो ॥१६॥

समिकित रासो निरमलो ए, मिथ्यातमोड एकदतो ।
गावो भवीयरण रुवडोए, जीम सुख होद् अनदतो ॥२०॥

श्री सकलकीर्ति गुरु प्रणमीनए, श्री भवनकीर्ति भवतारतो ।
ब्रह्म जिंणदास भरणे ध्याइए, गाइए सरस अपारतो ॥२१॥

॥ इति समिकितरासनु मीथ्यात मोड समाप्त ॥

आमेर शास्त्र भडार जयपुर

गुर्वावलि[1] (रचनाकाल स० १५१८)

बोली

तेह श्री पद्मसेन पट्टोधरण ससारसमुद्र तारणतरण स . ग्रंचर पचेन्द्रिय विसिकरण एकासीमइ पाटि श्री भुवनकीर्ति राउलजपन्ना पुण जिरि श्री भुवनकीर्तिइ ढीली नयर मध्य शुलतान श्री वडा महिमु दसाह सभातरि आपरणी विद्यानि प्रमाणि निराधार पालखी चलावी। सुलताण महिमु दसाह सह थइ मान दीधु । तेह नयर मध्य पत्रालवन वाधी पच मिथ्यात्व वादी वृदराज सभाइ समस्त लोक विद्यमान जीता । जिनधर्म प्रगट कीधु । अमर जस इणी परि लीघु । अनि तेह श्री गुरु तणि पाटि श्री भावसेन अनि श्री वासवसेन हूया । जे श्री वासवसेन मलमलिन गात्र चारित्रपात्र नित्य पक्षोपवास अनि अ तराइ निसयोग मासोपवास इसा तपस्वी इणि कालि हूया न कोहसि । अनि तेहनि नामि तथा पीछीनि स्पर्शि समस्त कुष्टादिक व्याधि जाति । तेह गुरुंना गुण केतला एक बोलीइ ॥ हवि श्री भावसेन देव तणि पाटि श्री रत्नकीर्ति उपन्ना ।

छंद त्रिवलय

श्रीनदीतटगच्छे पट्टे श्रीभावसेनस्य ।
नयसाखाश्रृ गारी उपन्नो रयणकीर्त्तिया ॥१॥

उपनु रयणकीर्त्ति सोहि निम्मल चित्त ।
हूउ विख्यात क्षिति यतिपवरो ॥

जीतु जीतु रे मदन बलि सक्यु न वाही—
छलि जिनवर धम्म वली धुरा-धरो ॥

जाणि जाणि रे गोयम स्वामि तम नासि जेह नामि ।
रह्य‚ उत्तम ठामि मडीयरण ॥

छाड्य‚ छाड्य‚ रे दुर्जय क्रोध अभिनवु एह योध ।
पचेइ द्री कीधु रोध एकक्षण ॥२॥

उद्धरण तेह पाट नरयनी भाजी वाट
माडीला नवा अघाट विवह पार ॥

---

१. आचार्य सोमकीर्त्ति की इस कृति का परिचय देखिये पृष्ठ सख्या–४२ पर देखिये ।

श्राणि आणि रे जेन माण सर्वविद्या तणु जाण ।
नरवरहि श्राण रग भार ।।
दीसि दीसि रे अति झूझार हेलामाटि जीतु मार ।
घडीयन लागी वार वरहु गुरो ।।
इणी परि श्रति सोहि भवीयण मन मोहि ।
ध्यानहय श्रारोहि श्रीलक्ष्मसेन आणद करो ।।३।।

कहि कहि रे ससार सार म जाणु तम्हे श्रसार ।
श्रत्थि अति श्रसार भेद करी ।।
पूजु पूजु रे अरिहत देव सुरनर करि सेव
हवि मलाउ खेव भाव धरी ।।
पालु पालु रे अहसा धम्म मणूयनु लाधु जम्म ।
म करु कुत्सित कम्म भव हवणे ।।
तरु तरु रे उत्तम जन अवर म श्राणु मनि ।
ध्याउ सर्वज्ञ धन लख्मसेन गुरु एम भणै ।।४।।

दीठि दीठि रे अति श्राणद मिथ्यातना टालि कद ।
गयण विहूणउ चद कुलहितिलु ।
जोइ जोइ रे रयणी दीसि तत्वपद लही कीशि ।
धरि आदेश शीशि तेह भलु ।।
तरि तरि रे ससार कर तिजगुरु मूकिइए ।
मोकलु कर दान भणी ।।
छडि छडि रे रठडी बाल लेइ बुद्धि विशाल ।
वाणीय श्रति रसाल लख्मसेन मुनिराउ तणी ।।५।।

श्री रयणकीर्ति गुरु पट्टि तरणि सा उज्जल तपै ।
छडावी पाखड धम्मि मारगि आरोपै ।।
पाप ताप सताप मयण मछर भय टाले ।
क्षमा युक्त गुणराशि लोभ लीला करि राले ।।
बोलिज वाणि अम्मी श्रग्गली सावयजन घन चित्त हर ।
श्री लख्मसेन मुनिवर सुगुरु सयल सघ कल्याण कर ।।६।।

सगुण जगुण भडार गुणह करि जण मण रजै ।
उवसम हय वर चडवि मयण भडइ वाइ भंजै ।।

रयणायर गंभीर धीर मंदिर जिम सोहै ।
लखम सेन गुरु पाटि एह भवीयण मन मोहै ।
दीपति तेज दणीयर सिसुमच्छसी मणमाणहर ।
जयवता चउ वय मघसू श्रीधर्मसेन मुनिवर पवर ॥१॥

पहिरवि सील सनाह तवह चरणु कडि कछीय ।
क्षमा खडग करि धरवि गहीय भुज बलि जय लछी ॥
काम कोह मद मोह लोह आवतु टालि ।
कट्ठ सघ मुनिराउ गछ इणी परि अजूयालि ॥
श्री लखमसेन पट्टोधरण पाव पक छिप्पि नही ।
जे नरह नरिंदे वदीइ श्री भीमसेन मुनिवर सही ॥ ॥

सुरगिरि सिरि को चडै पाउ करि अति वलवतौ ।
केवि रणायर नीर तीर पुहुतउय तरतौ ॥
कोई आयासय माण हत्थ करि गहि कमतौ ॥
मट्ठ सघ गुण परिलहिउ विह कोइ लहंतौ ॥
श्री भीमसेन पट्टह धरण गछ सरोमणि कुल तिलौ ।
जाणति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्ति मुनिवर भलौ ॥३॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु ।
अक्कवार पंचमी बहुल पष्यह वखाणु ॥
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोझीत्रिपुर वरि ।
सत्यासीवर पाट तणु प्रवध जिणिपरि ॥
जिनवर सुपास भवनि कीउ श्री सोमकीर्त्ति बहु भाव धीर ।
जयवतउ रवि तलि विस्तरु श्री शातिनाथ सुपसाउ करि ॥४॥

गुटका दि० जैन मन्दिर बघेरवाल—नैणवा

आदीश्वरफाग[1]

(जन्म कल्याणक वर्णन)

आहे चैत्र तणी वदि नवमीय सुन्दर वार अपार ।
रवि जनमी तइ जनमीया करइ जय जय कार ॥७३॥

आहे लगनादि कर्‌यू वरणवू जेणइ जनम्या देव ।
बाल पणइ जस सुरनर आव्या करवा सेव ॥७४॥

आहे घंटा रव तव वाजीउ गाजीउ अम्बरि नाद ।
जिनवर जनम सु सीधउ दीधउ सघलइ साद ॥७५॥

आहे एरावण गज सज कर्‌यु सज कर्‌या वाहन सर्व ।
निज निज घरि थका नीकल्या कुणइ न कीधउ गर्व ॥७६॥

आहे नाभि नरेसर अ गण नइ गगणंगण देश ।
देवीय देवइ पूरीयु नहीय किहीय प्रवेश ॥७७॥

आहे माहिमई इन्द्राणीय आणीय अप्पउ बाल ।
इन्द्र तणइ करि सुन्दरी गावह गीत विशाल ॥७८॥

आहे छत्र चमर करि धरता करता जय जय कार ।
गिरिवर शिखिर पहूत बहूत न लागीय वार ॥७९॥

आहे दीठउ पडुक कानन वर पचानन पीठ ।
तिहा जिन थापीय आखलि पाखलि इन्द्र वईठ ॥८०॥

आहे रतन जडित अति मोटाउ मोटाउ लीधउ कुम्भ ।
क्षीर समुद्र थकूं पूरीय पूटीय आणीयू अम्भ ॥८१॥

आहे कुम्भ अदम्भ पणइ लेई ढाल्या सहस नह आठ ।
ककण करि रणझणतइ भणतइ जय जय पाठ ॥८२॥

आहे दुमि दुमि तवलीय वज्जइ घुमि घुमि मद्दल नाद ।
टणण टणण टंकारव भिणिभिणि झल्लर साद ॥८३॥

---

१. भ० ज्ञानभूषण एवं उनकी कृतियो का विशेष परिचय पृष्ठ संख्या ४९-९३ पर देखिये ।

आहे कोटइ मोटा मोतीयनु पहिराव्यु हार ।
पहिरीया भूषण रगि न अ गि लगा रज भार ॥९८॥

आहे'करि पहिरावइ साकली साकली आपइ हाथि ।
रीखतु रीखुत चालइ चालइ जननी साथि ॥९९॥

आहे कटि कटि मेखल वाघइ वाघइ अ गद एक ।
कटक मुकट पहिरावइ जाणइ वहुत विवेक ॥१००॥

आहे घरण घरण घूघरी बाजइ हेम तणी विहु पाइ ।
तिमतिम नरपति हरखइ हरखइ मरुदेवी माइ ॥१०१॥

आहे वगनाउ वगनाउ मगनाउ लाडूआ मू कइ आणि ।
थाल भरी नइ गमताउ गमताउ लिइ निजपाणि ॥१०२॥

आहे क्षिणि जोवइ क्षिणि सोवइ रोवइ लहीअ लगार ।
आलि करइ कर मोडइ त्रोडइ नवसर हार ॥१०३॥

आहे आपइ एक अकाल रसाल तणी करि साख ।
एक खवारइ खारिकि खरमाउ दाडिम द्राख ॥१०४॥

आहे आगलि मू कइ एक अनेक अखोड वदाम ।
लेईय आवइ ठाकर साकर नावहु ठाम ॥१०५॥

ओह आवइ जे नर तेवर घेवर आपिइ हाथि ।
जिम जिम बालक बाघइ तिम तिम बाघइ आथि ॥१०६॥

आह अवर वतू सहू छाडीय माडीय मरकीय लेवि ।
आपइ थापइ आगलि रमति बहू मरूदेवि ॥१०७॥

आहे खाड मिलीय गलीय तलीय खवारइ सेव ।
सरगि थका नित सेवाउ जोवाउ आवउ देव ॥१०८॥

खाड मिली हरखिइं तली गली खवारइ सेव ।
कइ आवइ सेविवा केई जोवा देव ॥१०९॥

आहे आपइ एक अहीणीय फीणीय झीणीय रेख ।
अविय देवीय देव तणी देखाडइ देख ॥११०॥

आपइ फीणी मनिरली माहइ भीणी रेख ।
देवी आवइ सरगिथी देखाडइ ते देख ॥१११।

आहे कोद न आणइ अगरस कमरस मूंफइ पामि ।
वेनाइ वेलाइ गूनेला केलानो बहु रामि ॥११२॥

गूनेला केलां गला काटेलांनी गामि ।
केइ स्यावइं कुरणा कमरग मू यइ पामि ॥११३॥

आहे एक बजावइ बाजाउ निवजाउ आपइ एक ।
गावइ गायग रायग आपइ एक अनेक ॥११४॥

वाजइ बाजा अति घणा निवजा एक अनेक ।
आपइ गायण कोडडी पाका रायण एक ॥११५॥

आहे गूंद तल्यउ गुग गू द वडा वर गूंद विपाक ।
आपइ कूलिरि चोलीय पोलीय आणीय वाक ॥११६॥

आणइ गू द वडा वडा सरिस्यु गू द विपाक ।
गू द तलिउ कूनेरि तणउ चोली आणइ वाक ॥११७॥

आहे एक आणइ वर सोलाउ कोहला केरउ पाक ।
अ गिण आणीय बाघइं एक अनेक पताक ॥११८॥

आहे आणइ साकर दूध विसूधउ दूध विपाक ।
आपइ एक जणी घणी खाडतणी वर चाक ॥११९॥

साकर दूध कचोलडी सूधउ दूध विपाक ।
आपइ एक जणी घणी खाडतणी वर चाक ॥१२०॥

आहे कांमल कोमल कमल तणा फल आपइ सार ।
नहीय दहीय दहीयथरानउ घोक लगार ॥१२१॥

कमल तणा फल टोपरा पस्ता आपइ सार ।
दहीय दहीयथ रातणु वाक नहीय जगार ॥१२२॥

आहे वूरइ पूरइ पस तस खस खस आपइ एक ।
उन्हऊ पाणीय आणीय अ गिकरइ नित सेक ॥१२३॥

आपइ वूरू खाडनूं खसखस आपइ एक ।
चापेल वडइ चोपडी अ गि करइ जल सेक ॥१२४॥

आहे कोठइ मोटा मोतीय मोतीय लाडू हाथि ।
जोवाउ नित नित आवइ इन्द्र इन्द्राणी साथि ॥१२५॥

कोटइ मोती अति भला मोती लाडू हाथि ।
जोवानइ आवइ वली इन्द्र सची वहु साथि ॥१२६॥

आहे चारउ लीनी वाचकी साकची आपइ एक ।
एक आपइ गुड बीजीय वीजीय फणस अनेक ॥१२७॥

आहे माथइ कूंचीय ढीलीय नीलीय आपइ द्राख ।
नित नित लूंण ऊतारइ जे मन लागइ चाख ॥१२८॥

चार तणा फल साकची सूका केला एक ।
पहूं आगुड बीजी धणी आपइ फनस अनेक ॥१२९॥

सिरि कूची मोती भरी हाथिइ नीली द्राख ।
लूण उतारइ माडली जे मन लागइ चाख ॥१३०॥

आहे मान तणीया साहेलडी सेलडी आपइ नारि ।
छोलीय छोलीय आपइ बइठीय रहइ घर वारि ॥१३१॥

आहे जादरीया काकरीया घरीया लाडूआ हाथि ।
सेवईया मेवईया आपइ तिलवट साथि ॥१३२॥

सेव तणा आदिइं करी लाडू मूकइ हाथि ।
आणइ गुलभेला करी आपइ तिलवट साथि ॥१३३॥

आहे तीगण काईय आईय आणीय आपइ हाथि ।
तेवडा तेवडा चालक जमला चालइ साथि ॥१३४॥

नालिकेर नीला भला माडी आपइ हाथि ।
जमला तेवड तेवडा बालक चालइ साथि ॥१३५॥

आहे आपइ लीबुअ बीजाउ वीजउरा जबीर ।
जोईय जोईय मूंकइ जिनवर बावन वीर ॥१३६॥

आपइ लीबू अतिभला वीजुरा जवीर ।
हाथि लेई जो अइ रयइ जिनवर बावन वीर ॥१३७॥

आहे साजाउ साजाउ करेउ कीधउ चूर खजूर ।
आपइ केईय जोअइ गाअइ वाअइ तूर ॥१३८॥

आपइ फलद खजूर गु केई खाजा चूर ।
केई गावइ गीतड़ा एक वजाउइ तूर ॥१३९॥

आहे श्रीयुत नित नित आवइ देव तणउ सघात ।
अमिरित आपइ आणीय क्षाणीयनी कुणवात ॥१४०॥

सन्तोस जय तिलक[1]

(सवत् १५६१)

साटिक

जा अज्ञान अधार फेडि करणु, मन्यान दी वउठे ।
जा दुःख वहु कम्म एण हरणं, दाइग सुगेहुह ॥
जादे वमगुणा तियच रमणी, भविस्व तारणी
साजं जै जिणवीर वयण सरिय वाणी अने निम्मलं ।.१॥

रड

थिमल उज्जल गुर सुर सरोहि,
सुविमल उज्जल सुर गुर सरोहि ।
सुण भवियण गह गहहि, मन सु सरि जणु कवल खिल्लहि ।
फल केवल पयडि यहि, पाप-पटल मिथ्यात पिल्लहि ॥
कोटि दिवाकर तेउ तपि, निधि गुण रतनकरड ।
सो वधमानु प्रसनु नितु तारण तरणु तरडु ॥२॥

भविय चित्त वहु विधि उल्हासणु ।
अठ कम्मह खिउ करणु सुद्ध धम्मु दह दिसि पयासणु ॥
पावापुरि श्री वीर जिणु जने सु पहुत्तइ आइ ।
तव देविहि मिलि सठयउ समोसरणु वहु भाइ ॥३॥

जव सुदेखइ इंद्र धरि ध्यानु नहु वाणी होइ जिण ।
तव सुर (क) पट मन महि उपायउ,
हुइ वभणु डोकरउ मच्च लोइ सुरपत्ति आयउ ॥
गोतमु नोतमु जह वसै अवरु सरोतमु वीरु ।
तत्थ पहुतउ आइ करि मघवै गुणिहि गहीर ॥४॥

थिवरु वोलइ सुणहु हो विप्पे तुम्ह दीसर विमलमति ।
इकु सन्देहु हम मनिहि थक्कइ,

---

१. ब्रह्म बूचराज एव उनकी कृतियों का परिचय पृष्ठ ७० पर देखियें ।

नहुतै साके मिलइ जासु हुत यह गाठि चुक्कइ ।
वीरु हु ता मुझ गुरु मोनि रह्या लो सोइ ।
हउस लोकु लीए फिरउ अत्थु न कहइ कोइ ॥ ॥

गाथा

हो कह हुथि वर वमण को अछै तुम्ह चित्ति सदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हउ अविरल्लु बुद्धि पडितु ॥६॥

षटपदु

तीन काल षट्दु,दव्वि नव सु पद जीय खट्टुक्कहि ।
रस ल्हेस्या पचास्तिकाऽ व्रत समिति सिगक्कहि ॥
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहु वण महवै कहिउ वचनु यहु अरिहि न रुत्तिहि ॥
यहु मूलु भेदु निज जाणि यहु सुद्ध भाइ जे के गहहि ।
समक्कत्त दिहि मति मान ते सिव पद सुख वछित लहहि ॥७॥

एय वयण सवणि सभलि चयकिउ चितपुरइ न अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु, चल्लिउ पुणि तत्थ जथ जिणणाहु ॥८॥

रड

तब सुगोइमु चाल्लिउ गजतु, जणु सिघरू मत्तमय ।
तरक छद व्याकरण अत्थह ।
खट्टु अगहु वेय धुनि, जोति क्कलकार सत्थह ॥
तुलइ सु विद्या अवुल वलु चडिउ तेजि अति वभु ।
मान गल्या तिसु मन तणा देखत मानथभु ॥९॥

गाथा

देखत मान थभो, गलियउ तिसु मानु मनह मझम्मे ।
हूवउ सरल पणामो, पूछ गोइमु चित्ति सदेहो ॥१०॥

दोहा

गोइमु पूछइ जोडि कर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभ वियाये जीय सहि लूरिहि केउ ससारि ॥११॥

रड

लोभ लग्गउ पाण वुव करइ ।

अलि जपइ लोभिग्गतु, ले अदतु जब लोभी आनइ ।
लोभि पसरि परगहु वधावइ ॥
पचइ वरतह खिउ करइ देह सदा अनचारु ।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहउ प्रगट्टु विचारु ॥१२॥

मूलह दुक्ख तणउ सनेहु ।
सतु विसनह मूलु व कम्मह मूल आसउ भणिज्जइ ।
जिव इ दिय मूल मनु नरय मूलु' हिंस्या कहिज्जइ ॥
जगु विस्वासे कपट मति पर जिय वछइ दोहु ।
सुण गोइम परमारथु यहु पापह मूलु सुलोहु ॥१३॥

गाथा

भमियउ अनादि काले, चहुगति मज्झम्मि जीउ वहु जोनी ।
वसि करि न तेनिसक्कियउ, यहु दारुण लोभ प्रचड्डु ॥१४॥

दोहडा

दारुण लोभ प्रचड्डु यहु, फिरि फिरि वहु दुख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पइं, लख चउरासी जीय ॥१५॥

पद्धडी छंद

यह व्यापि रह्या सहि जीय जत ।
करि विकट बुद्धि परमन हडत ॥
करि छलु पपसै घू रत्त जैंव ।
परपचु करिवि जगु मुसइर एव ॥१६॥

सकुडइ मुडइ वठलु कराइ ।
वग जैंउ रहइ लिव ध्यान लाइ ॥
वग जैंउ गगौ लिय सीसि पाइ ।
पर चित्त विस्वासैं विविह भाइ ॥१७॥

मजार जेउ आसण वहुत्त ।
सो करइ जु करणउ नाहि जुत्त ॥
जे वेस जैंव करि विविह ताल ।
भतियावइ सुख दे वृद्ध वाल ॥१८॥

आपणं न ओसरि जाइ चुक्कि ।
तम जेउ रहइ तलि दीव लुक्कि ॥
जव देखइ डिगतह जोति तासु ।
तव पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ॥१९॥

जो करइ कुमति तव अरण विचार ।
जिसु सागर जिउ लहरी अपार ॥
इकि चडहि एक उत्तरि विजाहि ।
वहु घाट घणइ नित हीयँ माहि ॥२०॥

परपचु करँइ जहरँ जगत्तु ।
पर अस्थुन देखइ सत्तु मित्तु ॥
खिरण ही अयासि खिरण ही पयालि ।
खिरण ही म्रित मडलि रग तालि ॥२१॥

जिव तेल वुंद जल महि पडाइ ।
सा पसरि रहै भाजनह छाइ ॥
तिव लोभु करइ राई स चारु ।
प्रगटावै जगि मे रह विथारु ॥२२॥

जो अघट घाट दुघट फिराइ ।
जो लगउ जेंव लग्गत धाइ ॥
इकि सवरिण लोभि लग्गिय कुरग ।
देह जीउ आइ पारधि निसग ॥२३॥

पत्तंग नयरण लोभिहि भुलाहि ।
कचरण रसि दीपग महि पडाहि ॥
इक घारिण लोभि मधकर भमति ।
तनु केवइ कंटइ वेधि यंति ॥२४॥

जिह लोभि मछ जल महि फिराहि ।
ते लग्गि पप्पच अप्परणु गमाहि ॥
रसि काम लोभि गयवर भमंति ।
मद मंधसि वध वधन सहंति ॥२५॥

एक इक्कइ इंदिय तरणे सुःख ।
तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ॥
पच इदिय लोभहि तिन रखुत्त ।
करि जनम मरण ते नेरं विगुत्त ॥२६॥

जगमसि तपी जोगी प्रचड ।
ते लोभी भमाए भमहि खड ॥
इद्राधि देव वहु लोभ मत्ति ।
ते वंछहि मन महि मण वगत्ति ॥२७॥

चक्कवै महिम्य हुइ इक्क छत्ति ।
सुर पदइ वछई सदा चित्ति ॥
राइ राणो रावत मडलीय ।
इनि लोभि वसी के कें न कीय ॥२८॥

वण मझि मुनीसर जे वसहि ।
सिव रमणि लोभु तिन हिंयइ माहि ॥
इकि लोभि लग्गि पर भूम जाहि ।
पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ॥२९॥

सकुलीणो निकुलीणहे दुवरि (दुवारि)
लेहि लोम डिगाए करु पसारि ॥
वसि लोभि न सुण ही ध्रम्मु कानि ।
निसि दिवसि फिरहि आरत्त ध्यानि ॥३०॥

ए कीट पडे लोभिहि भमाहि ।
सचहि सु अनु ले धरणि माहि ॥
ले वनरसु हेठं लोभि रत्तु ।
मखिका सुमधु सचइ वहुत्त ॥३१॥

ते किपन (कृपण) पडिय लोमह मझारि ।
धनु सचहि ले धरणी भडार ॥
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि ।
देखतन उठि हाथ झाडि जाहि ॥३२॥

गाथा

जहि हथ अडिक वण धनु संचहि सुलह करिवि भडारे ।
तरहि केंव संसारे, मनु वुद्धि ऐ रसी जाह ॥३३॥

रड

वसइ जिन्ह मनिंइ सिय नित वुद्धि ।
धनु विटवहि डहकि जगु सुगुर वज्ञन चितिहि न भावइ ।
मे मे मे करइ सुणत द्रम्मु सिरि सूलु आवइ ।
अप्पणु चित्तु न रजही जगु रजावहि लोइ ।
लोभि वियाये जेइ नर तिन्ह मति ऐसी होइ ॥३४॥

गाथा

तिन होइ इसिय मत्ते, चित्ते अय मलिन मुहुर मुहि वाणी ।
विंदहि पुन न पावो, वस किया लोभि ते पुरिष ॥३५॥

मडिल

इसउ लोभु काया गढ अ तरि, रयणि दिवस सतवइ निरतरि ।
करइ ढीवु अप्पण वलु मडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खडइ ॥३६॥

रड

कोहु माया मानु परचड ।
तिन्ह मझिहि राउ यहु, इसु सहाइ तिन्निउ उपज्जहि ।
यहु तिव तिव विप्फुरइ उइ तेय वलु अधिकु सज्जहि ॥
यहु चहु महि कारणु अव घट घाट फिरतु ।
एक लोभ विणु वसि किए चौगय जीउ भमतु ॥३७॥

जासु तीवइ प्रीति अप्रीति
ते जग महि जाणि यह, जणिउ रागु तिनि प्रीति नारि ।
अप्रीति हु दोष हुव, दहू कलाय परगट पसारि ॥
अ ज्ञा फेरी आपणी घटि घटि रहे समाइ ।
इन्ह दहु वसि करि ना सकै ता जीउ नरकिहि जाइ ॥३८॥

दोहा

सप्पउ रहु जैसे गरल उपने विष सजुत्त ।
तैसे जाणहु लोभ के राग दोष दइ पुत्त ॥३९॥

पद्धडी छंद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जापहि प्रगट संसारि घुत्त ॥
जह मित्त त्तण तह राग रगु ।
जह सत्त तहा दोषह प्रसगु ॥४०॥

जह रागु तहा तह गुणहि थुत्ति ।
जह दोष तहा तह छिद्र चित्ति ॥
जह रागु तहा तह यति पत्तिट्ठ ।
जह दोष तहा तह काल दिट्ठ ॥४१॥

जह रागु तहा सरलउ सहाउ ।
जह दोपु तहा किछु वक्र भाउ ॥
जह रागु तह मनह प्रवाणि ।
जह दोषु तहा अपमानु जाणि ॥४२॥

ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह वाकुन दीसइ महिय कोइ ॥
नत हियइ सिसलहि राग दोष ।
वट वाडे दारण मग्गह मोख ॥४३॥

रड

पुत्त श्रीसिय लोभ धरि दोइ ।
वलु मडिउ अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इ द जाल दिखाइ करि, वसी भूत सहु लोगु कीयउ ॥
जोगी जगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहि फिरि फिरि लग्गइ धाइ ॥४४॥

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउरासी लख महि जथ जोड पुणि तत्थ सोईय ।
जे देखउ सोचि करि तासु वाकु नहु अत्थि कोइय ॥
विकट बुद्धि जिनि सहिमु सिय घाले कम्मह फघ ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय दीसहि ते नर अ घ ॥४५॥

दोहा

मणु व तिजचह नर सुरह हीडावै गति चारि।
वीरु भणइ गोइम निसुणि लोभु वुरा ससारि ॥४६॥

रड

कहिउ स्वामी लोभु बलिवंडु।
तव पूछिउ गोइमिहि इसु समत्त गय जिउ गुजारहि।
इसु तनिइ तउ वलु, को समत्थु कहुइ सु विदारइ ॥
कवरण वुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवरण उपाय।
किस पौरिषि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाउ ॥४७॥

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु।
यहु सासरण विम्मलइ सुणत ध्रम्मु भव वध तुट्टहि।
अति सूषिम भेद सुणि मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि ॥
काल अनतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
लोभु दुसहु इव ज्जित्तयइ सतोषह परसादि ॥४८॥

कहहु उपजइ कह सतोषु।
कह वासइ थानि उहु, किस सहाइ वलुइ तउ मडइ।
क्या पौरिषु सैनु तिसु, कास वुद्धि लोभह विहडइ ॥
जोरु सखाई भविय हुइ पयडावै पहु मोखु।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सभटु सतोषु ॥४९॥

सहजि उपज्जइ चिति सतोषु।
सो निमसइ सत्तपुरि, जिण सहाइ वलु करइ इत्तउ।
गुण पौरिषु सैन धम्मु, ज्ञान बुधि लोभह जित्तइ ॥
होति सखाई भवियहुइ, टालइ दुरगति दोषु।
सुणि गोइम सरवनि कहउ इसउ सूरू सतोषु ॥५०॥

रासा छद

इसउ सूरु सतोषु जिनिहि घट महि कियउ।
सकयत्थउ तिन पुरिसह ससारिहि जियउ ॥
सतोषिहि जे तिय ते ते चिरु नदियहि।
देवह जिउ ते माणुस महियलि वदियहि ॥५१॥

सूरधीर वरवीर जिन्हहि संतोपु वलु।
पुड यणि पति सरीरिं न लिपइ दोष जलु॥

इसउ ग्रहै संतोषु गुणिहि वनियै जिवा।
सो लोभह खिंउ करइ कहिउ सरवन्नि इवा॥५६॥

रड

कहिउ सरवन्नि इसउ संतोषु।
सो किज्जई चित्ति दिढ़ जिसु पसाइ सभि सुख उपज्जहि।
नहु आरति जीउ पडइ, रोर घोर दुख लख भज्जहि॥

जिसु ते कल वडिम चडइ होइ सकल जगिप्रीय।
जिन्ह घटि यहु भव दीपिय पुन्न प्रिकिति जे जीय॥६०॥

मडिल्ल

पुन्न प्रिकिति जिय सवणिह्नि सुणियहि।
जै जै जै लोवहि महि भणियहि॥

गोइम सिउ परवीणु पयपिउ।
इसउ संतोषु भवप्पति जंपिउ॥६१॥

चदाइणु छंदु

जपियै एहु संतोषु भूवपति जासु।
नारीय समाधि ग्रछौ थिते॥

जे ससा सुंदरी चित्ति हे ग्रावए।
जीउ तत्त खिणे वछिय पावए॥६२॥

सवरो पुत्त, सो पयडु जाणिज्जए।
जासु ग्रौलवि संसारु तारिज्जए॥

छेदि सो आसरैं दूरि नैं वारए।
मुत्ति मझ मिले हेल सचारए॥६३॥

खतिय तासु को लगणा वन्निय।
दुज्जण तेउ भजेइ पास निय॥

कोह ग्रगे गाह दझति जे नरा।
ताह संतोस ए सोम सीयकरा॥६४॥

एहु कोटवु सतोप राजा तणो ।
जासु पसाइ व क्षाति दंती मणो ॥
तासु नै रिहि को दुद्धना आवए ।
सो मडो लोम हपो जुग वावए ॥६५॥

दोहा

खो जुग वावइ लोभ कउ, ए गुणहहि जिसु पाहि ।
सो सतोपु मनि सगहहु, कहियउ तिहुँ वणणाहि ॥६६॥

गाथा

कहियउ तिहु वण णाहो, जाणहु सतोपु एहु परमाणो ।
गोइम चिति दिढुकरु, जिउ जित्तहि लोभु यहु दुसहु ॥६७॥

सुणि वीर वयण गोइमि आणिउ, सतोषु सूरु घटमझे ।
पज्जलिउ लोहु तखि खिणि मेले चउरगु सयनु अप्पणु ॥६८॥

रड

चित्ति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोसा इणु तम कियउ, लेइ लहरि विषु मनिहि घोलइ ।
रोमावलि उद्धसिय, काल रूइ हुइ भुवह तोलइ ॥
दावानल जिउ पज्जलिउ नयणनि लाडिय चाडि ।
आज सतोषह खिउ करउ जड मूलहू उप्पाडि ॥६६॥

दोहा

लोभिहि कीयउ सोचणउ हूवउ आरति घ्यानु ।
आइ मित्या सिरु नाइ करि, झूठु सवलु परधानु ॥७०॥

षटपदु

आयउ झूठु पधानु मतु तत्त खिणि कीयउ ।
मनु कोहु अरु दोहु मोहु इक यद्धउ थीयउ ॥
माया कलहि कलेसु थापु सतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ आद अद्धाम्मि कियउ पख ॥
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ, रागि दोषि आइरू लहिउ ।
अप्पणउ सयनु वलु देखि करि, लोहुराउ तव गहगहिउ ॥७१॥

मडलिल

गह गहियउ तंव लोहु चिततरि।
वज्जिय कपट निसाय गहिर सरि ॥
विषय तुरगिहि दियउ पलाणउ।
सतोषह दिसि कियउ पयाणउ ॥७३॥

आवत सुणिउ सतोष तत्त क्खिणि।
मनि आनदु कीयउ सु विचक्खिणि ॥
तह ठइ सयनह पति सतु आयउ।
तिनि दलु अप्पणु वेगि वुलायउ ॥७४॥

गाथा

वुल्लायउ दलु अप्पणु, हरषिउ सतोषु सुरु वहु भाए।
जिस ढार सहस अग सो मिलियइ सीलु भडु आइ ॥७५॥

गीतिका छदु

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु न्यानु चारित सवरो।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति सजमु थिरू ॥
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आकिंचणो।
इव मेलि दलु सतोष राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७६॥

सासणिहि जय जय कारू हूवउमग्गि मिथ्याती दडे।
नीसाण सुत वज्जिय महाधुनि मनिहि कि दूर लडेखडे ॥
केसरिय जीव गज्जत वलु करि चित्ति जिसु सासण गुणो।
इव मेलि दल सतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ॥७७॥

गज ढल्ल जोग अचल गुढिय तत्तह यही सार हे।
वड फरसि पचिउ सुमति जुट्टहि विनि धान पचार हे ॥
अति सवल सर आगम छुट्टहि असणि जणु पावस घणो।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ॥७८॥

पट पदु

मंडिउ रणु लिनि सुमटि सैनु सभु अप्पण सज्जिउ।
भाव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगम विज्जउ ॥

पव्वान्यौ व्यातमु पयउ अप्पणु दल अ तरि ।
सूर हियै गह गहहि धसहि काइर चित्त तरि ।।

उतु दिसि सुलोभु छलु तक्क वैवलु पवरिय णिय तणि तुलइ ।।
सतोपु गरुव मे रह,सरि सुर सुकिय वण भय णिणु खलइ ।।८०।।

गाथा

कि खलि है भय पवण, गरुवउ सतोपु मेर सरि अटल ।
चवरगु सयनु गज्जिवि रणि अ गणि सूर वहु जुडिय ।।८१।।

तोटक छंदु

रण अ गणि जुट्टय सूर नरा ।
तहि वज्जहि भेरि गहीर सरा ।
तह वोलउ लोभु प्रचंड भडो ।
हुणि जाइ सतोष पयालि दडो ।।८२।।

फिटु लोभ न वोलहु गव्व करे ।
हुण कालु चड्या है तुम्ह सिरे ।।
तइ मूढ सतायउ सयल जणो ।
जह जाहिन छोडउ तथ खिणो ।।८३।।

जह लोभु तहा थिरु लछि वहो ।
दरि सेवइ उभउ लोउ सहो ।।
जिवं इद्रिय चित्ति सतोषु करि ।
ते दीसहि भिख्य भयति परे ।।८४।।

जह लोभु तहा कहु कत्थ सुखो ।
निसि वासुरि जीउ सहत दुखो ।
सयतोषु जहा तह जोति उसो ।
पय वदहि इ द नरिंद तिसो ।।८५।।

सयतोष निवारहु गव्वु चित्ते ।
हउ व्यापि रह्या जगु मझि तिसो ।।
हउ आदि अनादि जुगादि जुगे ।
सहि जीय सि जीयहि मुत्पु लगे ।।८६।।

सुगु लोभ न कीजइ राडि घणी।
सव थित्ति उपाडउ तुम्ह तणी ॥
हउ तुझ विदारउ न्यानि खगे।
सहि जीय पठावउ मुत्ति मगे ॥८७॥

हउ लोभु अचलु महा सुभटो।
जगु मैं सहु जितिउ वध पटो ॥
ससि सूर निगारउ तेज भले।
महु जित्तइ कौणु समत्थु कले ॥८८॥

तइ अथि सतायउ लोगु घणा।
ध्रुव देखहु पौरिषु मुझ तणा ॥
करि राडउ खड विहड घणा।
तर जेवउ पाडउ मूढ जडा ॥८९॥

सुणि वत्तउ कोपिउ लोभु मने।
तव भूठु उठायउ वेगि तिने ॥
साइ आपउ सूरु उठाइ करी।
सतिरा इहि छेदिउ तासु सिरो ॥९०॥

तव वीडउ लीयउ भानि भडे।
उठि चरिलउ समुह गज्जि गुडे ॥
चलु कीयउ मद्दवि अप्पु घणा।
पुरपो पुग वायउ तासु तणा ॥९१॥

इव दुग्ग उठोहु सुजोहि घणो।
मनि संक न मानइ घोर तणी ॥
तव उट्टि महाव्रत लगु चले।
जिण भक्ति सुधारयो छोहु दले ॥९२॥

महु उट्ठिउ मोहु प्रचंडु गजे।
पनु पौरिष अप्पइ हीन लजे ॥
तप देखि सवेग पडना अटरो।
दह महु किया सुद नाम्ति पटं ॥९३॥

वहु माय महा करि रूप चली ।
महु अग्गइ सूरउ कवरणु वली ॥
दुक्कि पौरपु अज्ज विचीरि किया ।
तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ॥९४॥

जव माय पडी रण मझ खले ।
तव आइय कक गजति वले ॥
तव उट्ठि खिमा जव घाउ दिया ।
तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ॥९५॥

भयज्ञानु चल्या उठि घोर मते ।
तिसु सोचन आईया कपि चिते ॥
उहु आवत हाक्या ज्ञानि जव ।
गय प्राण पड्या धरि भूमि तव ॥९६॥

मयातु सदा सहि जीय रिपो ।
रूद रूपि चड्या सुइ सज्जि अपो ॥
सभक्कतु डह्या उठि जोरिण अणी ।
धरि धूलि मिल्या दिय चूर घणी ॥९७॥

कम्म अट्ठसि सज्ज चडे विषम ।
जगु छायउ अवरु रेगु भम ॥
तपु भानु प्रगासिउ जाम दिसे ।
गय पाटि दिगतरि मज्झि घुसे ॥९८॥

जगु व्यापि रह्या सवु आसरय ।
तिनि पौरिखु घठिइ ता करय ॥
जव सवरू गज्जिउ घोरि घट ।
उहु भाडि पिछोडि कियाद वट ॥९९॥

स रागिहि धुत्तउ लोउसहो ।
रण अगणि लग्गउ मभि गहो ॥
वयरागु सुधायउ सज्जि करे ।
इव जुझि विताड्यौ दुट्ठ अरे ॥१००॥

यहु दोपु जु छिद गहति पर ।
रण अगणि उडाहि सिर ॥

उठि ध्यानिय मुक्किय अगि घरण ।
सिरण मज्झ जलायउ दोषु तिरण ॥१०१॥

कुमतिहि कुमा रगि सयनु नव्या ।
गय जेउ गजंतउ आइ जुड्या ॥
खिरण मत्तु परक्कम सिंघ परे ।
तिसु हाक सुरण तप यहु घरे ॥१०२॥

पर जीय कुसील जु वट्ठु करै ।
रण मज्झि भिडनु न सक धरै ॥
वभवत्तु समीरणु धाइ लगं ।
कुर विदजि वागय पाटि दिग ॥१० ॥

दुखहु तजिदु गय दण सलो ।
साइज दिउ आइ निसक मलो ॥
परमा सुखु आयउ पूरि घट ।
उहु आडि पिछोडि कियाद वट ॥१०४॥

वहु जुझिय सूर पचारि घणे ।
उइ दीसहि जुटत मज्झि रणे ॥
किय दिन्नु रसातलि वीर वरा ।
किय तज्जित गए वलु मुक्कि धरा ॥१०५॥

अन दंसरण कद रहुंत जहा ।
इकि मज्जि पइट्ठिय जाइ तहा ॥
यहु पैतु सतोषह राइ चड्या ।
दलु दिट्ठउ लोभिहि सैनु पड्या ॥१०६॥

रड

लोभि दिट्ठउ पडिउ दलु जाम ।
तव घुणियउ सीस कर अन्ध जेउ सुझिउ न अग्गउ ।
जणु घेरिउ लहरि विषु कच कचाइउ विघाइ लग्गउ ॥
करइ सुभ्रकरणु आकतउ किपिन वुझइ पट्टु ।
जेरु चणउ अति छलइ तकि भउ मनइ भट्टु ॥१०७॥

जैसी करिणय पावक होइ, तिसहि न जाणइ कोइ।
पडि तिण सगि होइ, कि कि न करै।

तिसु तणि यवि विहि रग, कौणु जाणै के ते ढग।
आगम लग विलग, खिणिहि फिरै॥

उहु अनतप सारै जाल, करइक लोल पलाल।
मूल पेड पत्त डाल देइ उदरै॥

अैसे चडिव लोभ विकट्टु, धूतइ धूरत नट्टु।
सतवैइ प्राणह षट्टु पौरिषु करि॥११२॥

षटपदु

लोभ विकट्टु करि कपटु अमिट्टु रोसाइणु चडियउ।
लपटि दवटि नटि कुघटि भपटि भटि इवजगु नडियउ॥

धरणि खडि ब्रह्म डि गगनि पयालिहि धावइ।
मीन कुरग पतग भ्रिग मातग सतावइ॥

जो इ द मुणिद फणिद सुरचद सूर समुह अडइ।
उहु लडइ मुडइ खिणु गडवडइ खिण सुउट्ठि समुह जुडइ॥११३॥

अडिल्ल

जव सुलोभि इतउ वलु कीयउ।
अधिक कष्टु तिन्ह जीयह दीयउ॥

तव जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ।
राउ सतोषु इनह परि सज्जिउ॥११४॥

रगिका छन्दु

इव साजिउ सतोष राउ, हुवउ धम्म सहाउ।
उठिउ मनिहि भाउ आनदु भय॥

गुण उत्तिम मिलिउ मागु, हूवउ जोग पहाणु।
आयउ सुक्ल झाणु तिमरु गय॥

जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल।
हृदय कवल दल खिडि पतदे॥

यैने गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति।
छेदिय लोभह थिति चडिउ पदे॥११५॥

तनिक पंचु संजमु धारि, सत दह परकारि ।
तेरह विधि महारि, चारितु लिय ॥

तपु द्वादस भेदह जाणि, आपणु अ गिहि आणि ।
बैठउ गुणह ठाणि उदोत किय ॥

तम कुमतु गइय धुसि, धौलिउ जगतु जसि ।
जैसेउ पु निउ ससि, निसि सरदे ॥

अंसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ॥११६॥

जिन वधिय सकल दुट्ठ, परम पाय निघट्ठ ।
करत जीयह कठ, रयणि दिणो ॥

जगि हो तिय जिन्हहि प्राण, देतिय नमुति जाण ।
नरय तणिय वाण भोगत घणे ॥

उइ आवत नरीहि जेइ, खडगु समुह लेइ ।
सुपनि न दीसे तेइ अवर कंदे ॥

अंसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति ।
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ॥११७॥

देव दु दही वाजिय घण सुर मुनि गह गण ।
मिलिय भविक जण, हुंवर लिय ॥

अंग ग्यारह चौदह पूव्व, विथारे प्रगट सव्व ।
मिथ्याती सुणत गव्व, मनि गलिय ॥

जिसु वाणिय सकल पिय, चितिहि हरषु किय ।
संतोष उतिम जिय, धरमु वदे ॥

अंसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि किय ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ॥११८॥

पटपदु

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप वलि अति गज्जिउ ।
उदउहु वउ सासणिहि सयनु आगमु मनु सज्जिउ ॥

हिंसा रहि हय वर तु सुभटु चारितु वलि जुट्ठिउ ।
हाकि विमलमति वाणि कुमतिदल दरडि वट्ठिउ ॥

वधिउ प्रचडु दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ घुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ सतोष कहु लोभहु सहु इव जित्तियउ ॥११९॥

गाथा

जव जित्त दुसहु लोहु, कीयउ तव चित्त मझि आनदे ।
हूव निकट रजो गह गहियउ राउ सतोषु ॥१२०॥

सतोषुह जय तिलउ जपिउ, हिसार नयर मझ मे ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि, ते पावहि वछिय सुक्ख ॥१२१॥

सवति पनरइ इक्याण भद्दवि, सिय पक्खि पचमी दिवसे ।
" सुक्क वारि स्वाति वृखे, लेउ तह जाणि वमना मेण ॥१२२॥

रड

पढहि जे. के सुद्ध भाएहि ।
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु धरि ।
ते उतिम नारि नर अमर सुक्ख भोगवहि वहुघरि ।

यहु सतोषहु जय तिलय जंपिउ वल्हि सभाइ ।
मगल चौविहु सघ कहु करीइ वीरु जिणराइ ॥१२३॥

इति सतोष जय तिलकु समाप्ता

[दि० जैन मदिर नागदा, वून्दी ।]

बलिभद्र चौपई[1]

(रचनाकाल सं० १५८५)

चुपई

एक दिवस माली वनी गउ, अचरित देखी उभु रह्यु ।
फल्या वृक्ष सवि एकि काल, जोवे वैर तज्या दु ख जाल ॥४७॥

फरी २ जो वाला गुवन्न, समोसरणि जिन दीठा धन्नि ।
आव्या जाणी नेमिकुमार, मनस्करी जपि जयकार ॥४८॥

लेई भेट भेद्यु भूपाल, कर जोडी इम भणि रसाल ।
रेविगिरि जगगुरु आवीया, सभा सहित सिव द्वाविया ॥४९॥

कृष्ण राय तस वाणी सुणी, हरष वदन हूउ निकु खड धणी ।
आलितोप पचाग पसाउ, दिशि सनमुख थाई नमीउराउ ॥५०॥

राइ आदेश भेरी ख कीया, छपन कोडि हीयडि हरषीया ।
भव्य जीव ध्याइ समसि, करि ध्यौत एक मन माहि हसि ॥५१॥

पट हस्ती पाखरि परिगर्यु, जाणे ऐरावण अवतर्यु ।
घटा रखना घण वणकार, विचि २ घुघर घम घम सार ॥५२॥

मस्तकि सोहि कु कम पु ज, झरिदान ते मधुकर गु ज ।
वासि ढाल नेजा फरिहरि, सिणगारी राइ आगिल धरि ॥५३॥

चड्यु भूप मेगलनी पूठि, देर दान मागल जन मू ठ ।
नयर लोक अ तेउर साथि, धर्म तणि धुरि दीधु हाथ ॥५४॥

ढाल–सहीकी

समहर सज करी कृष्ण सावरीया ।
छपन कोडि परिवरीया ।

छत्र त्रण शिर उपरि धरीया ।
राही रूखमणि सम सरीया ॥

साहेलडी जिणवर वदण जाइ, नेमि तणा गुण गाइ ।
साहेलडी रे जग गुरु वदण जाई ॥५५॥

---

१. ब्रह्म यशोधर कृत इस कृति एव कवि की अन्य रचनाओं का परिचय पृष्ठ ८३ पर देखिये ।

ढोल तिवल घणु वाजा वाजि
ससर सबद सवि छाजि ।

गुहिर नाद नीसाणज गाजि
वेणा वसवि राजि ॥सा०॥५६॥

आगलि अपछर नाचि सुरगा, चामर ढालि चगा ।
देइय दान ए ध्वार जिम गगा, हीयडलि हरष अभगा ॥
साहेलडी० ॥५७॥

मेगल उपरि चडाउ हो राजा, धरइ मान मन माहि ।
अवर राय मुझ सम उन कोई, नयणडे निम जिन चाहि ॥
साहेलडी० ॥५८॥

मान थभ दीठि मद भाजि, लहलहि धजायए रूडी ।
परिहरी कु जर पालु चालि, घरउ मान मति थोडी ॥
साहेलडी० ॥५९॥

समोसरण माहि कृष्णु पधारया साथि सपरिवार ।
रयण सिंघासण विठादीठा, सिवादेवी तणउ मल्हार ॥
साहलडी० ॥६०॥

समुद्र विजय ए अवर वहू राजा वसुदेव बलिभद्र हरषि ।
करीय प्रदक्षण कुष्ण सु नमीया, नयडे नेम जिननरषि ॥
साहेलडी० ॥६१॥

वस्तु

हरषीया यादव २ मनह आणंदि ।
पुरषोतम पूजा रचि नेमिनाथ चलणे निरोपम ।
जल चदन अक्षत करि सार पुष्प वल चरू अनोपम ॥

दीप धूप सविफल घणा रचाय पूज घन हाथ ।
कर जोडी करि वीनती तु बलिमद्र वघव साथी ॥६२॥

चुपई

स्तवन करि बंधवसार, जेठउ वमिलमद्र अनुज मोरार ।
कर सपुट जोडी अंजुली, नेमिनाथ सनमुख संभली ॥६३॥

भवीयण हृदय कमल तू सूर,जाई दु.ख तुझ नामि दूर ।
धर्म्मसागर तु सोहि चद, ज्ञान कण्णं इव वरसि इ दु ।।६४।।

तुझ स्वामी सेवि एक घडी, नरग पथि तस भोगल जडी ।
वाइ वागि जिम बादल जाइ, तिम तुझ नामि पाप पुलाइ ।।६५।।

तोरा गुण नाथ अनता कह्या, त्रिभुवन माहि घणा गहि गह्या ।
ते सुर गुरु वान्या नवि जाइ, अल्प बुधिमि किम कहाइ ।।६५।।

नेमनाथ नी अनुमति लही, वल केशव वे बिठासही ।
धर्म्मदिश कह्या जिन तणा, खचर अमर नर हरख्या घणा ।।६६।।

एके दीक्षा निरमल धरी, एके राग रोष परिहरी ।
एके व्रत वारि सम चरो, भव सायर इम एके तरी ।।६८।।

दुहा

प्रस्नावलही जिणवर प्रति पूछि हलधर वात ।
देवे वासी द्वारिका ते तु अतिहि विख्यात ।।६९।।

त्रिहु खड केरु राजीउ सुरनर सेवि जास ।
सोइ नगरी नि कृष्णनु कीणी परि होसि नास ।।७०।।

सीरी वाणी सभली बोलि नेमि रसाल ।
पूरव भवि अक्षर लिखा ते किम थाइ आल ।।७१।।

चुपई

द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी सघार ।
मद्य भाड जे नामि कही, तेह थकी बली बलसि सही ।।७२।।

पौरलोक सवि जलसि जिसि, बे बघव निकलसुतिसि ।
तह्मह सहोदर जराकुमार, तेहनि हाथि मरि मोरार ।।७३।।

बार वरस पूरि जे तलि, ए कारण होसि ते तलि ।
जिणवर वाणी अमीय समान, सुणीय कुमार तव चाल्यु रानि ।।७४।।

कृष्ण द्वीपायन जे रषिराय, मुकलावी नियर खड जाइ ।
बार सबछर पूरा थाइ, नगर द्वारिका आ चुराइ ।।७५।।

ए ससार असार ज कही, धन योवन ते थिरता नही ।
कुटब सरीर सहू पपाल, ममता छोडी धर्म्म सभाल ।।७६।।

पजून संबुनि भानकुमार, ते यादव कुल कहीइ सार ।
तीणे छोडयु सवि परिवार, पच महावय लीधु भार ॥७७॥

कृष्ण नारि जे आठि कही, सजन राइ मोकलावि सही ।
अह मु आदेश देउ हवि नाथ, राजमति नू लीधु साथ ॥७८॥

वसु देव नदन विलखु थइ, नमीय नेमि निज मदिरगउ ।
बार वसनी अवधि ज कही, दिन सवे पूगे आवी सही ॥७९॥

तिणि अवसरि आव्यु रषिराय, लेईय ध्यान ते रहयु वनमाहि ।
अनेक कुंमर ते यादव तणा, धनुष धरी इमवाग्या घणा ॥८०॥

वन खड परवत हीडिमाल, वाजिलूय तप्पा ततकाल ।
जोता नीर न लाभि किहा, अपेय थान दीठा ते तिहा ॥८१॥

[गुटका नैणवा पत्र-१२१-१२३]

———

महावीर छंद[1]

प्रणमीय वीर विबुह जण रंजण, मदमद मान महा भय भंजण ।
गुण गण वर्णन करीय वखाणु, यती जण योगीय जीवन जाणु ॥

नेह गेह गुह देश विदेहह, कुंडनपुर वर पुर विनुदेहह ।
सिद्धि वृद्धि वर्द्धक सिद्धारथ, नरवर पूजित नरपति सारथ ॥१॥

गरुव सुदरि सुगुण मदर पीयु तनु प्रयकारिणी ।
भागि रग अनग नगति नयल थाल सुधारिणी ॥

वर अमर अमरीय छपन कुमरीय माय सेवा सारती ।
स्नान मान सुदान भोजन पक्ष वार सुकान्ती ॥२॥

धनद यक्ष सुपक्ष पूरीय रयण अंगणि वरषती ।
तव धम्म रम्म महप्प देखीय मयन लोकने हरसतो ॥३॥

मृगयनयणी पश्चिम रयणी सयन सोल सुमाणइ ।
विपुल फल जस सकल सुरकुल तिरय जन्म वखाणइ ॥४॥

दीठो मद मातग मणोहर, गोहरि हरि श्रीउदाम शसी ।
पूषण जझग युग्म सरोवर सागर सिंहासन सुवसी ॥
देव विमान असुर घर मणिकइ निरगत धूम कृशानुचय ।
पेखीय जागीय पूछीय तस फल पति पासि सतोप भय ॥५॥

पुष्पक पति अवतरीयो जिनपति ।
इन्द्र नरेंद्र कराव्या बहु नति ॥
जात महोछव सुरवरि कीधो ।
दान मान दपतिनि दीघो ॥६॥

वाधिइ गरभ भार नाहि त्रिवलीहार करिइ सुख विहार शोक हरि ।
वरसि रयण रगि, घणाह धनद धनद चगि छपन कुमारी सग सेव करि ॥

पूरीय पूरा रे मास, पूरवि सयल आस, हवोउ जनम तास मासि भलो ।
जाणी सयल इन्द्र-भावि विगद तद्र, आवीय सुमति मद्रणाए निलो ॥७॥

---

१. भट्टारक शुभचन्द्र एवं उनकी कृतियों का परिचय पृष्ठ ९३ पर देखिये ।

सूक्ष्म आपणि हाथि थापीय मदर माथि अमरनि कर साथिगहन कीयो ।
दैत्य सन्मति नाम सारी जनम काम, पामीय परम धाम माइन दीयो ॥

नाचीय नाटक इंद, भरीय भोगनुकद नमिय मह जिणद इंद गया ।
बाधिइ विबुध स्वामी धरि अवधि भामी, थयासुभगगामीणाणा मयरा ॥८॥

जुगि जोवन अंगि धरिए रगि त्रीस वरस विभुभयो ।
एक निमित देखीय धरम पेखी निगथ मारगि तेगयो ॥

चउ अधिक बीसह मू की परीसह णाण रूप मुनीश्वरो ।
.... ॥

श्री वीरस्वामी मुगति गामी गर्भहरण ते किम हउयो ।
ते कवयानदन जगतिवदन जनक नाम ते कुण भये ॥९॥

रयण वृष्टि छमास श्री दिस दनि तै कहिनि करी ।
स्वप्न सोल सुरीय सेवा गर्भ शुद्धि सु संचरी ॥

ऋषभदत्त विशाल शुक्रि देवनदा शोणित ।
वपु पिंड पुहुवि तेणि वाद्यो वृद्धि वाधि उन्नत ॥१०॥

ब्यासी दिवस रभसि वीसरीया ।
इन्द्र ज्ञान तिहा नवि सचरीया ॥

जाणी भक्षुक कुलि अवतरीया ।
गर्भ कल्याण किहा करीया ॥११॥

तिहा सयल सुरपति वीर जिनपति गर्भ कर्म ने जाणीय ।
कुल कमल भूषण विगतदूषण नीच कुल ते आणीय ॥

तस हरण खरखि हरण कश्यप पुहवि पटणि पाठव्यो ।
ते सुणउ लोका निगत शोका कर्मफल किम नाटव्यो ॥१२॥

जे जिन नाथि नही निषेध्यो ।
ते हर वा मघवा किम वेध्यो ॥
मरती सावी सवीय न राखी ।
ए चिन्ता तेणि किम भाखी ॥१३॥

गर्भ हर्यो ते केहु द्वार ।
जनमि मार्ग तै सुणौउ प्रकार ।

जनम महोछव वली तिहां जोईइ ।
भमि गर्भ कल्याणक खोइई ॥१४॥

विचारि विचारि वीजि वारि किम नीकलतेगर्भमलो ।
उदारि उन्नत स्थूलत परिणत अवर कहु एक कलितकलो ।

नर नरकावासी कम्महपासीका नवि काडि देवगणा ।
शीता सुरपति लक्ष्मण नरपति नवि काढ्या द्रष्टातल घणा ॥१५॥

वली ताल त्रूटि आयु खूटि किमह जीविते वली ।
जे सुफल आवू सरस लावु अनेथि चहुटि किम भली ।

उदर कमलि गरभ ज मलि नाल माग्र सहु लहि ।
पाप पाकि नाल वा (स) कि गर्भ पातकह महुकहि ॥१६॥

रोपि रोपी रोपडनि अप्पि आणी वढइ ।
अन्येथि थी अन्यत्र लेता गरभ कुण निषेधए ॥

अष्ट नष्ट द्रष्टात दाखी लोकनि थिर कारइ ।
वर वीरवाणी विचार करता तेहनि वली वारइ ॥१७॥

रोप सम सहु माय जाणु गर्भ फल सम साभलो ।
अनेथि थी अन्वेथि धरती कोण कहितो नीमलो ॥

दोइ तात दूपण पाप लक्षण जिननि सभारिइ ।
अस्यु भाखि पाप दाखि शास्त्र ते किम तारइ ॥१८॥

जिननाथ सवसि करण उपरि खील खोसि गोवालीया ।
असम साहस साम्य मु की जिनह छूत्र वगालीया ॥

वज्र रूप सरीर भेदी खीला खन किम खूचवइ ।
दोइ वीम परीसह अतिहि दुसह जिन्न कहो किम मुचइ ॥१९॥

राज मू की मुगती शकी देव दूरगते किम धरिइ ।
इन्द्र आपि थिरू थापि गुह होइ ते इम करइ ॥

मू कइ समता घरइ ममता वस्त्र वीटि सहु सुणिइ ।
हारि नामा अचेलभामा परिसह किम जिन भणइ ॥२०॥

जे माषि अर्थी निलिलि,
मारग मुगति तरिण मनरगि ।
ते नवि जाइ सत्तम पुढवी,
अल्प पापि अर्थी माहव्वी ॥२१॥

माघवी पुढवी नही जावा यस्स पाप न सचउ ।
ते मुगति माग्र किम माणइ एह महिमा खचउ ॥
सइ वरि अजी करि क ज्जानत्तक्षणनु दीक्षीउ ।
वदण नमसण तेह नेह्नि काइ तह्यो लक्षीउ ॥२२॥

स्त्री रूप पडिमा काइ न मानु जो उपामि शिवपुर ।
नाम अवला कर्म सवला जीयवा किय आदरं ॥
कवल केवली करि आहार अणतु सुहते किहा घरे ।
वेदणीय सत्ता आहार करता रोग सघला संचरि ॥२३॥

नरकादि पीडा मरत कीडा देखिनि किम भुजइ ।
णाण झाण विनाश वेदन क्षुधा की सहु सीझइ ॥
सर सरस वली आहार करता वेदना वहु वुझइ ।
एक्क घरि अनेक आहार घरि घरि भम्मता किम सुझइ ॥२४॥

एक घरि वर आहार जाणी जायता जीह लोलता ।
आहार कारणि गेह गेहि हीडता अणाणता ॥
समोसरणि जा करइ भोजन तोहि मोटी मम्मता ।
भूख लागि अवरनीपरि आहार ले जिन गम्मता ॥२५॥

अठार दूषण रहित वीरि केवलणाण सुपामीउ ।
जन नयन मन तन सुघट हरण हर करण वर भरमामीउ ।
इ द मद्र खगेंद्र शुभचद नाथ परपति ईश्वरो ।
सयल संघ कल्या (ण) कारक धर्म वंश यतीश्वरो ॥२६॥

सिद्धारथ सुत सिद्धि वृद्धि वाछित वर दायक ।
प्रियकारिणी वर पुत्र सप्तहस्तोन्नत कायकं ॥
द्वासप्तति वर वर्ष आयु सिहांक सुमंडित ।
चामीकर वर वर्ण धरण गोत्तम यती पडित ॥

गर्भ दोष दूषण रहित शुद्ध गर्भ कल्याण करण ।
शुभचंद्र सूरि सोवित सदा पुहवि पाप पकह् हरण ॥२७॥

इति श्री महावीर छन्द समाप्त

[दि० जैन मदिर पाटौदी, जयपुर]

श्री विजयकीर्त्ति छन्द

अविरल गुण गंभीर वीर देवेन्द्र वदितं वदे,
श्री गौतम सु जबु भद्र माघनदि गुरु ॥१॥

जिनचद कु दकु द मृन्तत्वार्थप्ररूपक सार ।
वंदे ममतभद्र पूज्यपाद जिनसेनमुनिं ॥२॥

अकलकममलमखिल मुनिवृ दपद्मनंदि ।
यतिसार सकलादिकीर्त्ति मीडे वोधभर ज्ञानभूषणक ॥३॥

वक्ष्ये विचित्र मदनैर्यति राजत विजयकीर्त्ति विज्ञान ।
चद्रामरेंद्रनरवरविस्मपद जगति विख्यात ॥४॥

विख्यात मदनपति रति प्रीति रगि ।
खेल्लइ खड खड हसाइ सुचगि ॥

तव सुण्योउ ददमट्ट द्रम छद्दामह ।
जय जय नादि घूजइ निज धामह ॥५॥

सुणि सुणि प्रीयि कस्यो रे ददामो,
कोण महिपति मझ आव्यो सामो ।

रगि रमनि रीति सुण्यो निजादह ।
नाह नाह तुम घरि विसादह ॥६॥

नाद एह वैरि वग्गि रगि कोइ नावीयो ।
मूलसघ पट्ट वंघ विविह् भावि भावीयो ॥

तसट भेरी ढोल नाद वाद तेह उपन्नो ।
भणि मार तेह नारि कवण आज नीपन्नो ॥७॥

महा मइ मूलसघ गरिद्व, सुबह्मी गछ सुवछ वरिट्ठ ।
गुणह बलात्कार सीभइ काम, नदि विभूषण मुतीयदाम ॥८॥

जण घण वदि पुहुवि नदीय जनीय वरो ।
सुज्ञानभूषण दुमद दूसण विहवघरो ॥

तस पट्ट सुमुत्ती विजयह कीर्त्ति एह थिरो ।
गुणनाथ सुछंदि यतिवर वृदि पट्टि करो ॥९॥

पिये नरो मुनसरो सुमज्ञ श्राण ।
दुघरो समाण ए नही कय ।
श्रबुद्ध युद्ध द्यु भय ॥१०॥

नाह बोल समली रीति वाच उजोली बोल्लइ विचक्खणा ।
आलि मूकि भोजणा ॥११॥

तव आणि न माणि वुद्धि पमाणि सत्थ सुजाणि वुद्धि वल ।
सुणि कास सकोदह नाना दोहह टालि मोहह दूरि मल ॥

सुणि कामह कोप्यो वयण विलोप्यो जुखह अप्यो मयण मणि ।
बोलावु से नार हीया केह्ला वेरीय तेहना विये सुणि ॥१२॥

वयण सुणि नव कामिणी दुख धरिइ महत ।
कही विमासण मभहवी नवि वासो रहि कत ॥१३॥

रे रे कामणि म करि तु दुंखह ।
इन्द्र नरेन्द्र भगाव्यां भिखह ॥

हरि हर बभमि कीया रकह ।
लोय सव्व मम वसीहु निसकह ।१४॥

इम कही इक टक मे लावीउ ।
तत खणह तिहा सहु आवीयो ॥

मद मान क्रोध विभीसणो ।
तिहा चालइ मिथ्या दी जणा ॥१५॥

करि कामिणी गल्ल भाल्ला मयका ।
थण भारउडी याण चाल्या मयका ।

कोकिल न्नाद भम्भर झंकारा।
भेरि भंभां वाजि चित्त हारा ॥१६॥

बोल्लत मेलत चालत धावत धूणत।
धूजत हाकत्त पूरत मोटत ॥
तुदंत भजत गजत मुक्कत मारत रगेण।
फाडत जाणत घालत फेडत न्गमेण ॥१७॥

जाणीय मार गमण रमण यती सो।
बोल्यावइ निज वन सकल सुधी सो ॥
सन्नाह बाहु बहु टोप तुपार दती।
राय गणयता गयो बहु युद्ध कती ॥१८॥

तिहा मल्या रे कटक बहु वाजइ ददामा दहु नाचइ नरा।
मुकि मुंकइ रे मोटा रे बाण आपणु बल प्रमाण कपइधरा ॥
धूजइ धूजि रे धनुपधारी मुकइ अगल्यामारी आपणिवलि।
फेडि फेडि रे वैरी नाना म सारइ स्वामीनु काम माहिमलि ॥१९॥

जपइ जपि रे कठोरनाद करि विषम वाद वेरीय जणा।
काढि काढि रे खडग खड करिइ अनेक रड मारिइ घणा ॥
वलगि वलगि रे वीर नि वीर पडि तुरंग तीर अस्यू भणि।
मुक्यो मुक्यो रे जाहि न जाहि मारु अनही बोसाहीवयण सुणि ॥२०॥

तव नम्मुय देख्यु रे वल करि न आपणो।
बल मिथ्यात महामल उट्ठीय वल्यो।
बोरु समकित महा नाणउ ग्योठ उत्तम।
माण करिय घणु करिय घणु पराणभलुंय मल्यो।

सहि रे भूटा नइ भूटि मुकइ मोट रे।
मुठि करइ कपट गूढि वीर वरा।
उद्यो रे कुवोध बोध झूझइयो धनि।
योध करीय विषम क्रोध धरि धरा ॥२१॥

वली भणइ मयण राय उठुतु कुमत भाइ।
छड़ाव्यो सयल ठाय सुणीय अस्यो।
तव देखीय यतीय जपइ हवि आपनी सेना रे।
कपइ उठो रे तत्क्षिन अप्पिइ कुमइ हण्यो ॥२२॥

तव खड्ग खड्गि भल्लभल्लि वाण वाणि मोकला ।
खर जुष्ट यष्टि मष्ट मुष्टि दुष्ट द्रुष्टि फोकला ॥

एफ नाथ नाथि हाथ हाथि माथ माथि कुट्टइ ।
वली रूड रूडि मुंड मुंडि तुड तुडि तुट्टइ ॥२३॥

इंद्रिय ग्रामह फीट उठामह मोहनो नामह टलीय गयो ।
निज कटक सुभग्गो नासण लग्गो चिंता मग्गो तवह भयो ॥

महा मयण महीयर चडीयो गयवर कम्मह परिकर साथ कियो ।
मछर मद माया व्यसन विकाया पाखंड राया साथि लियो ॥२४॥

विजयकीर्त्ति यति मति अतिरगह ।
भावना भाण कीया वली चगह ॥

शम दम यम अगलि वल्लावि ।
मार कटक भजी बोलावि ॥२५॥

तिहा तवलि ददामा ढोल धस्त कइ ।
भेरी भभा भुगल फुकइ ॥

विरद बोलइ जाचक जन साथि ।
वीर वढिव छुटि माथि ॥२६॥

भूंढा भूट करीय तिहा लग्गा ।
मयणराय तिहाँ ततक्षण भग्गा ॥

आगलि को मयणाधिप नासइ ।
ज्ञान खड्ग मुनि अतिह प्रकासइ ॥२७॥

भागो रे मयण जाइ अनग वेगि रे ।
काइ पिसि रे मन रे माहि मुकरे ठाम ।

रीति रे पाप रि लागी मुनि कहिन वर ।
मागी दुखि रे काढि रे जागी जपइ नाम ॥
मयण नाम रे फेडी आपणी सेना रे ।
तेडी आपइ ध्यान नी रेडी यतीय वरो ।

श्री विजय मनावीयु यति अभिनवो ।
गछपति पूरव प्रकट रीति मुगति वरो ॥२८॥

मयण मनावीयु आण जाण जण जुगति चलावि ।
वादीय वृद विवध नद निरमल महलावि ॥

केतकी मालती माल गोजाल सु चपकं चग ।
बोलसरी वेल्य पाडल परिमल मलया भृंग ॥३५॥

वहु विध भोग पुरदर सुन्दर सहिजि स्वरूप ।
चतुर पणि चालि जान सुभान मैली वहु भूप ॥३६॥

दुख दालिद्र दूरि गया आपयाँ दान उदार ।
सजन सहु सतोपीया पोखीया बहु परिवार ॥३७॥

बदी जन बरद बोलि घणा जिव तथा विविध विसाल ।
वरवाजाय वाय लगाय ण गाय गुण माल ॥३८॥

इन्द्र इन्द्राणी उवारणा जुंछणा करि धरणेस ।
नव रसि नाचि विलासणी सुहासणि भरे सेस ॥३९॥

धवल मगल सोहामणा भामणा लेव नर नारि ।
लूणा उतारे कुमारी स मारी सहु सार सणिगार ॥४०॥

जयतू जीवितू नन्द जिणद जगदं जगीस ।
युवती जगती यम जपती कुलवती दिय आशीश ॥४१॥

इम प्रभु परणे वासात तोरणि जाइ जान ।
जान जाणी जव आवती नरपती उग्रसेन ताम ॥४२॥

सचरी साहामो सभ्रमकरी आणद भरी अणमेवि ।
मलया महा जनमन रगे अगे आलिगन लेवि ॥४३॥

युगति जोइ जानीवासि उल्लासि उतारी जान ।
आसन सयन भोजन विधि मन सिद्धिदीधायान ॥४४॥

नयरि मझारि सिणगारी सूनारी ताहिं सुविचार ।
तहातव हासव माडीया छडीया अवर व्यापार ॥४५॥

ध्वजि तोरणि सोहि घरिं घरिं घरि घरिवानरवाल ।
फूल पगर भरला घरिं घरिं घरि घरिं झाकझमाल ॥४६॥

घरि घरि कुंकुम चदन तणा छाटणाँ छडा देवरायि ।
घरि घरि मणि मुगता फल चौउल चाक पुरायं ॥४७॥

नव नवा नाटिक घरिं घरि घरि घरिं हरप न मायि ।
गिरिनारिपूरि केरी सुन्दरी रंगे भरि मगलं गाइ ॥४८॥

चद्रवदनी पोकारती डारती, मडन हार उरचीर ।
'रतनकीरति' प्रभू भये वैरागी, राजुल चित कियो थीर ।।सखी०।।३।।

[४] राग–देशाख

सखि को मिलावो नेम नरिंदा ।
ता बिन तन मन योवन रजत हे, चारु चदन अरु चंदा ।।सखि०। १।।

कानन भुवन मेरे जीया लागत, दुःसह मदन को फदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी, वे अति दुख को कदा ।।सखि०।।२।।

तुम तो शकर सुख के दाता, करम काट किये मंदा ।
'रतनकीरति' प्रभु परम दयालु, सेवत अमर नरिंदा ।।सखि०।।३।।

[५] राग–मल्हार

सखी री सावनि घटाई सतावे ।
रिमि झिमि वून्द बदरिया बरसत, नेम नेरे नहिं आवे ।।सखी०।।१।।

कूजत कीर कोकिला बोलत, पपीया वचन न भावे ।
दादुर मोर घोर घन गरजत, इन्द्र धनुप डरावे ।।सखी०।।२।।

लेख लिखू री गुपति वचन को, जदुपति कु जु सुनावे ।
'रतनकीरति' प्रभु अव निठोर भयो, अपनो वचन विसरावे ।।सखी०।।३।।

[६] राग–केदार

कहा थे मडन करू कजरा नैन भरु, होऊ रे वैरागन नेम की चेरी ।
शीश न मजन देउ माग मोती न लेउ, अब पोरहु तेरे गुननी वेरी ।।१।।

काहू सू बोल्यो न भावे, जीया मे जु ऐसी आवे ।
नही गये तात मात न मेरी ।।

आलो को कह्यो न करे, वावरी सी होइ फिरे ।
चकित कुरगिनी यु सर घेरी ।।२।।

निठुर न होइ ए लाल, वलिहु नैन विशाल ।
कैसे री तस दयाल भले भलेरी ।।

'रतनकीरति' प्रभु तुम विना राजुल ।
यो उदास गृहे क्यु रहेरी ।।३।।

कृपण भयो कछु दान न दीनो ।
दिन दिन दाम मिलायो ।।
जब जोवन जंजाल पड्यो तब ।
परत्रिया तनुचित लायो ।।मैं तो०।।३।।
अ त समै कोउ सग न आवत ।
झूठहि पाप लगायो ।।
'कुमुदचन्द्र' कहे चूक परी मोही ।
प्रभु पद जस नही गायो ।।मैं तो०।।४।।

[४] राग-सारंग

नाथ अनाथनि कू कछु दीजे ।
विरद सभारी धारी हठ मन ते, काहे न जग जस लीजे ।।
नाथ०।।१।।
तुही निवाज कियो हू मानप, गुण अवगुण न गणीजे ।
व्याल वाल प्रतिपाल सविपतरु, सो नही आप हणीजे ।।
नाथ०।।२।।
में तो सोई जो ता दीन हूतो, जा दिन को न छूईजे ।
जो तुम जानत और भयो है, वाधि वाजार वेचीजे ।।
नाथ०।।३।।
मेरे तो जीवन धन बस, तमहि नाथ तिहारे जीजे ।
कहत 'कुमुदचद्र' चरण शरण मोहि, जे भावे सो कीजे ।।
नाथ० ।।४।।

[५] राग-सारंग

सखी री अबतो रह्यो नहि जात ।
प्राणनाथ की प्रीत न विसरत ।
छण छण छीजत गात ।।सखी०।।१।।
नहि न भूख नही तिसु लागत ।
घरहि घरहि मुरझात ।।
मन तो उरझी रह्यो मोहन सु ।
सेवन ही सुरझात ।।सखी०।।२।।

* चन्दा गीत *

(भ० अभयचन्द)

विनय करी रायुल कहे चन्दा वीनतडी अव धारो रे ।
उज्जलगिरि जई वीनवो, चन्दा जिहा छे प्राण आधार रे ॥१॥

गगने गमन ताहरु रुवडु, चदा अमीय वरखे अनन्त रे ।
पर उपगारी तू भलो, चदा वलि वलि वीनवु सत रे ॥२॥

तोरण आवी पाछा चल्या, चदा कवण कारण मुझ नाथ रे ।
अम्ह तणो जीवन नेम जी, चदा खिण खिण जोऊ छू पथ रे ॥३॥

विरह तणा दुख दोहिला, चदा ते किम मे सहे वाप रे ।
जल विना जेम माछली, चदा ते दुख मे न कहे वाप रे ॥४॥

मे जाण्यु पीउ आवस्ये, चदा करस्ये हाल विलास रे ।
सप्त भूमि ने उरदे चंदा भोगवस्यु सुख राशी रे ॥५॥

सुन्दर मदिर जालीया चदा झल के छे रत्ननी जालि रे ।
रत्न खचित रूडी सेजडी, चदा मगमगे धूप रसाल रे ॥६॥

छत्र सुखासन पालखी चदा गज रथ तुरग अपार रे ।
वस्त्र विभूषण नित नवा चदा अंग विलेपन सार रे ॥७॥

षट रस भोजन नव नवा, चदा सूखडी नो नही पार रे ।
राज ऋधि सहू परहरी चन्दा जई चढ्यो गिरि मझारि रे ॥८॥

भूषण भार करे घणू, चन्दा पग मे नेउर झमकार रे ।
कटि तटि रसनानडे धनि चन्दा न सहे मोती नो हार रे ॥९॥

झलकति झालि हू झब हू चन्दा नाह बिना किम रहीये रे ।
खीटलीखति करे मुझने चन्दा नागला नाग सम कहीये रे ॥१०॥

टिली मोरु नल वट दहे चन्दा नाक फूली नडे नाकि रे ।
फोकट फरर के गोफणो, चन्दा चाटलस्यु कीजे चाक रे ॥११॥

सेस फूल सीसे नविरुरु, चन्दा लटकती लन न सोहोव रे ।
छम छम करता घूघरा चन्दा वींछीया विछि सम भावरे ॥१२॥

* चुनड़ी गीत *

ब्रह्म जयसागर

नेमि जिनवर नमीयाचो, चारित्र चुनड़ी गाईराजी ।
गिरिनार शिखरण नेम, सीगी गज गति कहे जिनदेव ।।
राजिमति गजेन्द्र नयणी, कहे नेम प्रति पीक वयणी ।
धम धमति घु री मंगी, आणो चारित्र चुनडी नवरङ्गी ।।राजी०।।१।।

चर नव्व जीव गुन थाम, नमकोन हृदटानो पाम ।
पीलो पानो परम रङ्ग मांझो, देखी अमरनि कर मन मोह्यो ।।राजी०२।।

मुल गुण रङ्ग फटकी कीध, जिनवाणी धर्मोरम दीध ।
तप तेज है जे सुके, चटको रङ्ग नो नवि मुके ।।राजी०।।३।।

गुरु भाव्य करि गज रुडो, टाले मिथ्या मत रङ्ग कुडो ।
पच परम गुनी ग्रह्यो छायो, भागत भीरो नली आलायो ।।राजी०।।४।।

साजली खरी च्यार नियग, पाच माहाव्रत कमल ने सग ।
पच सुमति फून अणग, निरपम नीलवरण सुरङ्ग ।।राजी०।।५।।

उत्तर गुण लक्ष चौरासी, टवकती टवको शुन भासी ।
क्रीया कर को सभे पासी, नव को चढयो रङ्ग खासी ।।राजी०।।६।।

नीला पीला रङ्ग पालव सोहे, गुप्ति भयना मन मोहे ।
शिल सहस्त्र या याच्य हो पासे, मजया भ परव्रत सारे ।।राजी०।।७।।

रगे रागे बहु माहे रेख, नीलीकाली नवलडी शुभ वेख ।
भवभृंग भगननी देख, कानी करुण नी रेख ।।राजी०।।८।।

मुख मडण फूलडी फरति, मनोहर मुनि जन मन हरति ।
शुभ ज्ञान रङ्ग बहु चरति, वर सीघ तणा सुख करति ।।राजी०।।९।।

कपटादिक रहीत सुवेली, सुखकरी करुणा तणी केली ।
मोती चोक चुनी पर खेली च्यारदान चोकड़ी भली मेहेली ।।राजी०।।१०।।

प्रतिमा द्वादश वर फूली, राजीमती मुख तेज अमूली ।
देखी अमरी चमरी बहु भूली, मेरु गिरि जदे तसु कूली ।।राजी०।।११।।

द्वादस अंग घूघरी भूर, तेह सुणी नाचे देव मयूर ।
पच ज्ञान वरण हीर करता, दीव्य ध्वनि फूमना फरना ॥राजी०॥१२॥

ए ह चुनडी उढी मनोहारि, गई राजुल स्वर्ग दूआरि ।
वसे अमर पुरि सुखकारी, सुख भोगवे राजुल नारी ॥राजी०॥१३॥

भावी भव बंधन छोडे, पुत्रादिक यामे कोडे ।
धन धन योवन नर कोडे, गजरथ अनुचर [illegible] ॥राजी०॥१४॥

चित चुनडी ए जे धरसे, मनवाछित नेम सुख करसे ।
ससार सागर ते तरसे, पुन्य रत्न नो भडार भर से ॥राजी०॥१५॥

सुरि रत्नकीरति जसकारी, शुभ धर्म शशि गुण धारी ।
नर नारि चुनडी गावे, ब्रह्म जय सागर कहे भावे ॥राजी०॥१६॥

—इति चुनडी गीत—

हंस तिलक रास[1]

※ हंसा गीत ※

"राग देशीय"

गमिवि जिणिंदह पय कमलु, पब्बइ पु एक मणेण रे हंसा ।
पापविनाशने धर्म कर बारह भावना एह रे हंसा ।
हंसा तु करि संवनउ' जि मन पटइ संसार रे ।। हंसा ।।१।।

धन जोवन पुर नगर घर, वगव पुत्र कलत्र रे । हंसा ।
जिम ग्रावानि वीजलीय, दिट्ठ पणट्ठा सव्व रे ।। हंसा ।।२।।

रिसह जिणेनुर भुवन गुरु, जुगि धुरि दपना सोजि रे । हंसा ।
भूगि विरासिणि तिणि तिजिय नीलजसा विनासि रे ।।हंसा ।।३।।

नंदा नंदन चक्कवइ भरह भरह पति राउ रे । हंसा ।
जिण सावीय घट गड घरा सो नवि जाउ रे ।। हंसा ।।४।।

सगर सरोवर गुण तणुउ सुर नर सेवइ जास रे । हंसा ।
नवण साठि कहस्स तस विहडिय एकइ सासि रे ।। हंसा ।।५।।

करयल जिम जिम जलु गलइ तिम तिम खूठइ आउ रे । हंसा ।
नद्र धनुष खर देह इह काचा घट जिम जाइ रे ।। हंसा ।।६।।

नर नारायण राम नृप पंडव कूरव राउ रे । हंसा ।
रूसह सूका पान जिम ऊडिगया जिह वाय रे ।। हंसा ।।७।।

सुरनर किंनर असुर गण ?ीवह सरण न कोइ रे । हंसा ।
यम किंकर वलि लितयह कोइन आडु थाइ रे ।। हंसा ।।८।।

मद मछर जोवन नडीय कुमर ललित घट राउ रे । हंसा ।
भव दुह वीहियुत पलीयु ए तिनि कोइ सरण न जाउ रे ।। हंसा ।।९।।

जल थल नह पर जोणीयहि भमि भमि छेहन पत्त रे । हंसा ।
विपया सत्तउ जीवडउ पुदगल लीया अनत रे ।। हंसा ।।१०।।

---

[1] ब्रह्म अजित कृत इस कृति का परिचय पृष्ठ १९५ पर देखिये । इसका दूसरा नाम हंसा गीत भी मिलता है ।

घधइ पडिउ सयल जगु मे मे करइ अयाणु रे। हसा।
इदिय सवर सवा विउए बूडता लागि माफेन रे॥ हसा॥११॥

बीहजइ चउगइ गमणतउ जगि होहि कयच्छ रे। हसा।
जिम भरहेसर नदणइ णमीय सिवपुरि पंथि रे॥ हसा॥१२॥

एक सरगि सुख भोगवइ एक नरग दुःख खाणि रे। हसा।
एकु महीपति छत्र घर एकु मुकति पुरडाणि रे॥ हंसा॥१३॥

बधव पुत्र कलत्र जीया माया पियर कुडव रे। हसा।
रात्रि रूखह पखि जिम जाइवि दह दिसि सव्व रे॥ हंसा॥१४॥

अन्नु कलेवर अन्नु जिउ अनु प्रकृति विवहार रे। हसा।
अन्नु अन्नेक जाणीय इम जाणी करि सार रे॥ हसा॥१५॥

रस वस श्रोणित सजडिउ रोग चर्म नइ हडु रे। हसा।
तनि उत्तिम किम रमइ रोगह तणीय जघडु रे॥ हसा॥१६॥

आश्रव सवर निर्जरा ए चिंतनु करि द्रढ चित्त रे। हसा।
जिम देवइ द्वारावतीय चिंतिवि हुईय पवित रे॥ हसा॥१७॥

लोकु वि त्रिहु विधि भावीयइ अध ऊरध नइ मध्य रे। हसा।
जिम पावइ उत्तिम गति ए निर्मलु होहि पवित्त रे॥ हसा॥१८॥

परजापति इन्द्रिय कुलइ देस धरम्म कुल भाउ रे। हंसा।
दुलहउ इक्कइ इक्कु परा मनुयत्तणु वइ राउ रे॥हसा॥१९॥

कुगुरु कुदेवइ रणझणिउ खलस्यू कहइ सुवण्ण रे। हंसा।
बोधि समाधि वाहिरउ कूडे धम्मंइरनित्त रे॥ हसा॥२०॥

अ ग्य रे अ ग श्रु त पारगउ मुनिवर सेन अभव्य रे। हंसा।
बोधि समाधि वाहि रुए पडिउ नरक असम्य रे॥ हसा॥२१॥

मसगर पूरण मुनि पवरु न्त्यि निगोद पहूतु रे। हसा।
भाव चरण विण वापडउ उत्तिम बोवन पत्त रे॥ हसा॥२२॥

तष मासइ घोखत यह सिब भूषण मुनि राउ रे। हसा।
केवल णाणु उपाइ करि मुकति नगरि थिउ राउ रे॥ हसा॥२३॥

तीर्थंकर चउवीस यह ध्याईनि ग्या मोक्ष रे। हसा।
सो ध्यायि जीव एकु सिउ जिम पामइ बहु सौख्य रे॥ हसा॥२४॥

सिद्ध निरंजन परम शिव शुद्ध बुद्ध गुण पूर रे । हंसा ।
नरसिद्ध पांडी कोडि जग गुण कुल नामइ टेडू रे ।। हंसा ।।२५।।

एहा बोधि समाधि लीया अवर नहि वस्तु रे । हंसा ।
मनसा वाचा कर्मणीयह ध्यावियाइ पसत्थु रे ।। हंसा ।।२६।।

इम जाणी मणु क्रोधु करि छोडि समंत भागु रे । हंसा ।
दीपाइन मुनि हनि गयु एनि द्वारावती नाग रे ।। हंसा ।।२७।।

नित्तु सरल जीव तू करहि कोमल मनि परिणामु रे । हंसा ।
कोमल पामुणि विप टलइ कम्माह भेदह ठामु रे ।। हंसा ।।२८।।

माया म करिसि जीव तू माया धम्मह टाली रे । हंसा ।
माया तापस दुखि गयु ए निवसूती जगि दाखि रे ।। हंसा ।।२९।।

सत्य वचन जीव तू करहि नवि सुरत गमन रे । हंसा ।
सत्य विहत्तउ राउ वसु गयु रे सातनिठ्ठामि रे ।। हंसा ।।३०।।

निर्लोहि तणु गुण जरिहि प्रक्षालहि मन सोमु रे । हंसा ।
अति लाभइ गुण नरि गयु सरि वति सिद्ध नरेस रे ।। हंसा ।।३१।।

पालहि सयम जीवन तू श्री जिन शासन सार रे । हंसा ।
पालिसजीय्यु चनकवइ जोइन सनत कुमार रे ।। हंसा ।।३२।।

बारह विधि तप वेलडीया धार तणइ जलि सचि रे । हंसा ।
सौल्य अनंता फलि फूलइ जातु मन जिय रुचि रे ।। हंसा ।।३३।।

त्याग धरमु जीव आपरहि आकिंचन गुण पाल रे । हंसा ।
धर्म्म सरोवर शील गुणु तिणि सरि करि गालि रे ।। हंसा ।।३४।।

श्रेष्ठि सिरोमणि शीलगुण नाम सुदर्शन जाउ रे । हंसा ।
ब्रह्म चरिज दृढ पालि करि मुगति नगरि थु राउ रे ।। हंसा ।।३५।।

ए बारइ विहि भावणइ जो भावइ दृढ चित्तु रे । हंसा ।
श्री मूल संघि गछि देसीउए बोलइ ब्रह्म अजित्त रे ।। हंसा ।।३६।।

❀ इति श्री हंसतिलक रास समाप्तः ❀

ग्रंथानुक्रमणिका

ग्रंथकारानुक्रमणिका

(ग्रन्थकार, सन्त, श्रावक, लिपिकार आदि)

ग्राम-नगर-प्रदेशानुक्रमणिका

शुद्धा-शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	सं०	पंक्ति
ग्रंथ निर्माणही किया गया	ग्रंथ का निर्माण किया	१४	१७
सुरक्षित	सुसस्कृत	१४	१८
नागौर प्राप्ति	नागौर गादी	४९	१६
तलव	मालव	५०	३
जोहारपुरकर	जोहरापुरकर	५०	२४
और कोधित	और उसने कोधित	६४	२८
लोडे	डोले	८१	२२
नूरख	मूरख	८६	१५
ब्रह्मवूचराज	भ० शुभचन्द्र	१०३	१
,,	,,	१०५	१
अपनी	अपने	१०७	८
रत्नाकीर्त्ति	रत्नकीर्त्ति	१३१	१
धन्य	धान्य	१३९	२५
रति	गति	१४५	१७
३३९	३१	१४६	१४
वी	की	१४६	१५
पुण्य	पुण्य	१४७	२
सगति	सगति	१४७	७
बाडोरली	बारडोली	१५९	१७
ग्रहस्थ	गृहस्थ	१८३	२५
महिमानिनो	महिमानिलो	१८९	१०
धर्मसामर	धर्मसागर	२०७	२०
११२	२१२	२१२	—
जयगसागर	जयसागर	२१२	३
११६	२१६	२१६	—